श्री राम उवाच–14

सूर्ययान की सफलता

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

राम चमक रहे भानु समाना

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

श्री राम उवाच–14

सूर्ययान की सफलता

आचार्य श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2019 प्रतियाँ 5,000

मूल्य : 100/–

ISBN 978-93-86952-55-4

प्रकाशक :
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अन्तर्गत– श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड
गंगाशहर, बीकानेर 334401 (राज.)
दूरभाष : 0151-2270261, 3292177, 0151-2270359
visit us : www.sadhumargi.com

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड
बीकानेर 334003 (राज.)

बस एक छलांग और मोक्ष...

आज से लगभग ढाई हजार साल पहले समय के महत्त्व को बताते हुए भगवान महावीर की वाणी से निकला था 'समयं गोयम मा पमायए'। सितम्बर 2019 में चंद्रयान का घटनाक्रम हमें फिर से समय के मूल्य को बताता है।

वैज्ञानिक मान्यतानुसार चंद्रयान अभियान का उद्देश्य चंद्रमा पर जल आदि का पता लगाना था। उसके प्रयास को सारे विश्व से प्रशंसा मिली है। नासा ने भी अंतरिक्ष की दिशा में इस कार्य को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। चंद्रयान को वैज्ञानिकों की नजरों से अलग हटकर देखें तो यह हम सबके लिए सीखने का एक अवसर उपलब्ध कराता है। यह सीख देता है कि जब तक कार्य पूरा न हो जाये तब तक उसके प्रति आश्वस्त नहीं होना चाहिए। साथ ही जब तक लक्ष्य को प्राप्त न कर लें तब तक विश्राम नहीं करना है। आलस्य नहीं करना है। एक पल भी बेकार नहीं गंवाना है।

'इसरो' के 'चंद्रयान' से अलग एक और 'यान' भी है। यह यान है आचार्य प्रवर पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. के पट्टधर, हुक्मसंघ-गगन के नवम् सूर्य पूज्य आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म.सा. का। यह यान हमेशा सफलता पूर्वक स्थापित होता है। आचार्य प्रवर ने जुलाई, 2019 में 'सूर्यनगरी' (जोधपुर) स्थित आदर्श विद्या मंदिर में अपने 'यान' को सफलता पूर्वक स्थापित किया। सूर्य नगरी में स्थापित यह यान, सूर्ययान है। वैज्ञानिक जब चंद्रयान पर आंख टिकाये थे तो सूर्य नगरी के निवासी आचार्यदेव के अप्रतिम सूर्ययान पर नजरें गड़ाये थे। इस यान की सवारी सफलता की ओर ही ले जाती है। इस यान की उपलब्धि के सामने दुनिया की सभी उपलब्धियां बौनी हैं। यह आत्म कल्याण प्रदायक है। जो भी इस यान पर बैठेगा उसका आत्म कल्याण होगा। यहां कोई 'वी आई पी' नहीं है। आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं है।

चंद्रयान के चित्रों से लोगों को जब लाभ होता, तब होता। आचार्य श्री रामलाल जी द्वारा दिखाये गये संसार के चित्रों से लोग लगातार लाभान्वित हो रहे हैं। बिना किसी कैमरे के दिखाये जा रहे ये चित्र चंद्रयान द्वारा भेजे

जाने वाले चित्रों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह सूर्ययान सफलता पूर्वक लगातार अपनी गति में लगा हुआ है। 'सूर्ययान की सफलता' तब और बढ़ जायेगी जब आप भी इसके चित्रों को देखेंगे, महसूस करेंगे और लाभान्वित होंगे। यह होगा आत्म कल्याण की दिशा में बिना किसी प्रमाद के चलने से।

आचार्य श्री स्वयं आत्म-कल्याण की राह पर चलते हुए सभी के आत्म-कल्याण की बात करते हैं। आप भी भगवान महावीर की बात समयं गोयम मा पमायए के साथ ही 'रामचरितमानस' में हनुमान जी की कही बात 'राम काज किन्हें बिना मोहि कहा विश्राम' को याद करते हुए चल दीजिए आत्म-कल्याण की दिशा में। राम आपके सामने हैं। आपके हनुमान बनने की देर है। जो हनुमान बन रहे हैं वे अपना आत्म-कल्याण कर रहे हैं। आप भी बन जाइए 'हनुमान' और लग जाइए आज के 'राम' के काम पर। काम पूरा किये बिना आराम न करें। प्रमाद न करें। प्रमाद या आराम आपके लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बन सकता है। आपको भटका सकता है।

आप भटकें नहीं बल्कि मंजिल करीब दिखते ही दुगुने उत्साह के साथ उसकी तरफ कदम बढ़ाएं। चंद्रयान का घटनाक्रम भी हमें बताता है कि पल भर का प्रमाद या पल भर की देर से परिणाम में कितना अंतर आ जाता है। इसलिए जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये, तब तक उसकी प्राप्ति का प्रयास चलता रहना चाहिए। लक्ष्य पास होने पर तो परिश्रम और सतर्कता पहले से अधिक हो जानी चाहिए, क्योंकि बहुधा देखा गया है कि लक्ष्य के नजदीक आकर दुर्घटनाएं घट जाती हैं। इस सचाई को इन दो पंक्तियों में बताया गया है–

मुत्मइन होना न राही करीब-ए-मंजिल पर कभी
काफिले लुटते हैं अक्सर आ के मंजिल के करीब

आप भी मंजिल के करीब हैं। आपको मनुष्य जन्म मिला है। भगवान महावीर की वाणी सुनने का अवसर मिल रहा है। समुद्र को पार कर चुके हैं। बस एक छलांग लगाना बाकी है। एक छलांग लगाइए और सूर्ययान पर सवार हो जाइए। छलांग लगा दी तो मोक्ष पा जाएंगे। उस दिशा में सहायक बनेगी यह पुस्तक '**सूर्ययान की सफलता**'।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहो भाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**सूर्ययान की सफलता**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

अर्थ सहयोगी

अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन ट्रस्ट

A 125, समता भवन कमला नेहरू नगर,

जोधपुर

॥ सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें॥

अनुक्रमणिका

1.	हियं तं मन्नई पन्नो	7
2.	सिस्सभिक्खं दलयामो	15
3.	मनोविजेता	30
4.	चित्ताणुया लहु दक्खोववेया	39
5.	कुत्तो अन्नाणं सासिउं	52
6.	णो णिण्हवेज्ज वीरियं	66
7.	पुज्जा जस्स पसीयंति	81
8.	उवसमेण हणे कोहं	96
9.	जस्स णत्थि ममाइयं	112
10.	न सिया तोत्त-गवेसए	126
11.	उट्ठिए नो पमायए	138
12.	तोसिया परिसा सव्व	150
13.	जिब्भिंदियनिग्गहेणं किं जणयइ	165
14.	तस्सेस मग्गो गुरु- विद्धसेवा	180

1

हियं तं मन्नई पन्नो

"हियं तं मन्नई पन्नो, वेसं होइ असाहुणो"

श्री उत्तराध्ययन सूत्र की एक गाथा में एक बात कही गई है। उसका संदर्भ यह है कि आचार्य महाराज यदि किसी मुनि को अनुशासित करें तो वह क्या सोचे? उसके मन में क्या विचार होता है? उसके मन में क्या प्रतिक्रिया होती है? कैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए? इसका दिग्दर्शन इस सूत्र में करवाया गया।

'हियं तं मन्नई पन्नो'

बुद्धिमान्, प्रज्ञावान साधु उसको हितकर समझता है। प्रज्ञावान, बुद्धिमान्, हकीकत को समझने वाला सोचता है कि जो गुरु महाराज ने फरमाया है, वह मेरे हित के लिए ही है। चाहे उनका वचन मधुर हो या कितना भी कठोर हो। कभी-कभी कड़वी औषधि भी वैद्य को देना होता है। हर जगह मीठी औषधि काम नहीं आती है।

मलेरिया बुखार को उतारने के लिए क्या देना पड़ता है? (प्रतिध्वनि– कुनैन) आप जानते हो। कभी इंजेक्शन लेना पड़ता है तो कभी कड़वी गोलियां लेनी पड़ती हैं। हालांकि आजकल सुगर कोटेड गोलियां आ गयी हैं। कई गोलियां सुगर कोटेड हैं। हकीकत आज यह हो गई है कि कड़वी वस्तु औषधि के रूप में भी जल्दी से कोई लेना नहीं चाहता है। उस पर शक्कर चढ़ा दो या चासनी चढ़ा दो ताकि मुँह में डालने पर कड़वी न लगे।

हो सकता है कि यह हमारी प्रकृति का प्रतीक हो क्योंकि आज हमारी प्रकृति ही ऐसी बन गई है, हमारी सहनशीलता कम हो गई है। हमारी सहनशीलता पर प्रश्न खड़ा हो गया है कि हम सहन करने में इतने समर्थ नहीं रहे। इसलिए हम सोचते हैं कि व्यक्ति वचनों को सोच-समझकर बोले, उसे कवर्ड करके बोले, तीखी बात भी मधुरतापूर्वक कही जाए। वह इस प्रकार से

कही जाए कि बुरी न लगे, पीड़ा न हो। मलेरिया में इंजेक्शन लगेगा जरूर। उसके बिना कोई चारा नहीं है। इंजेक्शन भीतर तक जाए तभी बुखार ठीक होता है। इसलिए आजकल इंजेक्शन के पूर्व स्प्रे कर दिया जाता है, जिससे चुभन का अनुभव नहीं हो। वह स्प्रे भले ही कितना भी नुकसान करता हो, इससे हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। हम उसकी चुभन को सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए स्प्रे उपयोग करते हैं।

हितकर वचन कड़वा हो या मीठा, प्रज्ञावान व्यक्ति उसको हित के रूप में ही लेता है। वह यह विचार नहीं करता कि उसे क्यों अनुशासित किया जा रहा है। वचनों को सुनकर मन में दो ही प्रतिक्रिया हो सकती है। एक अनुकूल और दूसरी प्रतिकूल। 'वेसं होइ असाहुणो' असाधु-जिसकी बुद्धि समीचीन नहीं है, जिसकी बुद्धि में तत्त्व समाविष्ट नहीं हुआ है, जो संयम को नहीं जान पाया है, वह मुनि, उन वचनों से मन में द्वेष भाव को पैदा करता है। उसके मन में द्वेष आ जाता है कि क्या हम लोग इतने नादान हैं, इतने अनाड़ी हैं। हम कुछ नहीं समझते कि हमें टोका जा रहा है। ऐसी बातें आ जाती हैं और हमारे मन में चलती रहती हैं। हमें लगता है छोटी-छोटी बातों में टोका जा रहा है।

आज तो लगेगा छोटी-छोटी बातों से क्या फर्क पड़ गया? मति में फर्क आ गया, विचारों में फर्क आ गया। जहां फर्क नहीं आयेगा वो हित समझेगा। जो हित समझेगा उसकी प्रीत जुड़ेगी, वो प्रीत टूटेगी नहीं और जैसे ही मन में विपरीत विचार आएंगे, प्रतिकूल विचार आएंगे, उसके मन में रही हुई प्रीत धीरे-धीरे खिसकने लग जाएगी। कवि आनंदघन जी कहते हैं–

बीजो मन मंदिर आणू नाहीं।

भगवन्! दूसरी बात प्रतिकूलता की बात, अप्रीत की बात मैं अपने मन में आने नहीं देना चाहता हूं। ये दूसरी बात दिमाग में नहीं आती है तो हमारा पारस्परिक सौहार्द भाव, प्रीत का भाव कभी टूटेगा नहीं, कभी भी हटेगा नहीं। जैसे ही हमारे मन में विपरीत विचार आते हैं हम अपने आप का संवरण नहीं कर पाते। अपने दिल को, अपने मन को समझ नहीं पाते हैं तो उसका परिणाम अवश्य आएगा। वह परिणाम होगा कि हमारे भीतर रही हुई प्रीत धीरे-धीरे मंद पड़ने लगेगी और हमारी दृष्टि दोष देखने वाली बन जाएगी।

हमें लगेगा गुरु महाराज हमको बार-बार कहते हैं। यहां गुरु महाराज का मतलब बड़े सन्त, मुनि सबको लिया गया है। वह गुरु महाराज के दोषों को

देखने की कोशिश करेगा। जब वह उनके दोषों को देखना प्रारम्भ करेगा तो अपने भीतर दोषों का संग्रह करेगा कि कब मौका आए और तीर चलाऊंगा। तो बताइये दोष संग्रह किसमें हुआ?

टंकी में शुद्ध जल भरा जाता है। और गटर में कौन-सा पानी संग्रह किया जाता है? दोनों में पानी ही है, लेकिन टंकी में शुद्ध और गटर में विसर्जित किया हुआ जल भरा जाता है। नदियों से आने वाला पानी भी पानी ही है लेकिन वह पानी बहता हुआ किसमें जा रहा है?

हम स्वच्छ जल, शुद्ध जल का संग्रह टंकी में करते हैं और विसर्जित जल, अशुद्ध पदार्थ को बहाते हैं। अशुद्ध जल प्रवाहित होकर गटर में जा रहा है। उसी प्रकार दोषों का संग्रह किया, यदि विचारों को मलीन बनाया, यदि दूसरों के दोषों को देखना शुरू किया तो उसमें दोष है या नहीं, किंतु मेरी अपनी दृष्टि दोष वाली बन जाएगी। दोष दृष्टि बनने से हमें बहुत सारे दोष नजर आने लग जाएंगे। यह हमारी दृष्टि पर निर्भर है कि हम क्या देखते हैं। देखने में हमारी आंखें ही काम नहीं करती, हमारा नजरिया भी काम करता है। मेरा नजरिया दोषपूर्ण बन गया तो मुझे हर कार्य में दोष ही दोष नजर आने लग जाएंगे। हर कार्य त्रुटिपूर्ण नजर आने लगेगा। त्रुटि भले कुछ भी नहीं है फिर भी उसमें त्रुटि नजर आएगी।

भगवान महावीर के वचनों को गलत साबित करने के लिए गोशालक ने भगवान महावीर के दोष निकालने के लिए, क्या कुछ नहीं किया। यह बात अलग है कि वह भगवान की त्रुटि साबित करने में सक्षम नहीं हो सका। उसने कमी नहीं रखी थी भगवान महावीर को असर्वज्ञ घोषित करने में, किंतु भगवान तो सर्वज्ञ सिद्ध हो चुके थे इसलिए उसकी चाल चली नहीं। क्या करें, वह उसका अज्ञान था, उसकी विपरीत मति थी। उस विपरीत मति के कारण वह दोषों को इकट्ठा करने लगा। इससे भगवान महावीर दोषी नहीं हुए बल्कि दोषी कौन हो गया? (प्रतिध्वनि– वह स्वयं)

हम यदि दूसरों के दोष देखना शुरू कर देंगे तो दोष हम अपने भीतर इकट्ठे करते हुए चले जाएंगे। दोष इकट्ठे करते-करते हम स्वयं दोषी हो जाएंगे। यह बात केवल गुरु-शिष्य की ही मत समझना। पिता और पुत्र की बात भी सामने आती है। सास और बहू के संबंध में भी यह बात है। सास यदि बहू की गलती ढूंढ़ेगी तो उसका दिल गलतियों से भरेगा। इसी प्रकार यदि बहू, सास की गलती देखेगी तो घर में कलह मच जाएगा या शांति का

वातावरण बनेगा? यह दृष्टि का बहुत बड़ा अंतर है। दृष्टि के इस अंतर के कारण ही हमारा दिल बहुत दुःखी हो जाता है।

उसके कारण ही यह संसार है, उसी कारण से आज तक हम संसार में भ्रमण करते आए हैं। यदि हमारी दृष्टि इतनी विपरीत नहीं बनती तो हम कभी के मोक्ष में चले गए होते। हम यहां मिलते ही नहीं। हमारी दृष्टि की विपरीतता ही है जिसने हर वक्त, हर क्षण दोष ढूंढ़ने का काम किया है।

इसको मक्खी के उदाहरण से समझ सकते हैं–

मक्खी कहां जाकर बैठती है?

मक्खी, गंदगी पर, घाव पर बैठती है। हमारा शरीर बड़ा है और उसमें एक छोटा-सा घाव होता है। मक्खी कहां जाकर बैठेगी? (प्रतिध्वनि– घाव पर) और मधुमक्खी कहां जाकर बैठेगी? मधुमक्खी पराग कणों के लिए, फूलों पर बैठेगी। वह फूलों पर बैठकर पराग कण लेगी और उसका मधु बनाएगी। मक्खी जाकर घाव पर बैठेगी और वहां बैठकर मवाद लेगी।

उस मवाद को लेकर वह क्या बनायेगी?

आप विचार करें। मक्खी दोनों हैं। एक मधु बनाने वाली है इसलिए उसे मधुमक्खी कहते हैं और दूसरी को मक्खी। मधुमक्खियों को लोग पालते हैं। यह बात अलग है कि वह व्यवसाय के लिए, रोजगार के लिए पालते हैं और उससे मधु ग्रहण करते हैं। दूसरी ओर मक्खी को हर कोई उड़ाता है। इनका कितना पालन किया जाता है? मक्खी को पालने के लिए कोई केन्द्र खुले हों ऐसा मेरे तो सुनने में नहीं आया। हो तो बता देना, हम सुधार कर लेंगे।

आप विचार करो कि मक्खी को बैठते ही हम उड़ाने की कोशिश करेंगे। न घाव पर बैठने देंगे और न ही खाने पर। मधुमक्खी पराग कण लेकर मधु बनाती है। दूसरी तरफ मक्खी श्लेष्म पर बैठती है तो उसी में फंस जाती है। आप उसको उड़ाने का प्रयास करते हो किंतु उसका पंख वहीं फंस जाता है। उपाय नहीं है।

वैसे ही बहुत से लोग, जो नहीं समझ पाते हैं, वे द्वेष बुद्धि से और दोष दर्शन की बुद्धि से अपने आपको संसार श्लेष्म में फंसा लेते हैं। वे उसी में मर जाते हैं। वे पुनः-पुनः जन्म लेते हैं, संसार में घूमते रहते हैं और कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते। यह मैं आप सबके लिए नहीं कह सकता हूं। हो सकता है कि आप में कोई बड़ा सुज्ञानी हो।

आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के जीवन की एक छोटी-सी घटना है। वैसे बहुत बड़ी है। छोटी घटना ही बहुत बड़ी हो जाती है। तीर तो तीर ही है। कौन-सी घटना छोटी और कौन-सी बड़ी। एक आदमी छोटी को बड़ा बना लेता है। द्रौपदी का एक छोटा-सा बोल, कि 'अंधे के बेटे अंधे होते हैं,' एक छोटा-सा तीर था किन्तु दुर्योधन ने इतना बड़ा बना लिया कि वह बिना महाभारत के शान्त नहीं हो पाया। हम किसी छोटी बात को भी बहुत बड़ा बना सकते हैं। बार-बार वह हमारे मस्तिष्क में उभरती रहेगी। जिससे हम उसे हरा बना देंगे। वह घाव बहुत बड़ा हो जाएगा। फिर परिणाम भी बहुत बड़ा ही आएगा। ये घाव पैदा कैसे होते हैं? ये विपरीत मानसिकताएं कैसे खड़ी होती हैं?

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. युवाचार्य थे। उस समय उनका चातुर्मास बीकानेर खुला हुआ था, किंतु परिवर्तन करना पड़ गया। आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. गंभीर मुद्रा में विराजे थे। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. दर्शन के लिए पहुंचे तो देखा कि गुरुदेव गंभीर मुद्रा में हैं। उन्होंने कहा– गुरुदेव! क्या बात है, आप गंभीर चिंतन में हैं? आचार्य श्री ने कहा– 'युवाचार्य श्री! सरदारशहर चातुर्मास कराना जरूरी हो रहा है। संतों से पूछते हैं तो वे तैयार नहीं हैं। भीषण गर्मी है और ऐसी गर्मी में विहार कैसे होगा? क्या करें और कराना बहुत जरूरी है?' आप जैसा फरमाएं यह सुन जवाहराचार्य के चेहरे पर चमक आ गई, बोले 'आप पधारेंगे?' उन्होंने फरमाया 'जैसा आप फरमायें।'

बीकानेर का वह चातुर्मास ट्रांसफर हो गया। बीकानेर में होने वाला चातुर्मास सरदारशहर में होना तय हुआ। मैं तो उस समय देखने वाला नहीं था। मुनि श्री नानेश देखने वाले थे। पूज्य गुरुदेव फरमाते थे कि जब बीकानेर से प्रस्थान हुआ, उस समय बीकानेर वालों का वही हाल था, जैसे राम का अयोध्या से वन गमन होते समय अयोध्या-वासियों का था। वही हालत वहां की हो रही थी। सब की आंखों से आंसू बह रहे थे।

कहीं संतों का चातुर्मास खुला हो, वह भी बदल जाए तो लोगों को लगता है। फिर युवाचार्य श्री के चातुर्मास की घोषणा हो, चातुर्मास होना तय हो और ऐसे बदल जाए तो आदमी को लगता है कि अरे! यह क्या हुआ? जो शासन-निष्ठ है वह तो सोचेगा आचार्य श्री ने जो किया ठीक किया। नहीं तो यह भी सोच सकते हैं– अरे हमें राजी करने के लिए खोल दिया था और

धीरे से खिसका लिया। लेकिन प्रज्ञावान कहेंगे– हियं तं मन्नई पन्नो– आचार्य श्री ने हित के लिए किया है।

ब्यावर के श्री पूनमचंद जी कांकरिया अध्यक्ष बने। चातुर्मास की विनती करना तय हुआ तो कुछ लोगों ने कहा कि अमुक संत का चातुर्मास करा लें। उन्होंने साफ मना कर दिया। उन्होंने कहा कि यह अपना विषय नहीं है कि किसका चातुर्मास करावें। हमें तो चातुर्मास का विनती पत्र भेजना है। आचार्य श्री चाहे जिसे भेजें। चाहे वे किसी नवदीक्षित को ही भेजें, वे हमें मांगलिक ही सुनायें, पर हमें उन्हें ही गुरुदेव समझकर मान-सम्मान देना है। उन्होंने कहा कि हमें किसको बुलाना है इसके लिए कोई नाम नहीं देना है। गुरुदेव जिसे भेजें, उनका निर्णय सर्वोपरि है। भंडारी जी बैठे हैं, जिनके पिताजी पूनमचंद जी के साथ वर्षों मंत्री पद पर रहे। वर्षों तक जोड़ी रही।

ऐसी विचारणा तब होती है, जब प्रतिभा होती है, बुद्धि पवित्र होती है। जब तत्त्व को समझते हैं तो ऐसा होता है, नहीं तो मन को बदलते हुए देर नहीं लगती।

आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. का विहार सरदारशहर की तरफ हुआ तब मुनि श्री नानालाल जी म.सा. को दीक्षित हुए दूसरा ही वर्ष था। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। बुखार, टाइफायड जैसी स्थिति बनी हुई थी अतः उनको बीकानेर छोड़कर विहार किया। कुछ दिन निकल गए। एक दिन एक संत-महात्मा प्यार दिखाते हुए, प्यार उड़ेलते हुए बोले कि नानालाल जी महाराज! युवाचार्य ने यह तो ठीक नहीं किया। आप बीमार थे। उन्हें आपको साथ में रखना चाहिए। अच्छी तरह से इलाज करवाना चाहिए था किन्तु ऐसी बीमारी की हालत में आपको छोड़कर चले गए। ये बातें मस्तिष्क में कितनी घूमती हैं। और वह भी जब व्यक्ति बीमार हो।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. ने फरमाया कि गुरुदेव ने जो किया अच्छा ही किया। मेरी तबीयत खराब है तो क्या हुआ। उन्होंने मुझे आपकी सेवा में रखा है। आपके पास छोड़कर गए। किसी दूसरे के पास थोड़ी छोड़ा है। आप कोई पराए थोड़े ही हो। उसके बाद उन मुनि ने इस प्रकार की बात कभी भी नहीं की। यदि गुरुदेव उस समय उन्हें सुनते और उस बात में रस लेते तो बार-बार वे इसी बात को करते। फिर वे बातें घाव बढ़ाने वाली बन जाती। मन को विपरीत दिशा में मोड़ने वाली बन जाती। और हमारे मन को मोड़ने लगती है।

नई बहू ससुराल आई और जब वापस पीहर गई तो उसके पीहर वाले या माँ उससे क्या पूछती है? तुम्हारी सास ने ऐसा तो नहीं किया, वैसा तो नहीं किया, तुम्हारी सास ने तुम्हारा ध्यान रखा या नहीं, तुम्हारे ससुराल वालों ने तुम्हें कुछ बोला तो नहीं, कुछ ऐसी-वैसी बात तो नहीं की। अगर इस तरह से पूछते हो तो पहले बेटी की शादी उस घर में क्यों की? उसे ससुराल भेजा ही क्यों? भेज दिया तो उससे पूछना चाहिए कि तुमने सासू की और ससुराल वालों की सेवा की या नहीं की? तुमने ससुराल वालों का ध्यान रखा या नहीं रखा? जबकि उलटा पूछ रहे हैं कि तुम्हारी सास ने कैसे रखा तुम्हें? बहू को, सास को कैसे रखना चाहिए या सास को बहू के साथ कैसे रहना चाहिए? दोनों हाथ धोते हैं तब हाथ अच्छे धुलते हैं। दोनों हाथों को एक साथ धोना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि एक हाथ से एक हाथ धो लें। आजकल हाथ धोने के लिए एक हाथ से नल चालू करके एक हाथ धो लेते हैं।

"हमें किसी के प्रति विपरीत मानसिकता नहीं बनानी चाहिए।" किसी के प्रति इस प्रकार का कथन नहीं होना चाहिए जिससे उसके मन में प्रीत घटे और पारस्परिक दूरियाँ बढ़े। ऐसा कोई कथन कभी भी नहीं करना चाहिए।

महासती अंजना के साथ में पीहर से एक सहेली आई थी। उसने एक दिन कह दिया, सखी! तुम्हारी पीड़ा देखी नहीं जाती, तुम्हारे पति पवन जी को क्या हुआ, तुम्हारे साथ सही बर्ताव नहीं कर रहे हैं। अंजना ने कहा, खबरदार! पति मेरे हैं, उनकी चिंता तुमको नहीं करनी है। वह जो भी हैं मेरे पति हैं। उन्होंने उसे समझाया कि आगे से इस विषय में प्रतिक्रिया नहीं करना। फिर उसने 12 या 22 वर्षों में कभी वैसी कोई प्रतिक्रिया नहीं की क्योंकि अंजना ने साफ बता दिया कि मुझे कैसे रखना यह मेरे पति की जवाबदारी है। 'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये।' तुम्हें इस विषय में हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है।

कैसे रख रहा है? क्यों रख रहा है? जैसी उनकी मरजी। ऐसा यदि समर्पण भाव बनता तो क्या कभी भी उसके जीवन में कठिनाइयाँ आ सकती हैं? (प्रतिध्वनि– नहीं) कठिनाइयाँ हमारे मन की होती हैं। कठिनाई कुछ भी नहीं है, किसी भी जगह नहीं है। कठिनाई हमारे मन में है। हमने अपने मन को कठिन बना लिया है। मन को कठिन बनायेंगे तो वह कठिन बन जाएगा। यदि हमारा मन समझा हुआ नहीं है तो हमें सब जगह कठिनाई नजर आएगी

और यदि हमने मन को समझा लिया है तो हमें सब जगह राज्य-सुराज्य मिल जाएगा।

हकीकत है– **'हियं तं मन्नई पन्नो'**

जो प्रज्ञावान होता है, वह हितकारी मानता है। वह सोचता है कि गुरु महाराज ने जो किया, अच्छे के लिए किया है। उनकी दृष्टि में क्या खासीयत रही है, वह हम नहीं समझ सकते।

ऐसी कहानियां भी आती है कि शिष्य सोया हुआ था, गुरु महाराज ने एक शिष्य के गर्दन में हंसिया लगाकर खून निकाल दिया। शिष्य ने थोड़ी-सी आंख खोली तो देखा कि मैं गुरुदेव की गोद में हूं। उसने वापस आंख बंद कर ली। दरअसल वहां एक सांप आया था और उसने कहा कि यह मेरा शत्रु है और मैं इसका खून पीकर रहूंगा, तो गुरुदेव ने शिष्य की एक नस को चीरा और खून की फुहार छोड़, खून सर्प को पिला दिया। बाद में शिष्य से पूछा कि तुम्हें पीड़ा नहीं हुई क्या? शिष्य ने कहा– 'गुरुदेव! मैं आपकी गोद में था तो मुझे चिंता नहीं थी। मुझे विश्वास है कि आप जो भी करेंगे मेरे हित के लिए करेंगे।'

(सभा में कुछ लोग अपना सिर हिलाते हैं)

माथा हिलाना तो आसान है, लेकिन मौके पर, उस समय मालूम पड़ता है कि क्या होता है और क्या नहीं। हमारी बुद्धि यदि अच्छी रहेगी, हमारी बुद्धि सम्यक् रहेगी, हमारी प्रज्ञा सतर्क रहेगी तो दूसरा तत्त्व हमारे मन में नहीं घुसेगा। जब तक हमारे मन में प्रेम होता है, प्रीत होती है, तब तक विपरीत भावनाएं नहीं आती हैं।

जिसके प्रति हमारी श्रद्धा है, जिसके प्रति हमारा प्रेम है, जिसके प्रति हमारी आस्था है, हमारा समर्पण भाव है, उसके प्रति हमारे भीतर कभी भी विपरीत विचार नहीं आ सकते हैं। यदि कभी विपरीत विचार आने भी लगें तो अपने आप को सावधान कर लेना चाहिए। यदि अपने को सावधान कर लिया तो हमारा रास्ता कभी गलत नहीं होगा। हम प्रीत हटाने वाले रास्ते पर नहीं जाएं तो हमारा जीवन धन्य बनेगा। इस प्रकार का प्रयत्न करेंगे तो अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

19 जुलाई, 2019

2

सिस्सभिक्खं दलयामो

सिस्सभिक्खं दलयामो सूत्र में कहा गया है कि शिष्य भिक्षा दे रहा हूँ। भिक्षा विभिन्न प्रकार की होती है। साधु के लिए कहा गया है कि साधु को कोई भी वस्तु चाहिए तो उसे याचना करके ही लेनी पड़ेगी और याचना करके जो लिया जा रहा है, उसे भिक्षा का रूप ही कहा गया है।

अन्न ग्रहण करना भी भिक्षा है, वस्त्र ग्रहण करना भी भिक्षा है। जो भी पदार्थ मुनि ग्रहण करता है, वह एक प्रकार से भिक्षा का रूप है। शिष्य के लिए भी भिक्षा का ही रूप आया है। आगम में पुत्र की दीक्षा के प्रसंग पर माता कहती है—हे भगवन्! मेरे पुत्र को दीक्षित करें। 'सिस्सभिक्खं दलयामो' मैं शिष्य भिक्षा आपको दे रही हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिए। उसको भी भिक्षा के रूप में लिया गया है।

अन्न की भिक्षा देने वाले कितने लोग मिलेंगे? अन्न की भिक्षा देने के लिए तो हमारी बहुत तैयारी रहती है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन। कितने दिन तक हम अन्न की भिक्षा देने के लिए तैयार रहते हैं? यदि महाराज गोचरी के लिए नहीं आए, छः दिन निकल गए, 10 दिन निकल गए तो उपालंभ देंगे म.सा. कितने दिन निकल गए? चातुर्मास नहीं होता तो कितने दिन निकल जाते। हमारी भावना रहनी चाहिए किंतु कोई जरूरी नहीं है कि महाराज फरसें ही। उनकी मरजी होगी तो फरस लेंगे। पर भावना तो हमेशा रहनी ही चाहिए।

भोजन करने के लिए जब हम बैठें तो भावना भाएं कि मैं तो रोज ही खा रहा हूं। धन्य हो कि कोई संत-महात्मा पधारें और मैं अपने भोजन में से उनको दान दूं। जरूरी नहीं है कि सभी दिन संत-महात्मा आ जाएंगे, किंतु किसी दिन यह प्रसंग बन जाए और हमें प्रतिलाभित होने का अवसर मिल

जाए। यदि संत-महात्मा नहीं आते हैं तो भी हमारी भावना से हमें लाभ मिलता है। अन्न की भिक्षा देने वालों की कमी नहीं है। वस्त्र की भिक्षा देने वाले उनमें कुछ कम होंगे। जितने अन्न की भिक्षा देने वाले हैं, वे सभी वस्त्र की भिक्षा क्यों नहीं दे सकते? इसलिए नहीं दे सकते क्योंकि सबके घर में वस्त्र सुलभ नहीं होता।

जैसे संतों के लिए खरीदे गये अन्न की भिक्षा ग्राह्य नहीं होती हैं। वैसे ही वस्त्र यदि संतों के लिए खरीदकर रखेंगे तो वह वस्त्र उनके लिए ग्राह्य नहीं होगा। इसलिए वस्त्र की भिक्षा देने वाले कुछ सीमित लोग ही मिलते हैं।

मकान देने वाले कितने लोग मिलते हैं? आज तो स्वयं के रहने के लिए मकान का अभाव होता जा रहा है। पहले मकान के बीच में आंगन होता था। बाहर चबूतरा होता था, पीछे बाड़ा होता था। आज तो इतनी जमीन में न जाने कितने मकान बन जाते हैं। आज मकान ऐसे होते हैं, जैसे रेल के डब्बे। अब इतनी सी-जगह में महाराज के रहने के लिए कहां से जगह सुलभ होगी! कई लोगों की भावना रहती है और कल्प के लायक स्थान है तो वे मकान देने का लाभ लेते हैं।

इस प्रकार अन्न की भिक्षा देने वाले बहुत हैं, वस्त्र की भिक्षा देने वाले उससे कम हैं और उससे भी कम हैं मकान की भिक्षा देने वाले। फिर भी भावना रहती है कि हमारा मकान खाली है तो हमें शय्यातर बनने का लाभ मिले।

आप विचार करें कि चार महीने तक कोई भोजन बहरा रहा है। मान लीजिए कोई साधु बीमार है और किसी कारण पथ्य-परहेज की चीजें अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं और चार महीने एक ही घर से ला रहे हैं। गृहस्थ दोष नहीं लगा रहा है। साधु के लिए नहीं बना रहा है घर में स्वयं के लिए बन रहा है उसमें से ही बहरा रहा है। चार महीने उसके घर गोचरी की जा रही है। कारण? चार महीने वह बीमार हालत में रहा है। इस प्रकार चार महीने उसको अन्न देने का लाभ मिला। शय्यातर का लाभ कितने दिन मिला? जब तक वह साधु वहां रुका। उसे अन्न देने को लाभ कितने दिन मिला? एक दिन, जिस दिन साधु आया, उस दिन गोचरी की होगी तो कर ली। गोचरी एक बार हो गयी तो हो गई अब रात निकलने के बाद चार महीने गोचरी नहीं कर सकते हैं। अब गोचरी नहीं हो रही है चार महीने। किंतु तराजू से तोला जाये तो ज्यादा लाभ किसे मिलेगा। हालांकि भावों के आधार पर लाभ है,

किंतु शास्त्रकारों ने बताया है कि शय्यातर को जो लाभ मिलेगा, उसे तोल नहीं सकते। चार महीने गोचरी कराने के बजाय जो शय्यातर बना है उसको अधिक लाभ मिलेगा। कैसे?

यदि रुकने के लिए मकान ही नहीं होता तो साधु गोचरी कहां करते। बीमार साधु रुकता कहां पर? ज्ञान की आराधना कहां होती? ध्यान की आराधना कहां होती? दर्शन की आराधना कहां होती? संत स्वाध्याय कहां करते? अध्ययन छोड़ो, प्रतिक्रमण कहां करते? धर्म की जो भी क्रियाएं की जा रही हैं, वह कहां की जा रही हैं? (प्रतिध्वनि–मकान में) दूसरी तरफ साधु ने सुबह आपके घर गोचरी कर ली और उसका उपयोग कर लिया। वह दूसरे दिन तक चलेगी क्या? नहीं चलेगी लेकिन मकान का लाभ 24 घंटे चालू है या नहीं? जैसे बाणिये का ब्याज रात-दिन चलता है, वैसे ही शय्यातर का लाभ रात-दिन रहता है। दूसरी तरफ आपके यहां महाराज आए और गोचरी करके चले गए, फिर आप निश्चिंत हो गए कि अब कोई नहीं आएगा। खुदा न खास्ता कोई दूसरे आ जाएं तो वह अलग बात है, किंतु आपका मन यह बोलता है कि अब कोई म.सा. नहीं आएंगे। जब तक म.सा. नहीं आए थे, तब तक आपके मन में गोचरी कराने की भावना थी, लेकिन जैसे ही कोई म.सा. आकर चले गए, आपके मन की भावना वहीं रुक गई। लेकिन जिसने साधु को रहने के लिए मकान दिया है, उसके 24 घंटे अनुज्ञा चालू है। रात और दिन उसकी अनुज्ञा चालू है या नहीं? (प्रतिध्वनि–हाँ, है)

इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि मकान देने वाला अधिक लाभ का भागी होता है। उससे भी आगे बढ़कर लाभ का भागी वह होता है, जो अपने कलेजे का टुकड़ा, अपने पुत्र या पुत्री को, अपने पारिवारिक जनों को शिष्य रूप से भिक्षा देता है। वह उससे भी ज्यादा लाभ कमाने वाला होता है।

साग-सब्जी का व्यापार करने से भी पैसे की कमायी होती है। किराने की दुकान, अनाज के व्यापार में भी लाभ होता है। यह बात अलग है कि कभी अनाज खराब हो जाए, या अन्य कोई कारण हो जाए तो समस्या खड़ी हो जाती है। वैसे देखें तो प्रत्येक व्यापार लाभ के लिए किया जाता है और प्रत्येक व्यापार में लाभ होता ही होगा। किंतु लाभ में फर्क है या नहीं? सब्जी के मार्केट में सब्जी वाला लाभ कमा रहा है और एक जौहरी हीरे का व्यापार करके लाभ उठा रहा है।

दोनों में से किसका लाभ ज्यादा होगा? (प्रतिध्वनि– जौहरी का लाभ ज्यादा होगा)

वैसे ही अन्न की भिक्षा से भी लाभ मिलता है, वस्त्र से भी मिलता है, मकान देने से भी लाभ मिलता है और अपने परिवार के किसी सदस्य को दीक्षा दिलाते हैं तो उसका भी लाभ मिलता है। एक ने अन्न दिया, एक ने वस्त्र दिया, एक ने मकान दिया और एक ने अपने परिवार के किसी सदस्य को दीक्षा दिलवाई तो ज्यादा लाभ किसमें होगा? वीर पिता कौन बनेगा? कौन बनेगा वीर उपासक? कौन बनता है वीर पिता? जिसका 56 इंच का कलेजा होता है, वह बनता है वीर पिता। (सभा में सब हंसने लगे)

56 इंच का कलेजा सुनकर हंसी क्यों आ गई? मोदी जी याद आ गए! प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी के लिए छप्पन इंच कलेजे का जुमला चलता रहता है। कौन बनेगा वीर पिता? अन्न देने में और संतान को दीक्षा दिलाने में फर्क होता है। उसमें दिल को मजबूत करना पड़ता है। मोह के कारण मन रुदन मचाने लगता है। अगर मौका मिल जाए तो भूं-भूं करके रोने लग जाएंगे। इसलिए कहा गया कि शिष्य भिक्षा देने में मन को मजबूत करना पड़ेगा। आप विचार करो कि भावों के आधार पर ज्यादा लाभ और कम लाभ की स्थिति बन जाती है। संतान की दीक्षा, भिक्षा के समय मन को बहुत मजबूत करना पड़ता है। बहुत कठोर करना पड़ता है। इसलिए शिष्य की भिक्षा के लाभ में और अन्न, वस्त्र की भिक्षा के लाभ में इतना बड़ा अंतर हो जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. खरियार रोड विराज रहे थे। अक्षय तृतीया का प्रसंग रहा होगा। वहां आचार्य देव गोचरी हेतु पधारे तो श्री सूरज बाई जी (श्री मंगलाबाई की माताजी) बहराने हेतु तत्पर हुए। गुरुदेव ने पात्र आगे किया तो उन्होंने 5 लड्डू उठा लिए बहराने के लिए। आचार्य श्री ने कहा– 'अरे! अरे! बाईजी ये क्या कर रही हो?' उन्होंने कहा कि गुरुदेव! आप मेरे शगुन में अपशगुन मत करो। उनकी बात सुनकर आचार्य देव विचार में पड़ गए और पूछा कि इसमें शगुन का मतलब क्या? उन्होंने कहा– आप पहले लो, फिर मैं बताती हूं। मैंने पांच लड्डू उठाए, इसका मतलब है मेरे घर से पांच दीक्षाएं हों।

आज आप में से कौन पांच लड्डू बहराना चाहेगा? लड्डू तो बहरा देंगे लेकिन पहले देख लो कि घर में पांच बच्चे हैं या नहीं। आज तो

सरकार कहती है, एक ही बहुत है। घर में पांच लोग हों, तब पांच लड्डू दे सकते हो। हमारे यहां कोई बंदिश नहीं है। एक लो, दो लो या पांच लो, कोई रुकावट नहीं है। हमारे यहां यह नहीं है कि एक या दो से ज्यादा दीक्षा नहीं दी जाएगी। रुकावट है क्या? आपके यहां रुकावट आ रही है या नहीं? आप पांच लड्डू उठाने चाहो तो उठा लोगे क्या? मन की मुराद फिर कैसे पूरी करोगे। आचार्य देव सोचने लगे बाई जी कह तो रही हैं, पर हकीकत क्या है।

बडावदा के श्री सौभाग्यमल जी सांड, उनकी धर्मपत्नी सूरजबाई व परिवार के सदस्य प्रायः चातुर्मास में आचार्य श्री की सेवा में लाभ लेते थे। प्रतिष्ठित परिवार था, इसलिए आशंका की कोई बात नहीं थी। पांच की बात कही थी किंतु हकीकत में उस घर से पांच नहीं, छः लोग दीक्षित हुए। सूरज बाईजी, सौभाग्यमल जी, श्रीकांता जी, सुरेन्द्र जी और चन्दन बालाजी। मंगलाबाई की पहले दीक्षा हो चुकी थी। इस प्रकार छः सदस्य उस परिवार से दीक्षित हुए। हम यह विचार करें कि श्रीमती सूरजबाई ने कह दिया कि मैं भिक्षा देना चाहती हूं किंतु उन्होंने यह कैसे सोच लिया कि मेरी संतानें दीक्षा ले लेंगी।

आचार्य पूज्य गुरुदेव एक बार अपने चिंतन में लिखते हैं कि नारी में वह शक्ति है कि वह चाहे जैसे अपनी संतानों को गढ़ सकती है। नारी में वह शक्ति है कि वह परिवार को जिस ओर चाहे उस ओर दिशा दे सकती है, बशर्ते कि वह उस ओर पूर्ण रूप से ध्यान दे। एक बार मैंने विचार रखे कि महिलाओं को राजनीति में जाना चाहिए या घर नीति में ध्यान देना चाहिए? आपके भी विचार जान लूं। कोई राजनीति कह रहा है, कोई घर नीति कह रहा है। इतना तो निर्णय हो गया कि दो प्रकार के विचार हैं और दो प्रकार के विचार होते हैं तभी एक दिन बिलोना होता है। चर्चा चली कि एक तरफ सामायिक करने के लिए महिलाएं घर से स्थानक आ रही हैं और दूसरी तरफ घर में जीवों की हिंसा हो रही है। घर में नौकरानी काम कर रही है, जो रसोई में या अन्य जगहों पर छोटे-छोटे जीवों की हिंसा कर रही है।

कौन-सा पक्ष लें? घर में हो रही जीवों की हिंसा को बचाना है या पहले सामायिक करनी है? पहले क्या किया जाना चाहिए, हमें निर्णय करना

होगा। मेरी प्राथमिकता क्या है, अहिंसा। यदि अहिंसा मेरे द्वारा सुरक्षित नहीं है तो सामायिक का कोई महत्त्व नहीं है। हमारे व्रतों में सबसे पहले अहिंसा को महत्त्व दिया गया है। यदि अहिंसा की संवेदना खत्म होती है तो उस सामायिक से क्या होगा।

जैसे नीचे आग होने पर तवा ठंडा नहीं रहता, वैसे ही हिंसा की भावना हमारे भीतर रहेगी तो वह हमें शांति देने वाली नहीं बनेगी, चित्त को समाधि देने वाली नहीं बनेगी। अभी दशाश्रुतस्कंध की वांचनी चल रही है। उसके 20 असमाधि स्थान में बताया गया है "भूयोवघाइए"। भूतोपघात को असमाधि स्थान बताया गया है। भूतों का उद्घात प्राणियों का उद्घात यदि होता है। उनके प्रति करुणा की भावना नहीं होती तो उसको समाधि मिलने वाली नहीं है। करुणा का भाव, रक्षा का भाव उसके चित्त को समाधि देने वाला होता है।

अपनी प्राथमिकता पर महिलाओं को सजगता से ध्यान देना चाहिए। आचार्य श्री पूज्य जवाहरलालजी म.सा. के प्रवचनों की पुस्तक 'जवाहर किरणावली' में यह पढ़ने को मिलता है कि बच्चे की पहली गुरु, माता होती है। माता प्रथम गुरु होती है। माता अपने बच्चे को शुरू से जैसा ढालना चाहती है, ढाल सकती है।

माता मदालसा का उदाहरण मौजूद है। उसने आठ बच्चों को जन्म दिया और एक-एक करके सात बच्चों को संन्यास की ओर मोड़ दिया। सम्राट कहने लगे कि प्रिये! तुम क्या कर रही हो? क्या मैं बुढ़ापे में, अंत तक राष्ट्र का भार ढोता रहूंगा? मेरी जगह इस राष्ट्र की सेवा का भार कौन वहन करेगा? उसने कहा– नाथ! आप विचार मत कीजिए। जो माता, अपनी संतान को संन्यासी बना सकती है, वह अपनी संतान को राजा भी बना सकती है।

अब विचार कर लो कि उसकी कैसी दृढ़ता थी। क्या आज हम अपने मन की मुराद के अनुसार अपनी संतान को बनाने में सक्षम होते हैं? यदि हैं, हो रहे हैं तो कभी भी संतों के सामने शिकायत की आवश्यकता नहीं होती। नहीं तो कितने लोग यह शिकायत करते हैं कि म.सा. बच्चे कहने में नहीं हैं। कंट्रोल में नहीं हैं। बहुत सारे कारण हो सकते हैं, किंतु कहीं-न-कहीं हमारी चूक भी अवश्य रही है।

यदि मैं सुखविपाक सूत्र की चर्चा करूं तो सुबाहुकुमार की माता धारिणी कितनी मजबूत रही होगी। सुबाहुकुमार के गर्भ में आते ही उसने अपने जीवन को संयमित बना लिया। उन माताओं को किस प्रकार संयमित होना इसकी जानकारी होती थी। आज भी आंगनवाड़ी के माध्यम से सरकार बहनों को कई प्रकार की शिक्षाएं देती है, समझाने का प्रयास करती है, किंतु उसमें समग्रता कितनी है, यह देखना जरूरी है। मैं ऐसा कह सकता हूं कि उस समय भी इस प्रकार के कोई उपाय चलते रहे होंगे या क्लॉसेज चलती होंगी। जो कुछ भी रहा होगा किंतु धारिणी माता के लिए आता है कि वह सुख-पूर्वक गर्भ का वहन करती है और गर्भ का वहन करते हुए अपनी क्रियाओं का ध्यान रखती है।

न अति सोना, न अति जगना। माता के ज्यादा सोने से बच्चा आलसी हो जाएगा और ज्यादा जगने से चिड़चिड़ा हो जाएगा। माताएं इन सारी बातों को ध्यान में रखकर संतान का निर्माण करती हैं तो वह ऐसी संतान का निर्माण कर सकती हैं जो संतान राष्ट्र के लिए, धर्म के लिए, संघ के लिए, समाज के लिए बेजोड़ हो सके। सबकी अपनी-अपनी, अलग-अलग क्षमता होती है। वह संतान राष्ट्र के लिए समर्पित हो जाए, धर्म के लिए समर्पित हो जाए, तो यह कोई कम बात नहीं होगी।

ये तब होगा, जब हम राजनीति के दांव-पेचों से हटकर अपनी घर-नीति पर ध्यान देंगे। माता सोचेगी मेरा पहला दायित्व बच्चे का निर्माण करना है। यदि माताओं ने इस बात पर ध्यान दिया होता तो आज जिस प्रकार पतन का वातावरण पूरे भारत में, विश्व में चल रहा है वो पतन का मार्ग मेरे खयाल से खुलता ही नहीं। कोई एक भी दिन ऐसा नहीं होता, जिस दिन अखबार गैंग रेप की खबर से खाली रह गया हो। मासूम बच्चियों के साथ क्या-क्या खिलवाड़ हो जाते हैं, कैसी-कैसी मार-काट हो जाती है।

ये सब करने वाले कौन हैं? पुत्र ने पिता को काट दिया, ये सब क्यों हो रहा है? भारत भूमि पर, ऋषियों और मुनियों की भूमि पर यह क्या हो रहा है? निश्चित ही कहीं-न-कहीं हमारी माताओं ने उनको सही संस्कार देने के लिए पूरी तैयारी नहीं बरती। अपना दायित्व नहीं निभाया। यदि दायित्व निभाया होता तो उनके घर में राम, कृष्ण और महावीर का जन्म होता। नहीं

हुए मतलब कहीं-न-कहीं कोई चूक रही है। सूरजबाई भी एक माता थी। उसने अपनी संतानों को संस्कारों की ओर मोड़ा। व्यावहारिक अध्ययन भी कराया और साथ ही साथ धर्म का बोध भी कराया।

अभी बात चल रही थी तो उपाध्याय श्री जी ने कहा कि बच्चे तो नजर ही नहीं आते हैं। आएंगे कहां से? पहले स्कूल जाने का समय रहता है, फिर उनके ट्यूशन जाने अथवा कोचिंग में जाने का समय हो जाता है। आप लोग बच्चों को पढ़ा रहे हो, पर ये सोचना चाहिए कि किसलिए बच्चों को पढ़ा रहे हो।

मोतीलाल नेहरू ने विचार किया कि मैं जवाहरलाल नेहरू को विदेश भेजूं, पढ़ने के लिए। एक सुंदरलाल जी वकील थे, इलाहाबाद के। उन्होंने कहा कि मोतीलाल जी तुम क्या कर रहे हो? तुम जवाहर लाल को विदेश किसलिए भेज रहे हो? तुमको पता है कितने पैसे खर्च होंगे? वो बोले– 'लगभग 1 लाख रुपये खर्च होंगे विदेशी पढ़ाई में।' कितने? (सभा से प्रतिध्वनि– एक लाख रुपये।) यह उस जमाने की बात है। वकील साहब बोले, मोतीलाल! इतना पैसा क्यों खर्च कर रहे हो? तुम यह एक लाख रुपये जवाहरलाल के नाम से बैंक में जमा करा दो तो ये जिंदगी भर काम आएंगे और इससे जवाहर लाल पूरी जिंदगी आराम में रहेगा।

मोतीलाल नेहरू ने उनकी बात के जवाब में कहा– "मैं अपने पीछे धन छोड़कर नहीं, मानव छोड़कर जाना चाहता हूं।" क्या कहा, धन नहीं, बल्कि एक अच्छा मानव छोड़कर जाना चाहता हूं। मैं उसे इंसान बनाने के लिए विदेश पढ़ने भेजना चाहता हूं। विचार करना आज माता-पिता क्या बनाना चाहते हैं। आज के माता-पिता का अमूमन लक्ष्य रहता है कि बेटा पढ़कर पैसा कमाये, जॉब करे। जॉब करके पैसे कमाये, यही माता-पिता का लक्ष्य हो गया है।

बताइये क्या विचार है आज के माता-पिता का?

आप उसको पैसे की मशीन बनाएंगे तो वह मशीन ही बनेगा, इंसान कहां से बनेगा? जो इंसान नहीं बनेगा, वह भगवान कभी बन नहीं सकता। जो इंसान की पहचान नहीं कर सकेगा, वह भगवान की पहचान कैसे कर सकेगा? जो न जाने इंसान को, वह क्या जाने भगवान को। जो इंसान को नहीं जानता, उसके सामने भगवान आ भी जाएंगे तो क्या वह पहचानेगा? जिसकी आंखें इंसान को पहचानने के लिए तैयार नहीं हैं, उसकी आंखें

भगवान को भी नहीं पहचान सकेंगी। जो हीरे को नहीं पहचान सकता, वह कोहेनूर को कैसे पहचानेगा? हीरे की पहचान जिसकी आंखों में नहीं है, उसके सामने कोहेनूर रख दें, तो वह कैसे समझेगा? उसके लिए तो वह पत्थर ही है। उसको समझ में नहीं आने वाला है कि हीरे और कोहेनूर का महत्त्व क्या है? वैसे ही जो इंसान की पहचान नहीं कर पाएगा, उसकी आंखों में भगवान की पहचान भी नहीं हो सकती।

हम अपनी संतान को इंसान बनाने की सोचें। पढ़ाने की सोचें। लेकिन धर्म की पढ़ाई भी जरूरी है। पढ़ाना जरूरी है क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति को सदाचारी बनाती है। 'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या से विनय की प्राप्ति होती है। विनय का अर्थ होता है– सदाचार। सदाचार से ही पात्रता आती है। बिना सदाचार के पात्रता नहीं आती। बिना सदाचार के धर्म की रचना नहीं होगी। सदाचार हमारे धर्म की जड़ है। धर्म की नींव है। हमारे धर्म की भूमिका है। भूमिका सही होनी चाहिए।

यहां पर जो यह बीच का मार्ग है अभी तो थोड़ी मिट्टी डाल दी है। अगर यहां पर मिट्टी नहीं डाली होती और पहले की तरह कंकर होते, आपको उस पर बैठकर सामायिक करने के लिए कहा जाता तो बिना हिले-डुले कर लेते क्या? बिना हिले-डुले सामायिक नहीं कर पाते। जहां आप बैठे हो यहां पर टाइल्स लगी हुई है, जिस पर बैठकर आराम से सामायिक कर सकते हैं। कंकर में नहीं कर पाते, क्योंकि ज्यादा देर बैठने पर कंकर चुभने लग जाते और आसन बदलने का मन हो जाता।

जब तक भूमिका सही, सुदृढ़ नहीं होती है, तब तक धर्म की आराधना सही ढंग से नहीं हो सकती। अभी विनय की बात हुई। विनय से पात्रता प्राप्त होती है। विनय का अर्थ होता है सदाचार। विनय का अर्थ झुकना ही नहीं है। विनय से सदाचार और सदाचार की प्राप्ति शिक्षा से ही होती है। शिक्षा से ही व्यक्ति तय करता है कि यह कार्य करना है, यह नहीं करना है। यह विवेक यदि शिक्षा से नहीं आता है तो वह शिक्षा बेकार है। फिर उस शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं है। वह केवल हमारे दिमाग में भरा हुआ कचरा है। उस शिक्षा का जीवन पर कोई असर होने वाला नहीं है। इसलिए संतान का शिक्षित होना जरूरी है। शिक्षा का अर्थ है कि उसके भीतर पात्रता आना। उसके भीतर सदाचार की पैठ बनना। उसके जीवन में सदाचार आ रहा है तो वह शिक्षा फलवती है। वह शिक्षा दी जानी चाहिए।

सूरजबाई ने अपनी संतानों को शिक्षा दी। व्यावहारिक शिक्षा दिलाने के साथ-साथ धर्म की शिक्षा भी दी और प्रेरित करके सामायिक, प्रतिक्रमण सिखाया, थोकड़ों का ज्ञान करवाया। उनके भीतर वैराग्य के भाव भरे कि वे दीक्षा लेने के लिए उन्मुक्त भाव से तैयार हों। गुरुदेव के चरणों में ब्यावर नगर में उन्होंने दीक्षा ली।

कहने का मेरा आशय यह है कि माता का दायित्व क्या होता है? माता का कर्तव्य क्या होता है? माता, अपनी संतान को जन्म देकर नौकरानी को सौंप दे और उससे कहे कि समय पर दूध पिला देना और खाना खिला देना। ये कर देना, वो कर देना। यह माता का दायित्व नहीं है।

हम प्रतिवर्ष पर्युषण पर्व में सुनते हैं कि देवकी महारानी झुरती है। रुदन करती है– 'इम झूरे देवकी राणी'। वह कहती है कि मैंने सात संतानों को जन्म दिया, किंतु माता के कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाई। मैंने उनको जन्म दिया किन्तु उनको संस्कार नहीं दे पाई। मैंने पाप किया किंतु पाप का प्रक्षालन करने हेतु कर्तव्य निर्वाह नहीं किया। मैं कैसी माता हूं!

आप विचार करो कि संस्कार नहीं देने के कारण वह इतनी दुःखी हो रही है। द्वारिका की महारानी को तो मौका नहीं मिला लेकिन आपको मौका मिल रहा है या नहीं? बहिनें बोलेंगी कि क्या करें? हमें संघ ने महिला मण्डल का अध्यक्ष बना दिया, संघ में मंत्री बना दिया, महामंत्री बना दिया, उधर भी हमको काम देखना पड़ता है। लेकिन सबसे पहले जरूरी क्या है? सबसे पहला काम है कि हम अपनी संतान को इंसान बनावें। इंसान बनेगा तभी उसके भीतर भगवत्ता प्रकट होगी। उसमें राष्ट्र प्रेम होगा। उसके भीतर धर्म की भावना होगी। वह इतना संस्कारी बन जाए कि कभी भी दुर्व्यसनों की तरफ उसकी आंखें नहीं जाए। उसके सामने दुर्व्यसनों का दौर चल रहा हो तो भी उसका मन आकर्षित नहीं हो सके।

इस प्रकार के संस्कार कौन दे सकता है?

यह कार्य पिता नहीं कर सकता। यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकता। यह कार्य करने की क्षमता महिलाओं में है। मां संतान को जैसा चाहे, वैसा ढाल सकती है। संतान को संस्कारित बनाने में भी मां की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्कारित संतान अपने माता-पिता के नाम को तो धन्य करते ही

हैं, अपने नगर के नाम को भी प्रतिष्ठा दिलाते हैं। अलग ही प्रतिष्ठा प्राप्त एक नगरी है राजगृह।

वह ग्राम नगर, पुर पाटन नगर सौभाग्यशाली हो जाता है जहां से एक आत्मा भी इस प्रकार की निकल जाती है। हम क्यों दाता गांव का नाम सुबह-सुबह याद करते हैं। हम अयोध्या का स्मरण करते हैं। लंका का स्मरण क्यों नहीं करते हैं? लंका का स्मरण या माला कहीं पर जपी जा रही है क्या?

आप विचार करो। उस राजगृह नगरी में ऐसे-ऐसे रत्न पैदा हुए? धन्ना जी, शालिभद्र जी और अभय कुमार पैदा हुए, राजगृह नगरी में। इसलिए कहा जाता है–

'राजगृही नगरी पुण्यवंती, पुण्य जनों का वास।'

वहां पुण्यशाली जन हुए हैं। आज जोधपुर को पुण्यवान माना जा रहा है। बताया जा रहा है कि यहां पर, सूर्यनगरी में जैनियों के लगभग 30 हजार घर हैं। जहां भगवान महावीर ने 14 चातुर्मास किए हों, उसको हम क्या कह सकते हैं? जोधपुर में आचार्यों के चातुर्मास कितने हुए? किन-किन के हुए?

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. का चातुर्मास यहां हुआ। श्री नाना गुरु का चातुर्मास हुआ, इनके पहले के हमारे कितने आचार्यों ने यहां पर चातुर्मास किए, मुझे ज्ञात नहीं है। पूज्य श्री हुक्मीचंद जी महाराज का जोधपुर चातुर्मास करने का विचार बना किन्तु किन्हीं परिस्थितियों में नहीं हो पाया। उस समय कोई अन्य संत पहले से जोधपुर चातुर्मास के लिए आए हुए थे। उन्होंने सुना कि श्री हुक्मीचंद जी महाराज का जोधपुर चातुर्मास होना है तो वह बड़े ही सोच में पड़ गए कि श्री हुक्मीचंद जी म.सा. का जोधपुर चातुर्मास होगा तो मेरा क्या होगा? कहा जाता है आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने अपना जोधपुर चातुर्मास कैंसिल कर दिया। उन्होंने फरमाया कि मुझे ऐसा चातुर्मास नहीं करना, जिससे किसी के हृदय में चोट पहुंचे। ऐतिहासिक पृष्ठों में यह बात कही गई है, हकीकत क्या रही होगी मैं नहीं कह सकता।

मैं बता रहा था जिस नगरी में भगवान महावीर स्वामी के 1, 2, 3 नहीं बल्कि 14 चातुर्मास हुए, वह नगरी कितनी पुण्यवान् होगी, आप समझ सकते हो। भगवान महावीर ने कुल चातुर्मास कितने किए? भगवान महावीर

ने 72 वर्ष में कुल चातुर्मास 42 किए। कुल 42 चातुर्मास में से एक-तिहाई चातुर्मास का समय राजगृह नगरी में बिताया। यह सिर्फ चातुर्मास की बात है, शेष काल का समय अलग है। चातुर्मास की शृंखला में जिस नगरी में भगवान महावीर ने 14 चातुर्मास किए, वह नगरी कितनी पुण्यवती रही होगी और वहां के लोग कितने भाग्यशाली होंगे, जिनको ऐसे महापुरुष के सान्निध्य का लाभ मिला।

सम्राट श्रेणिक को ऐतिहासिक पुरुष के नाम से मान्यता प्राप्त है। श्रेणिक ने भगवान महावीर की शरण में आने और सान्निध्य प्राप्त होने के बाद एक बहुत बड़ा कार्य किया। वह बहुत बड़ा कार्य था, अमारी उद्घोष का। अमारी उद्घोष यानी कि राज्य की एक निश्चित सीमा तक कोई भी शिकार नहीं कर सकता। कोई किसी प्राणी का वध नहीं कर सकता। अभी भी जहां विश्नोई लोगों का क्षेत्र है, वहां पर जगह-जगह लिखा मिलता है कि यहां पर हरिण का शिकार करना मना है। यहां पर शिकार निषेध है। उन लोगों का जीवों के प्रति इतना लगाव है यदि कोई वन्य प्राणी का वध कर दे तो वे उसे छोड़ते नहीं है।

एक बार सवाईमाधोपुर की तरफ गया था। वहां एक गांव में कोई भी मांस का सेवन नहीं कर सकता। कोई उस सीमा में आकर किसी का शिकार नहीं कर सकता। यदि किसी ने शिकार कर लिया और शिकार करते हुए किसी ने देख लिया तो वे यह सोचते हैं कि चाहे कोर्ट में जाना पड़े, जेल में जाना पड़े किन्तु शिकार करने वाले के वहीं पर हाथ-पैर तोड़े बिना नहीं रहते हैं।

अभी भी एक ऐसा गांव है, हनुमान नगर। हनुमान नगर गांव में रोड नहीं है। सभी राजपुरोहित समाज के लोग हैं। इस गांव की जमीन उन्हें जोधपुर के राजा द्वारा जमींदारी में मिली हुई है। एक ही परिवार के 100 घरों से बना गांव है। एक परिवार का ही कुनबा कह दो। गांव में पहुंचने तक ही सड़क है। वे कहते हैं, यदि सड़क होगी तो फिर होटल बनेगा। फिर उस होटल में तरह-तरह का खाना बनेगा, जिसमें तरह-तरह के पदार्थ इस्तेमाल होंगे। और भी जो बातें मेरे कानों में पड़ी कि उस गांव में बीड़ी, सिगरेट, शराब पीना मना है। किसी के भी पास बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू के पाउच नहीं मिलेंगे। हनुमान नगर के 100 घरों की बस्ती में किसी तरह का कोई भी नशा नहीं है।

इधर हमारे एक घर की बस्ती की बात करें तो? क्या हम कह सकते हैं कि हमारे एक घर में कोई भी नशा करने वाला नहीं है? कभी विहार में कहीं राधा स्वामी वालों का घर हो तो लोग मानते हैं कि ये मांस नहीं खाते हैं। जैनियों की भी कभी पहचान रही होगी कि जैनी लोग किसी प्रकार का नशा नहीं करते हैं। क्या आज हम कह सकते हैं कि यह जैनियों का घर है तो यहां गुटका, तम्बाकू के पाउच, शराब की बोतल नहीं मिलेगी? आज हम कह सकते हैं कि जैनियों का घर है तो शराब की बोतल नहीं मिलेगी? जैनियों के यहां सिगरेट का खाली पैकेट मिल जाएगा या नहीं मिलेगा? (प्रतिध्वनि– मिल जाएगा) खाली मिला, इसका मतलब भरा हुआ था तभी तो खाली हुआ। यानी पहले भरा हुआ था। जैनियों के घर पर पाउच मिल जाएगा? क्या कोई एक घर बता सकता है कि यहां पर तो मिलेगा ही नहीं।

बोलो मित्रों बोलो, किसने जैन धर्म बदनाम किया?

जैनी बनकर जैन धर्म का हमने कितना नाम किया?

बोलो मित्रों बोलो किसने जैन धर्म बदनाम किया...

क्या उत्तर होगा?

किसी बाहर के आदमी ने हमारे धर्म को बदनाम किया क्या? या फिर घर में सूअर ने आकर गंदगी फैलाई? गंदगी किसने फैलाई? हमारे जैन धर्म में गंदगी किसने फैलाई है? कहां से आए हमारे घरों में सिगरेट के पैकेट? कहां से आ गए तम्बाकू के पाउच?

विचार कीजिए! राधा-स्वामी के घर का मतलब है कि यहां पर शराब नहीं चलती है। क्या जैनी घर के लिए कह सकते हैं कि यहां कोई मांस का सेवन करने वाला नहीं मिलेगा। मैं नहीं कहता सब जगह है फिर भी आज 5 प्रतिशत तो मिल जाएंगे। 5 प्रतिशत मिल जाएंगे या नहीं? मैं निश्चित तौर से नहीं कह सकता क्योंकि मेरे पास कोई बायोडाटा नहीं है। 1 प्रतिशत भी मिल जाएंगे तो वे ही 1 प्रतिशत, शेष 99 प्रतिशत को बदनाम कर रहे हैं। सिर्फ 1 प्रतिशत के कारण हमारा धर्म बदनाम हो रहा है।

रात में जाकर देखो, आपके बच्चे कहां-कहां जा रहे हैं। किस होटल में बैठे हैं? कैसे लोगों के साथ बैठे हैं? क्या-क्या कर रहे होते हैं? यदि यह बातें सहीं हो तो हमें सोचने की आवश्यकता रहेगी। बच्चों को संभालने की

आवश्यकता रहेगी। व्याख्यान तो सुन लिया अब बच्चों की रोती आवाज भी सुन लो।

माँ ओ माँ मेरी, माँ ओ माँ मेरी,
तू बोल करे क्यों देरी
मौन तुम्हारा दिल धड़काता रूह काँपती मेरी
माँ ओ माँ मेरी, माँ ओ माँ मेरी॥

उस बच्चे की आवाज कौन सुनेगा? (जोर देते हुए) कौन सुनेगा? कहां सुनने में आ रहा है? आज तो माँ मोबाइल में और कानों में तार डाले, इयरफोन लगाए रहती है तो उस बच्चे की आवाज कहां से सुनेगी? जो ट्यून मोबाइल पर चल रही है, वही चलती रहेगी। हमारा धर्म कैसे चलेगा।

साथियो! अभी तो लगभग अढ़ाई हजार वर्ष ही निकला है। भगवान महावीर का निर्वाण हुए अभी लगभग ढाई हजार वर्ष ही हुए हैं। आज यह दशा होने लगी है तो आने वाले समय में हमारी दशा क्या हो जाएगी? हालांकि हम विश्वस्त हैं, आश्वस्त हैं कि हमारा जैन धर्म, शास्त्रों के अनुसार 21 हजार वर्षों तक रहेगा। भगवान ने कहा है तो चलेगा लेकिन क्या हम इसी प्रकार से रेंगते-रेंगते चलते रहेंगे? क्या हमारे पैरों में कभी दौड़ने की गति आएगी? हम दौड़ पाएंगे। लेकिन तब, जब माताएँ मन में ठान लें। वे अपने कर्तव्य का पालन करें। वे सबसे पहले अपना यह दायित्व समझें कि मेरी संतान को मुझे धर्मनिष्ठ बनाना है, राष्ट्रनिष्ठ बनाना है, सदाचारी बनाना है। इस प्रकार के भावों में दायित्व निर्वाह करते हुए एक संतान को जब वह राष्ट्र के लिए इस प्रकार से समर्पित करती है। जैसे आप नरेंद्र मोदी व जवाहरलाल नेहरू की बात करते हैं तो आपकी संतान भी देश व धर्म के प्रति कुर्बान होने वाली बनेगी। मैं बता रहा था कि श्रेणिक ने अमारी उद्घोष करवाया कि राज्य में किसी प्रकार का शिकार नहीं होगा, किसी भी प्रकार से धर्म का हनन नहीं होगा।

चर्चा धारिणी की शुरू हुई थी, जिनके घर में धन की, माया की कमी नहीं थी किन्तु घर सूना-सूना लग रहा था क्योंकि घर में कोई संतान नहीं थी। कहीं दाना चुगाने वाला है तो कबूतर नहीं है और कहीं पर दाने नहीं हैं किंतु चुगने वाले कबूतर ज्यादा हैं। यह विषमता सदा से रही है और आज भी है। यह विषमता सदा रहेगी, क्योंकि कर्मों का खेल निराला है। यह विषमता रहेगी।

एक बार सेठानी धारिणी सुख शय्या पर सो रही थी तो उसे बड़ा ही रोमांचक स्वप्न आया। उसने सपने में जम्बू वृक्ष देखा। उसको देखकर वह बहुत खुश हुई और पति के पास गई। सेठानी का स्वप्न सुनकर वे भी बड़े आनंदित हो गए। उन्होंने कहा, 'प्रिय! यह बहुत ही अच्छा स्वप्न है और यह हमें निहाल कर देगा, हम निहाल हो जाएंगे। हमारे आँगन में फूल खिलने वाला है। हमारा परिवार सुखी बनने वाला है। प्रिये! अब तुम्हारी सूनी गोद भर जाएगी और ममता का तुम्हारे भीतर प्रादुर्भाव होगा।' इस प्रकार के भावों ने धारिणी को संतुष्ट, प्रसन्न किया।

धारिणी भी अपने संतान संरक्षण के दायित्व में लग जाती है। इस प्रकार बहिनें अपने दायित्व का निर्वाह करेंगी तो धर्म की निष्ठा बढ़ाने वाली बनेंगी। धर्म के साम्राज्य को फैलाने वाली बनेंगी। हम स्वयं धर्म में जागृत बनें, दूसरों को जागृत करें और धर्म के प्रति जागृति बढ़ाने वाले बनें। उस दिशा में लक्ष्य बनाएंगे तो अपने जीवन का कल्याण करेंगे और अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

20 जुलाई, 2019

3

मनोविजेता

18 जून को, मनोविजेता जी दीक्षित हुईं। उपवास, बेला, तेला के पच्चक्खाण कराए गए थे। उनकी भावना बनी कि मुझे संथारा लेना है। श्री प्रणत मुनिजी ने उस समय तेले का पच्चक्खाण करा दिया था। प्रेरणा दी तो उनकी दीक्षा की भावना बन गई।

मेरे पास समाचार पहुंचे। सहज में ही यह बात हुई कि संथारे का कोई पता नहीं चलता कि संथारा एक दिन में सीझ जाए या कितने दिन लग जाए? यदि लंबा चल जाए तो महासतियों को संभालने की स्थिति रहेगी। महासतियों की तैयारी थी ही। दीक्षित हुए, 4 का पारणा कर लिया। चलते-चलते, चलते-चलते फिर वापस संथारा मांगना शुरू कर दिया। ऐसा कुछ लग नहीं रहा था। फिर उपवास, बेला, तेला पचखा दिया। बोल नहीं पा रही थीं। उनसे पूछा गया कि आपकी इच्छा क्या है तो कागज पर लिखकर बताया कि, संथारा।

ऐसे देखें तो 3 दिन उन्होंने अपने भावों से संथारा ले ही लिया था। उन्होंने कुछ भी सेवन नहीं किया, किंतु संथारा पचखाने के हिसाब से उस समय पच्चक्खाण नहीं हो पाया। बाद में हुआ और कल समाचार मिल गए कि संथारा सीझ गया।

लगभग 80 वर्ष की उम्र, चाँदमल जी चोरड़िया की धर्मपत्नी, मसूदा नाहर परिवार में उनकी पीहर थी। अभी आप महासती जी से सुन गए हैं कि जीवन की पिछली अवस्था में भी यदि पुरुषार्थ करें, मन को सुदृढ़ बनावें तो व्यक्ति संयम पथ पर अग्रसर हो सकता है। 'हिम्मत की कीमत होती है।' जन्म लेने वाला मरेगा, यह निश्चित है। कोई अमर हुआ नहीं है। कोई अमर होता नहीं है। सबको मरना पड़ेगा।

राजा-राणा, छत्रपति, हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

राजा-राणा, छत्रपति हो, महापुरुष हो, संत हो मरना सबको एक दिन। जब जिसका नंबर आएगा, उसको जाना ही है। जिस दिन से हमने जन्म लिया, उसी समय से हम मृत्यु की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं।

जन्म हमारे हाथ में नहीं है किंतु जीवन हमारे हाथ में है। जो जीवन को सुधार लेता है, वह मृत्यु को सुधार लेता है। जन्म को कहीं पर भी पंडित जन्म नहीं कहा गया है, क्योंकि वह असंयम में पैदा होता है, अशुचि में पैदा होता है। किंतु मृत्यु को पंडित मरण कहा गया है। समझदारी-पूर्वक मरने को पंडित मरण के रूप में आंका गया है। मृत्यु से कोई भय नहीं लगना चाहिए। बड़े ही शांत-परिणामों से मौत को स्वीकार करना, पंडित मरण है।

यह अपने हाथ की बात है? वस्तुतः जिसका जीवन सधा हुआ होता है, वह व्यक्ति मृत्यु के समय को भी साध लेता है। संयमी जीवन अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है और संयमी जीवन की जो भव्य आराधना करते हैं, उनको पंडित मरण सुलभ हो सकता है। हो ही जाए कोई अनिवार्य नहीं है। हां, संभावना रहती है।

मुनि जीवन में सरलता बहुत आवश्यक है– दिखावा, आडम्बर, मुनि जीवन का उद्देश्य नहीं है और न ही मुनि जीवन में यह चीज आनी चाहिए। मुनि जहां दिखावे में आ जाएगा, वहां वह सत्य से भिन्न हो जाएगा। फिर वह और सत्य अलग-अलग हो जाएगा। दिखावा असत् है और जो असत् में जाएगा वह सत्य को भूल जाएगा।

मैं आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालालजी म.सा. के जीवन की एक घटना पर यदि विचार करूं तो लगता है कि उन्होंने मुनि जीवन स्वीकार किया और निरंतर अपने जीवन को गणेशाचार्य के चरणों में रहते हुए, साधते रहे। उस दौरान यदि कुछ विशेष विचार उद्भूत होते तो वे उनको डायरियों में नोट कर लेते। हम डायरी कह रहे हैं किंतु वैसे देखें तो कोई डायरी का रूप नहीं है। कागजों को सिलकर बनाया गया– खरड़ा। डायरी का रूप दिये गये खरड़े में विचारों को नोट कर लेते। यह प्रक्रिया लगभग सन् 1951 के समय से चालू हुई। तब से जब-जब, जैसे-जैसे

अवसर होता, वे विचारों को नोट करते रहे। वे डायरियां एक डब्बे में रहती थीं।

मेरी दीक्षा होने के बाद, वह डब्बा उठाने के लिए मेरे पास आया। एक बार मैंने गुरुदेव से निवेदन किया कि भगवन्! इसमें क्या है? हम देख सकते हैं? तो गुरुदेव बोले, "अरे भाई! ऐसे ही, कोई विचार, कुछ भाव आ जाते हैं वे इसमें नोट किए हुए हैं, ऐसी कोई खास बात नहीं है।" हमने उनको देखा, पढ़ा, विचार किया और चलते रहे।

आचार्य देव की महानता कहें, गंभीरता कहें, निश्छलता कहें, निःस्पृहता कहें, जो भी कहें, कभी भी ये विचार उनके मन में नहीं आया कि उनको बाहर आने देना चाहिए, बाहर आ जाना चाहिए। हमने भी डायरियों को देखा, पढ़ा और वापस रख दिया।

अहमदाबाद की बात है। एक बार मेरे मुंह से सहज ही संतों के बीच ये बात निकल गई कि गुरुदेव के बहुत से चिंतन लिखे हुए हैं। डायरियां लिखी हुई हैं। उस समय श्री शांति मुनि जी म.सा. ने कहा कि हमें भी दिखाओ तो सही। गुरुदेव से निवेदन किया। गुरुदेव की इच्छा तो नहीं थी, किंतु ना भी नहीं कर सकते थे। मुनि श्री ने उन डायरियों को देखा और कहा कि कागज गल रहे हैं, फट जाएंगे, इसलिए इनकी एक फ्रेश कॉपी बना लेना ठीक रहेगा। फिर फ्रेश कॉपी में उसको नोट किया गया। उसके बाद वह गहरी पर्त के हस्ताक्षर के रूप में सामने आई।

मेरे कहने का मुख्य आशय, मुख्य बात यह है कि मुनि जीवन में सहजता बहुत जरूरी है। आडंबर-दिखावा नहीं होना चाहिए। कथनी कुछ और करनी कुछ हो, वैसा व्यवहार नहीं होना चाहिए। यदि वैसा व्यवहार होता है तो व्यक्ति खिन्न रहेगा। स्वयं चौकन्ना रहेगा कि 'मेरी कोई बात प्रकट नहीं हो जाए, मेरा बना हुआ महल ढह नहीं जाए!' इससे बचने के लिए वह काफी सावधान और चौकन्ना होकर चलेगा और ऐसी चतुराई में सत्य और सहजता खोने वाला बन जाएगा।

महासती श्री मनोविजेता जी ने अल्पकालिक दीक्षा पर्याय में तपस्या भी कर ली और संथारा भी स्वीकार कर लिया। संथारे की भावना बनना भी कठिन काम होता है क्योंकि तन की ममता व्यक्ति जल्दी छोड़ नहीं पाता। शरीर पर रहा हुआ राग, शरीर पर रहा हुआ ममत्व, शरीर पर रहा हुआ मोह,

जब तक छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक संथारे की भावना पैदा होना मुश्किल है। भारत में कितने लोग भय से मर रहे होंगे, विश्व में कितने लोग रोज भय से मरते हैं किंतु समझ-पूर्वक मृत्यु का वरण करने वाले कितने होंगे?

इस बात पर यदि हम विचार करें तो कुछेक आत्माएं ही पंडित मरण के रूप में मृत्यु का वरण करती हैं और वह भी सजगतापूर्वक। कोई बेहोश हो गया और बेहोशी में ही उसकी मृत्यु हो गई तो वह मृत्यु हकीकत में पंडित मरण का रूप नहीं है। पंडित मरण यानी एकदम सजग। पूरी तरह होश में प्राणों के त्याग की तैयारी करना। इस तरह प्राणों का त्याग करना बहुत कम लोगों के नसीब में होता है।

चतुरसिंह जी का एक गीत है–

मरणो जानणो-2
आ मिनखां मोटी बात.... मरणो जानणो....
मरणो-मरणो सब कोई केहवे, मरे सभी नर-नारी रे।
मरवा पेला जो मर जावे, ते बलिहारी रे॥

मरण को जानना बहुत बड़ी बात है। मरने के पहले जो अपने आप को मार लेता है, क्या अर्थ है इसका? मरने के पहले जो अपने अहंकार को मार लेता है, अपने दर्प का त्याग कर देता है, वह बहुत बड़ी बात है। यहां पर अपने अहंकार को मार लेने की बात कही गई है। अहंकार बहुत जहरीला होता है।

सर्प के दांत में, दाढ़ में विष बना रहता है। जब तक उसकी दाढ़ में विष बना रहता है, तभी तक वह जहरीला होता है। दाढ़ से विष निकल जाने के बाद वह जहरीला नहीं रह गया। आप चंडकौशिक सांप को देखो। पहले जो कोई उसके सामने चला गया, उसकी आंख से आंख मिल गई, वह व्यक्ति वहीं खत्म हो जाता। भगवान महावीर के उपदेश के बाद वह जागृत हुआ। उसने अपनी देह के ममत्व का भी त्याग कर दिया। उसने सोचा कि मेरे कारण किसी जीव को वेदना नहीं हो, किसी को आघात नहीं पहुंचे। इसलिए उसने अपने मुंह को बिल में डाल दिया और बाकी शरीर बिल से बाहर रहा। जब लोगों ने देखा कि अब तो ये सुधर गया है, तो नाग देवता के रूप में उसकी पूजा होने लगी। लोगों ने घी, शक्कर, भोजन आदि चढ़ाए। उसकी

वजह से वहां चीटियां आने लगीं। चींटियों ने चंडकौशिक सर्प के शरीर को छलनी कर दिया। उसे भयंकर वेदना हुई होगी किंतु वह देह के प्रति ममत्व का त्याग करके चल रहा था।

ये प्रसंग बताता है कि प्रयत्न करने पर क्या नहीं हो सकता? जब इतना भयंकर, क्रूर और थोड़ी-सी बात में एकदम आक्रोशित होने वाला सर्प भी अपने जहर को शमित-उपशमित कर सकता है तो प्रयत्न करने पर क्या नहीं हो सकता।

हमारा अंतर हृदय यदि जगे तो बहुत कुछ स्थितियां स्पष्ट हो सकती हैं। जम्बू कुमार चरित्र के माध्यम से हम बहुत कुछ सुनते हैं। उनका चरित बड़ा प्रेरणाप्रद है, जो संसार की बहुत सारी अवस्थाओं पर दृष्टिपात कराता है और बहुत सारी अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराता है।

उसी में एक बात आती है जब सेठजी कहते हैं कि लक्ष्मी घर की शोभा नहीं है। घर की शोभा तो संतान है। वह आँगन, आँगन क्या, जिसमें बच्चों की किलकारियां नहीं गूंजतीं। चलते समय उसके पैरों के घुंघरू नहीं बजते हों। जिस आँगन में यह न हो, वह आँगन सूना लगता है। वह स्थल मरुस्थल के समान सूना लगता है। संतान के आने पर मरुस्थल में भी फूल खिलने जैसी स्थिति हो जाती है। इस प्रकार की अनेक बातों से सेठ ने सेठानी को संतुष्ट किया। सेठानी, बातें सुनकर प्रसन्न होती है, हर्षित होती है, उत्साहित होती है और बड़े जतन से गर्भ की सुरक्षा का ध्यान रखती है।

बहुत से लोग इस पर विचार नहीं कर सकते कि कितना सोना कितना जगना, कितना भोजन करना, कब भोजन करना और कैसा भोजन करना है। भोजन करना है, बस करना है। पर कब करना? कितना करना? कैसा करना? बहुत से लोग इसका विचार नहीं करते। जैसा आवे वैसा खा लो, वह तो ठीक है, उसमें वैसी कोई बात नहीं है, किंतु नीति में यह बताया गया है कि जब कड़क भूख लगे, तभी भोजन करना चाहिए। भूख है ही नहीं, फिर भी टाइम चुकाने के लिए अधिकतर लोग भोजन करते हैं। सुबह नाश्ता करने के बाद भूख नहीं है, फिर भी टाइम हो गया है इसलिए दोपहर का भोजन निपटाना है। इस प्रकार ऊपरा-ऊपरी यदि भोजन करता है तो पेट उसका पाचन नहीं करता है।

आयुर्वेद की दृष्टि से यदि विचार करें तो दो भोजन के बीच में लगभग 6 घंटे का अंतराल रहना चाहिए। यह अंतराल यदि रह जाता है तो आदमी जल्दी से बीमार नहीं पड़ेगा। कोई कहेगा कि बीमारी तो असातावेदनीय के उदय से आती है। वह अलग बात है, वह तो कारण है ही, किंतु कहीं-न-कहीं लापरवाही हुई है। सावधानी रहे तो जल्दी से वैसा प्रसंग नहीं बनता। असातावेदनीय का उदय हो भी गया तो वह प्रदेशोदय से भी नष्ट कर सकता है।

भोजन कब करना? जब अच्छी भूख हो, तब भोजन करना। कितना भोजन करना? एक जगह बताया गया है कि यदि तुम भूखे नहीं रह सकते हो तो भोजन कर सकते हो किंतु भोजन में थोड़ा कम आहार तो ले ही सकते हो। अर्थात् जितनी भूख है उससे थोड़ा कम भोजन करना चाहिए। ओवरलोडिंग नहीं।

जैसे एक ट्रक में माल भरा जाता है। उसकी क्षमता लगभग 9 टन की होती होगी और माल भरा जाता है 12-13 टन। हम सोचते हैं कि 2 बार का किराया क्यों लगे। जैसे ट्रक में ओवरलोड करते हैं, वैसे ही कई लोग खाने के लिए बैठ जाने पर जल्दी उठने का नाम ही नहीं लेते हैं। खाऊकड़ों की कमी नहीं है– 'बहुरत्ना वसुन्धरा'। वे इतना ज्यादा खा लेते हैं कि हिलना-डुलना भी मुश्किल होता है। फिर वे वहीं पर सो जाते हैं और भोजन को पचाते हैं।

यह हंसने की बात नहीं है। धरती पर अभी भी ऐसे रत्न भरे हुए हैं। अच्छा यह बताओ एक आदमी बादाम की कतली कितनी खा सकता है? (प्रतिध्वनि– दो-तीन) दो-तीन तो जोधपुर वाले खाते होंगे! बादाम की कतली होती ही कितनी है। यहां होती ही नहीं तो क्या खाएंगे? अभी भी ऐसा व्यक्ति मौजूद है, जो अपनी जवानी के दिनों में कहीं विवाह समारोह, शादियाँ होने पर एक धामा (भोजन परोसने का बरतन), 2 धामा और 3 धामा कतली खा लेता। मैंने एक बार पूछ लिया, भाई! वह पहले वाली खाने की आदत अभी भी है या कुछ कम हुआ! तो उसने कहा, कि नहीं, अभी तो उतना नहीं खाता हूँ। बस 1-2 धामा कतली खा लेता हूं। हां! अगर राजभोग मिल जाए तो 3 धामा और भी।

जैसे गाड़ी या बस खूब भरी होने पर भी अगर कोई वीआईपी आ जाए तो उसे सीट मिल ही जाती है। कोई नहीं तो कंडक्टर अपनी सीट

दे देता है और स्वयं खड़ा हो जाता है। वैसे ही वीआईपी भोजन के लिए जगह हो जाती है। किन्तु इस प्रकार का भोजन आलस्य को बढ़ाने वाला है। शरीर की कोशिकाओं को शिथिल करने वाला है। ऐसे भोजन से शरीर की कोशिकाओं में जो स्फूर्ति होनी चाहिए, वह नहीं रह पाती है। भले ही 2-4 दिनों के बाद थोड़ी स्फूर्ति आ जाए किन्तु एक बार तो वह शिथिल हो ही जाएगा।

माता धारिणी गर्भ में शिशु आने के बाद इन बातों की भी सावधानी बरत रही थी। वह ध्यान रखती थी कि मुझे कब और कितना भोजन करना है? कि जिसका मेरे शिशु पर कोई बुरा या विपरीत प्रभाव नहीं हो।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. फरमाया करते थे कि गर्भवती को उपवास नहीं करना चाहिए। बेला, उपवास, आदि तपस्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि गर्भ में रहने वाले शिशु का भोजन माता के भोजन पर निर्भर है। माताएँ यदि तपस्या करेंगी, अगर भोजन नहीं करेंगी, 2-3 दिन उपवास करती हैं तो शिशु को भोजन की प्राप्ति नहीं होगी। वैसे तपस्या करना अच्छा है, किंतु उस अवस्था में तपस्या से पुण्य की बजाए पाप होगा। शिशु भोजन के अभाव में पीड़ित होगा इसलिए गर्भवती माताओं को उपवास नहीं करना चाहिए। अल्प आहार करते रहने की बात कही गयी है, जिससे शरीर में स्फूर्ति बनी रहे। इसी प्रकार ज्यादा खट्टा, ज्यादा मीठा, तली हुई वस्तुओं को ज्यादा तथा अधिक नमकीन पदार्थों का सेवन भी नहीं करना चाहिए। ये स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक नहीं होते हैं। हितकर नहीं होते हैं। इसी प्रकार उसे शयन कितना यानी कितना सोना है, कितना जगना है यह भी ध्यान रखना चाहिए। गर्भवती माताएं यदि ज्यादा सोयेंगी तो गर्भस्थ शिशु आलसी बनेगा और यदि आधी-अधूरी नींद से उठेंगी तो गर्भस्थ शिशु में चिड़चिड़ापन आ जाएगा। इसलिए न तो अल्प नींद ही ठीक है और न ही ज्यादा सोना ठीक है।

मानसिक चिन्ता भी गर्भवती माताओं में नहीं होनी चाहिए। यदि वे मानसिक चिन्ता में उलझी रहेंगी तो उनकी संतान कुंठित हो जाएगी। इसलिए गर्भवती महिला को सदा प्रसन्न रहना चाहिए। किन्तु इतना ज्यादा हर्ष भी नहीं हो, जिसके कारण कोई क्षति हो जाए। यदि माता शोक भाव में रहेगी तो शिशु भी चिन्तामग्न, उदास रहेगा।

इसके साथ ही अनेक प्रकार से गर्भ का संरक्षण करने की बातें बताई गई हैं। माता धारिणी उन सारी बातों पर सहज रूप से ध्यान दे रही थी।

पुण्यशाली संतान के कारण माता धारिणी के मन में सुंदर भावनाएं पैदा हुईं कि मैं शास्त्रों का श्रवण करूं, व्याख्यान-वाणी का लाभ लूं, संत दर्शन का मुझे सुयोग मिले, शील व्रत की आराधना करूं, दान दूं, सुपात्र दान देने का मुझे अवसर प्राप्त हो। दीन दुःखियों को दान देने का अवसर मिले। 'दुखि देख करुणा करूं' जिससे दुःखी व्यक्ति भी सुखी हो जाए। ऐसे समय में माता के मन में जो विचार पैदा होते हैं, वे केवल माता के विचार नहीं होते हैं। उसमें गर्भस्थ शिशु की भावनाएं जुड़ी रहती हैं। कई माताओं के मन में विचार आता है कि मैं पत्थर खाऊं, मिट्टी खाऊं। अलग-अलग विचार आते हैं। जैसे कोणिक की माता को विचार आया था कि मैं अपने पति के कलेजे का मांस खाऊं।

धर्मनिष्ठ-धर्मात्मा महापुरुष की आत्मा यदि किसी गर्भ में होगी तो माता के मन में भी शुभ विचारों का संचार होता है। धारिणी माता के मन में भी शुभ विचारों का संचार हो रहा है। वह यथासंभव शास्त्र श्रवण करने लगी। धर्म ध्यान और शील का पालन करना, दान देना, दुःखी प्राणियों को अपने हाथों से खाना खिलाना, इस प्रकार की चर्या करते हुए वह अपना जीवन-यापन कर रही है। इस प्रकार का अपना जीवन व्यवहार बना रही है।

आगे क्या स्थिति बनती है, आगे विचार कर पाएंगे किन्तु श्री मनोविजेता जी के संथारे की स्मृति प्रसंग से हमें भी कुछ आत्म जागृति का बोध प्राप्त करना चाहिए। अपने मन में दृढ़ता लानी चाहिए कि क्या मेरा यह शरीर अमर रहेगा? मैं शरीर के ममत्व को पालता रहूंगा? यह शरीर छूटने वाला है। एक दिन हम सभी को ऐसे ही मिट्टी में मिल जाना है। लेकिन जाने से पहले यहां पर ऐसा कोई कार्य करो, जिससे कह सको कि मैंने अपनी जिंदगी में अच्छा कार्य किया है।

'अरे परदेशी ऐसा काम कर जा,
जाते-जाते तेरा यहां नाम कर जा।'

जाना तो है ही। जाते-जाते ऐसा कर जाएं कि जाने के बाद भी लोगों की निगाह में हम अजर रहें, अमर रहें। राम को गये असंख्य वर्ष हो गये, फिर भी हम सभी राम का नाम ले रहे हैं क्योंकि उन्होंने अपने कर्तव्यों का

निर्वहन किया। उनका पालन किया। इसीलिए आज हम सभी उनका स्मरण करते हैं। वे आज भी हम सभी के भीतर बसे हुए हैं। और कुछ नहीं तो हम ऐसा प्रयत्न जरूर करें कि अपनी जिंदगी में किसी का बुरा नहीं करेंगे। क्या नहीं करना?

(प्रतिध्वनि– बुरा नहीं करना है।)

सोच लो, जो करना है उसमें समय लगायें। इतना कहकर विराम...

21 जुलाई, 2019

4

चित्ताणुया लहु दक्खोववेया

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में एक गाथा आई है–

अणासवा थूलवया कुसीला, मिंउ पि चंडं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि॥

इसके उत्तरार्द्ध का अर्थ करते हुए जो बताया गया है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में जब हम अनुभव करते हैं, देखते हैं, विचारते हैं, दृष्टि दौड़ाते हैं, तब समस्याएं खड़ी नजर आती हैं। समस्या यह है कि खुलकर जो वार्तालाप, संवाद होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। ऐसा करने में कहीं-न-कहीं मन अटकता है। मन में कोई-न-कोई अटकाव बना रहने से खुलकर जो बात होनी चाहिए, वह नहीं हो पाती है।

जिसे मेरे खयाल से आप लोग बोलते होंगे– कम्युनिकेशन गेप। वार्तालाप में थोड़ा अंतराल बन गया। कोई समस्या या रुकावट पैदा हो गई। जैसा चाहिए वैसा वार्तालाप हो नहीं पा रहा है। दूसरी बात, अवरोध भीतर पैदा हुआ और खुलकर बात नहीं हो रही है तो मन उद्विग्न रहता है। मन में असंतोष रहता है। मन में व्याप्त असंतोष की लहर किधर कुठाराघात करेगी, यह नहीं कहा जा सकता।

'चित्ताणुया लहु दक्खोववेया' सूत्र में उसका बड़ा सुंदर समाधान दिया गया है। इसमें गहरी बात बताई गयी है। इसमें बताया गया है कि जिसके चित्त को जल्दी से कोई जान नहीं सकता। प्रश्न है जिस व्यक्ति का स्वभाव समझ में नहीं आ रहा है, उस व्यक्ति की बात कैसे समझी जाए?

उसके लिए बताया गया है कि आप उसके चित्त के अनुरूप काम करना शुरू कर दो। यदि उसके चित्त के अनुकूल कार्य शुरू कर दिया तो कैसा भी कठिन साध्य दिल होगा, कठिन साध्य मन होगा, उसको साधा

जा सकता है। असंभव तो कुछ है ही नहीं, दुनिया में। असंभव केवल यह है कि जीव, अजीव नहीं हो सकता और अजीव, जीव नहीं बन सकता। कोई भी जीव कभी भी अजीव नहीं बन सकेगा और अजीव, जीव नहीं बन सकेगा। हमने शरीर धारण कर लिया तो यह सजीव बन गया और यह जीव का भाव पैदा कर रहा है। जैसे ही चेतना निकली कि यह अजीव हो जाएगा। निर्जीव रह जाएगा। अभी जीव ने इसको अपना आवास बना रखा है। जीव की गतिविधियां इसमें हो रही हैं इसलिए इसको जीव के रूप में अभिव्यंजित किया जाता है।

कहने का आशय है कि अजीव का जीव होना असंभव है, बाकी कुछ भी असंभव नहीं है। हां, यह अवश्य है कि कुछ दुःसाध्य होते हैं और कुछ सुसाध्य होते हैं। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनको साधने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है। बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। सुसाध्य वह होता है जो थोड़ा-सा कुछ करने से सध जाता है। सफलता मिल जाती है। इसमें साधने वाले के तरीके पर निर्भर है कि वह किस तरीके से साध रहा है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. के जीवन का एक प्रसंग है। वैसे तो बहुत सारे प्रसंग हैं, किंतु बहुत सारे प्रसंगों में से एक मुख्य प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूं। पूज्य युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के साथ एक संत थे, श्री रतनलाल जी म.सा। उनका स्वभाव थोड़ा उग्र था। उग्र स्वभाव होने से उनको जल्दी से क्रोध आ जाता था। क्रोध में दो प्रकार के काम होते हैं। एक, सुना देना, बोल देना। बोलकर निकाल देना। दूसरा है भीतर-ही-भीतर घुटते रहना। किसी को क्रोध आ गया वह बोल नहीं पायेगा तो भीतर-ही-भीतर में घुटेगा।

अब कोई कहेगा कि दोनों में कौन-सा अच्छा है। क्रोध आवे तो बोल देना या घुटना? कौन-सा अच्छा रहेगा?

(सभा से प्रतिध्वनि– दोनों खराब हैं)

हकीकत यही है कि, दोनों अच्छे नहीं हैं। उसमें से किसी को अच्छे की संज्ञा देना नहीं। बोलने से बात बिगड़ती है। यदि व्यक्ति बोलता है, तो बात बिगड़ती है। यदि नहीं बोलता है, तो मन बिगड़ता है, शरीर बिगड़ता है। बिगाड़ दोनों तरफ होता है। बोलने से भी बिगाड़ होता है और नहीं बोलने से भी बिगाड़ होता है। श्री रतनलाल जी म.सा. की बात कर रहे हैं। गोचरी,

धोवन आदि की सारी व्यवस्था उनके हाथों में थी और उन्हें गुस्सा भी आ जाता था। उन्होंने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. से कहा– "गुरुदेव! ऐसा कोई साधु नहीं, जिस पर मुझे गुस्सा नहीं आया हो, किंतु ये श्री नवदीक्षित मुनि नानालाल जी म.सा. हैं, इन पर मुझे गुस्सा नहीं आता। कभी-कभी मैं गुस्से में आने का प्रयत्न भी करता हूं, किंतु मेरा गुस्सा आ नहीं पाता है। क्योंकि जैसे ही मैं उन पर गुस्सा करने जाता हूं ये विनय से इस प्रकार से प्रस्तुत होते हैं, विनय भाव से इस प्रकार मधुर वचन बोलते हैं कि मेरा गुस्सा हवा हो जाता है। गुस्सा आगे बढ़ ही नहीं पाता है।

गुस्से को भी रॉकेट चाहिए। उपग्रह भेजे जाते हैं ना! उपग्रहों को भेजने के लिए रॉकेट की आवश्यकता होती है। रॉकेट उसको ऊपर उठाता जाता है। वैसे ही अहंकार का पुट जितना गहरा है वह हमारे गुस्से को ऊपर उठाता है। अहंकार का रॉकेट न उठे, वह शिथिल हो जाए तो क्रोध आगे नहीं बढ़ेगा।

मैं बता रहा था चित्त के अनुसार तुम काम करो, फिर कोई कितना भी क्रोधी क्यों न हो, कोई कितना ही असंतुष्ट व्यक्ति क्यों न हो, उसके दिल में भी लहर व्याप्त होगी। क्योंकि उसके भीतर भी एक इनसान का दिल ही है ना! वह पत्थर तो नहीं है! लोग कहते हैं कि भावना से पत्थर भी पिघल जाया करते हैं।

एक बात याद आ रही है। भारत के दो वैज्ञानिकों ने रूस में शोध पत्र वाचन किया। विषय था, भूकम्प का। भूकम्प क्यों आता है, भूकम्प के कारण क्या हैं? उन्होंने उस पत्र वाचन में यह बात बताई कि पशुओं की चीख, उनकी आह 1058 मेगावाट की गति से गतिशील होती है। जहां पर सैकड़ों पशुओं की चीख जमा हो जाती है, आह जमा हो जाती है, उस आह से, उस चीख से पृथ्वी को धक्का लगता है। वह धक्का ही भूकम्प का रूप होता है।

ये वैज्ञानिकों की बात है। उन्होंने जैसा भी अनुसंधान किया, उसे बताया। हमारे लिए विचार करने की बात यह है कि पशुओं की आह यदि पृथ्वी को धक्का देकर भूकम्प पैदा कर सकती है, तो मनुष्य की भावना पत्थर को क्यों नहीं पिघला सकती है। परामनोविज्ञान के बहुत सारे प्रयोग आप लोगों ने सुने होंगे, देखे होंगे। किए तो शायद ही होंगे। परामनोविज्ञान के प्रयोगों से यह बताया गया है कि यदि पत्थर पर दृष्टि केंद्रित कर लो तो पत्थर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे।

आचार्य पूज्य गुरुदेव एक आख्यान फरमाते थे कि ट्रेन प्लेटफार्म पर खड़ी थी। एक अंग्रेज अफसर फर्स्ट क्लास के डब्बे में चढ़ा। वहां पहले से एक भारतीय फक्कड़ साधु, जमे हुए थे। अंग्रेज अफसर को भय होने लगा कि इसका इस डब्बे में रहना ठीक नहीं है। पता नहीं यह क्या कुछ कर दे। उसने स्टेशन मास्टर को बुलाकर कहा कि इस डब्बे को खाली कराया जाए। उनका यानी अंग्रेजों का राज चल रहा था। स्टेशन मास्टर ने कर्मचारियों से कहा और कर्मचारियों ने उनसे कहा कि बाबाजी! डब्बा खाली कर दीजिये। बाबाजी ने कहा, क्यों खाली करूँ, मैंने टिकट लिया है, टिकट से यात्रा कर रहा हूँ। कर्मचारियों ने कहा कि आप दूसरे डब्बे में आ जाइए, यह डब्बा खाली करना पड़ेगा। पर वे नहीं माने तो उन्हें जबरन पकड़कर बाहर किया गया। वह साधु दूसरे डब्बे में नहीं गया और बाहर प्लेटफॉर्म पर पड़ी एक बेंच पर सो गया। कर्मचारियों ने कहा कि दूसरे डब्बे में बैठ जाओ किंतु उन्होंने किसी की बात नहीं सुनी। उन्हें बहुत मनाया गया पर वे नहीं माने।

उधर उस अंग्रेज अफसर ने कहा कि, गाड़ी रवाना करो, किंतु गाड़ी रवाना नहीं हो रही है। गाड़ी चल नहीं रही है। इंजन सूं-सूं कर रहा है, किंतु गाड़ी आगे नहीं बढ़ रही है। दूसरा इंजन लाया गया, वो भी बढ़ नहीं पाया। काफी उपाय कर लिए, किंतु गाड़ी चली नहीं। वह अफसर कहता है कि मुझे जल्दी पहुँचना है किंतु अब करे तो करे क्या? गाड़ी तो चलेगी जब चलेगी, जैसे चलेगी वैसे चलेगी। अंततः शोध करने पर ज्ञात हुआ कि बाबाजी की आंखों से निकलने वाली रेंज, किरणें रेल के इंजन के पहियों को जाम किए हुए थी। इस कारण से रेल नहीं चल पा रही थी। ये परामनोविज्ञान का एक प्रयोग है। ऐसा असंभव नहीं है। यह तो बहुत सामान्य चीज है। यदि व्यक्ति एकाग्र भाव से कुछ करता है तो उसका असर होता ही है।

जम्बू कुमार के चरित में आपने सुना होगा कि जम्बू कुमार के वहां 500 चोर आ गए। जम्बू कुमार को पता चला तो उनको इतना-सा विचार आया कि यह धन आज की रात न जाए। सिर्फ ऐसे विचार से 500 चोरों के पैर चिपक गए।

यह घटना बताती है कि विचारों का कितना प्रभाव होता है। जो विचार मन से उद्भूत होते हैं, जो एकदम गहराई से उभरे हुए होते हैं, उनका बहुत बड़ा प्रभाव होता है। हमारे विचारों में, हमारी दृष्टि में वह खासीयत हो सकती है जैसा मैंने बताया था कि पत्थर टूट जाता है, रेल रुक जाती है। यह अवश्य

ही संभव है। किससे संभव है? परामनोविज्ञान से संभव है। जब हम पत्थर को पिघला सकते हैं तो क्या एक व्यक्ति के दिल को नहीं पिघलाया जा सकता?

पत्थर को पिघलाने और तोड़ने में वाहवाही हो सकती है और यदि चित्त को अनुकूल बना लेंगे तो? यह ध्यान रखिए कि हम पहले अपने दिल को टटोलें कि मैं उसके अनुकूल कितना हूं? यदि उसके अनुकूल नहीं हूं, तो मैं उसे अपने अनुकूल कैसे बना सकता हूं। किसी को अपने अनुकूल बनाने के लिए, पहले स्वयं को उसके अनुकूल बनना है। हमने एक बात सुनी है। आप लोगों ने कई बार यह बात सुनी होगी कि गौतम, भगवान से शास्त्रार्थ करने के लिए, भगवान को पराजित करने के लिए पूरे दल-बल से, अपने पूरे शिष्य समुदाय के साथ अग्रसर हुए, पर भगवान के पास आने के बाद वे उनसे शास्त्रार्थ नहीं कर पाये। वे भगवान के बनकर रह गए। भगवान का एक संबोधन उनके दिल को छूने वाला बन गया। दिल को जैसे ही छूने वाला बना कि, दिल अपने आप उनके अनुकूल बन गया। हम किसी को भी अपने अनुकूल बना सकते हैं। बशर्ते कि पहले अपने दिल को उसके अनुकूल बनाने का प्रयत्न करें।

एक कहानी आती है हमारे जैन सिद्धांत में जो आप लोगों ने पहले भी कभी सुनी होगी। अभय कुमार का नाम सुना होगा। मगध सम्राट श्रेणिक का पुत्र, नंदा का आत्मज। उसने जब देखा कि काल शौकरिक कसाई किसी भी प्रयत्न से कसाईखाना बंद करने को तैयार नहीं है, तब अभय कुमार ने उसके पुत्र सुलस से दोस्ती चालू की। दोस्ती कैसे की जाती है? दोस्ती में दिल देना पड़ता है। बिना दिल दिए दोस्ती नहीं होती। दांपत्य जीवन में पति-पत्नी का संसार बिना दिल दिए भी चल जाता है किंतु दोस्ती बिना दिल दिए नहीं चला करती। बिना दिल दिये चलेगी तो ऊपर-ऊपर में चलेगी, वह सच्ची दोस्ती नहीं होगी।

अभय कुमार ने उसके पुत्र को ऐसा दोस्त बना लिया कि अभय कुमार जैसा कहता, सुलस वैसा करता। उसे अभय कुमार पर इतना विश्वास हो गया कि यह कभी भी मुझे गलत राह पर नहीं ले जाएगा। अभय कुमार ने दोस्ती करके उसको अपने प्रवाह में ढाल दिया और उसे 12 व्रतधारी श्रावक बना दिया। क्या कर दिया?

(प्रतिध्वनि– बारह व्रतधारी बना दिया)

आपने कभी अपने मित्रों को, अपने से जुड़े लोगों को, अपने कर्मचारियों को, अपने नौकर-नौकरानियों को, किसी को व्रतधारी बनाया? कभी दर्शन करने आयेंगे तो कहेंगे म.सा. इनको नियम दिला दो रोज नवकार मंत्र को गिनेगा। संत पूछते हैं– आपने सीखा तो दिया? तो कहते हैं कि वो तो हम सीखा देंगे। फिर आपने इतने दिन तक क्या किया? आज म.सा. को कह रहे हो कि इसे नवकार मंत्र गिनने का नियम दिला दो। हम सीखा देंगे। इतने दिन तक हुआ क्या? हमारा जीवन बोलना चाहिए कि बिना हमारे मुंह से कहे, हमारे इर्द-गिर्द वाले हमारा अनुकरण करने लग जाएं।

नीति का एक श्लोक है–

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते,
हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः,
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः॥

इसमें यह बात बताई गई है कि मुंह से कहने पर, इशारा करने पर तो पशु भी चलता है। इशारा करने से, डंडा दिखाने से तो पशु भी चल जाता है। आदमी को भी यदि इशारा करना पड़े, डंडा दिखाना पड़े तो फिर पशु और आदमी में अंतर क्या होगा? आदमी वह होता है जो बिना इंगित के भावों को जानने वाला हो जाए, समझने वाला हो जाए। हम यदि वैसा जीवन जी रहे होते हैं, तो हमारा जीवन आदर्शमय जीवन होगा। फिर हमारे इर्द-गिर्द वाले निश्चित रूप से हमारे जीवन का अनुकरण करेंगे।

बहुत सारे प्रसंग-उदाहरण हैं कि हमारे आसपास रहने वाले, बिना कहे भी अनुकूल आचरण करने वाले होंगे। शालिभद्र की कहानी में एक पार्ट आता है। कुछ व्यापारी रत्न कंबल लेकर आए किंतु रत्न कंबल बिके नहीं। सम्राट श्रेणिक को भी रत्न कंबल दिखाया गया। सम्राट को वे रत्न कंबल पसंद भी आ गए किंतु उन्हें उनकी कीमत अधिक लगी। एक रत्न कंबल की कीमत सवा सौ सोनैया थी।

16 कंबलों में से एक भी कंबल नहीं बिका। कंबल बेचने वाले एक जगह विश्राम कर रहे थे। गहरे श्वासोच्छ्वास छोड़ रहे थे। दुःखी व्यक्ति और सुखी व्यक्ति के श्वास लेने और छोड़ने में फर्क होता है। जिधर वे विश्राम कर रहे थे उधर ही शालिभद्र की दासियां कुएं पर पानी भरने के लिए आई थीं। दासियों ने

उनके श्वासोच्छ्वास की गति, चेहरे के उड़े रंग को देखकर उनकी मनःस्थिति को जान लिया। दासियों ने उनसे पूछा कि तुम लोग क्यों दुःखी हो। उन्होंने कहा कि हमारे दुःख की बात तो हम ही जानते हैं। अपना दुःख दूसरों को बताने से फायदा क्या? यदि बता भी दिया तो उसका उपाय नहीं मिल सकता। दूसरे व्यापारी ने कहा कि बताने में क्या जा रहा है, पूछ रही हैं तो, इनको भी बता देते हैं। उसने बताया कि हम राजगृही नगरी को बहुत महत्त्व दे रहे थे। सुना था कि यहां पुरानी कला के पारखी बहुत लोग हैं। यहां के लोगों को कला की पहचान है। हमने 16 कंबल तैयार किए और सोचा कि लाभ मिल जाएगा किंतु लाभ तो दूर की बात, मूल का भी टोटा पड़ता लग रहा है। इन कंबलों को तैयार करने में हमने अपनी सारी पूंजी लगा दी। यहां आने पर निराशा मिली। अब तो हमें हमारा भविष्य एक प्रकार से अंधकारमय नजर आ रहा है।

दासियों ने कहा कि आप हमारे साथ चलो। हम तुमको यह वचन तो नहीं दे सकती कि तुम्हारे कंबल बिकेंगे ही किंतु तुम्हें आश्वस्त जरूर कर सकती हैं कि भरोसा रखो, कंबल बिक सकते हैं। आओ, हमारे साथ चलो। यह सुनने पर भी एक व्यापारी का मन नहीं हुआ पर दूसरे ने कहा कि चलो एक बार और चल लेते हैं। वे चले और वहां पर उनकी कंबलें बिकीं।

मैं बात यह बताना चाह रहा था कि, हमारे व्यवहार का, हमारे विचारों का, हमारे इर्द-गिर्द लोगों पर प्रभाव पड़ता है। शालिभद्र, सेठानी की बात, उनकी नौकरानियां जान रही थीं। वे उसके चित्त को जान रही थीं। वे व्यापारी को इस विश्वास पर लेकर आ गईं कि भद्रा सेठानी राष्ट्र को नीचा दिखने जैसा नहीं होने देगी। नौकरानियों ने सोच लिया था कि यहां से जाने के बाद ये व्यापारी, देश की, राजगृह नगरी की बदनामी करेंगे। और हमारी सेठानी राष्ट्र के हित में पैसे के लिए विचार नहीं करेंगी।

यह विश्वास किनको था? दासियों को था ऐसा विश्वास। हमारे नौकर, हमारे कर्मचारी, हमारे व्यापारी, हमारे आस-पास के लोग हमारे प्रति इतने विश्वस्त हैं कि ये धर्म के क्षेत्र में, चाहे मारणांतिक कष्ट भी आ जाये किंतु धर्म बदनाम नहीं होने देंगे और धर्म के लिए कुछ भी करना होगा, ये कर-गुजरने के लिए तैयार हो जाएंगे।

हमारे आस-पास के लोगों पर कितने लोगों को विश्वास है कि ये धर्म के मामले में पीछे खिसकने वाले नहीं हैं? चाहे कुछ भी हो जाए, चाहे कोई

भी कष्ट आ जाए किंतु धर्म से डोलने वाले नहीं हैं। होता है विश्वास? सोचने वाली बात है।

हमारे भीतर दृढ़ता है तो सामने वालों पर उसका असर आएगा ही। उसका असर नहीं आए, यह बहुत कठिन है। कोई व्यक्ति किसी साधु के पास रह रहा है, तो धीरे-धीरे वह साधु बन सकता है। कोई व्यक्ति यदि चोरों के ग्रुप में चला गया तो धीरे-धीरे उसमें भी चोरी के संस्कार आ सकते हैं। एक व्यक्ति यदि शराबी के संग जाता है, जुआरी की संगत में आ जाता है तो धीरे-धीरे उसमें शराब की, जुए की लत आ जाती है। इसलिए कहा जाता है कि संगत ऐसी करनी चाहिए, जो हमारे जीवन को ऊंचा उठा सके। ऐसी संगत नहीं करनी चाहिए जो हमारे जीवन को नीचे की ओर ले जाए।

काल शौकरिक कसाई के पुत्र से संगत करना खतरे से कम काम नहीं था किंतु अभय कुमार को अपने आप पर इतना विश्वास था कि यदि वह उसके पुत्र के साथ रहा तो भी उसके बहाव में बहने वाला नहीं है। बल्कि उसे अपनी तरफ मोड़ने का प्रयत्न करता है। हमें अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते आना चाहिए। ऐसा तब होता है जब हमारे भीतर इतनी ताकत हो। क्योंकि सामने वाले के दस तर्क मेरे सामने आएंगे तो मुझे बहुत ही प्रेम से, बहुत ही स्नेह और बहुत ही मधुर भाव से उनके सारे तर्कों का समाधान करना होगा। उसमें विश्वास पैदा करना होगा। बहुत बड़ी बात है विश्वास पैदा करना। एक बार विश्वास पैदा हो गया तो फिर वह किसी व्यक्ति को जिधर ढालना चाहे वैसा ढाल सकेगा। सबसे बड़ी बात है, विश्वास पैदा करना। विश्वास पैदा हो जाने के बाद आप उसके हित की जो भी बात कह रहे हों तो सहसा ऐसा नहीं होगा कि वह आपकी बात को टाल दे। ऐसा नहीं होगा कि वह उस बात को स्वीकार नहीं करेगा।

मैं बात बता रहा था श्री रतनलाल जी म.सा. की। उस समय वे कहते हैं युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. से कि यह नवदीक्षित मुनि नानालाल जी, अभी कुछ ही समय पहले दीक्षित हुए हैं और ये इतने विनीत हैं कि कितनी बार ही मैंने प्रयत्न किया कि इस पर गुस्सा करूं, किंतु मुझे इन पर गुस्सा नहीं आ पाता। ये इतना कम और इतना मधुर बोलते हैं कि मुझे गुस्सा नहीं आ पाता। अगर गुस्सा करने की कोशिश भी करूं तो ये मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि, मेरा गुस्सा आगे बढ़ ही नहीं पाता।

'चित्ताणुया लहु दक्खोववेया' सूत्र में कहा गया है कि तुम चित्त के अनुरूप कार्य करना शुरू कर दो तो कठिन से कठिन मनोवृत्ति भी पिघल जायेगी। कठोर से कठोर दिल पिघल जायेगा। श्री रतनलाल जी म.सा. ने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. से कहा कि गुरुदेव! अगर मैं उनके साथ 2-4 साल रह गया तो मेरा गुस्सा भी पता नहीं कहां चला जाएगा।

यह किस कारण से होगा? संगत का प्रभाव पड़ेगा या नहीं? संगति का प्रभाव पड़ता है।

'जैसी संगत, वैसी रंगत।' यदि निरन्तर ऐसे व्यक्ति का सान्निध्य मिला या ऐसा वातावरण मिले तो कितना भी क्रूर स्वभाव का व्यक्ति हो, कितना भी क्रोधी हो, उसका क्रोध भी आखिर में डाउन हो सकता है। डाउन हो जाएगा। वह क्रोध रह पाएगा क्या? क्रोध को भी पनपने के लिए कोई स्थान चाहिए, खुराक चाहिए। जब उसको पनपने के लिए कोई वातावरण, खुराक ही नहीं मिल रही है तो वह कैसे पनपेगा?

एक व्यक्ति क्रोधी है और एक व्यक्ति पूर्ण सहनशील है। जिसके भीतर क्रोध नहीं है, मधुर है, विनीत है, वहां पर क्रोध का दांव नहीं चलेगा। क्रोध का दांव वहीं पर चलता है, जहां पर क्रोध का अंश बना रहता है। जहां पर क्रोध को बढ़ाने के लिए खुराक मिल जाती है।

बिजली कहां गिरती है? बिजली कहां पर गिरती है? मुझे पता नहीं वैज्ञानिक लोग क्या मानते हैं, किन्तु पुराने लोग कहते थे कि कांसे की थाली पर कड़के बिजली। कांसे की थाली या बरतन बाहर नहीं रखना चाहिए क्योंकि कांसे की थाली के ऊपर बिजली गिरती है।

दंत कथा चल रही है कि कंस ने जिस लड़की को पछाड़ा था। देवकी के पास सातवी संतान को देखा, कृष्ण के बजाय वहां कौन थी? लड़की थी। वहाँ संतान का आदान-प्रदान हुआ था और वह भी मृत थी फिर भी कंस ने उसको पटका तो वह लड़की बिजली के समान उछलकर ऊपर चली गई। इस पर ऐसी कहावत प्रचलित हो चली कि जहां पर भी कंस का अंश होता है, वहां पर बिजली आकर गिरती है। होता क्या है मुझे ज्ञात नहीं। वैज्ञानिक लोग क्या मानते हैं वह अलग बात है किंतु यह कहावत है कि जहां कंस का अंश होता है, वहां पर बिजली कड़कती है। वैसे ही हमारे भीतर क्रोध के अंश रहते हैं। वे अंश प्रकट होकर सामने वाले के क्रोध को बढ़ाने वाले हो जाते हैं। यह

निश्चित है कि यदि सामने वाला क्रोध में है और आप एकदम शांत बने रहो तो उसका क्रोध भी शांत होगा। होना पड़ता है। वह पनप नहीं सकता। बन ही नहीं सकता। पर इसके लिए अपने भीतर भी उतनी तैयारी होना जरूरी है। जितनी चाहिए उतनी तैयारी नहीं होती है तो हम बातें ऊंची-ऊंची कर सकते हैं किंतु उसका परिणाम, रिजल्ट शून्य के रूप में आएगा क्योंकि उसके आगे कुछ नहीं हो सकता। मैं थोड़ी-सी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हूं तो सामने वाला भी तैयार नहीं है। ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तैयार हूं। वैसी स्थिति बनने पर, वहां क्रोध को पनपने के लिए, क्रोध को बढ़ाने के लिए पूरा अवसर प्राप्त होता है। वहां क्रोध शांत हो ही नहीं सकता।

श्री रतनलाल जी म.सा. कहते हैं कि अगर मैं 2-4 साल नानालाल जी म.सा. के साथ रह गया तो हो सकता है मेरा क्रोध ही चला जाए। मेरा क्रोध ही छूट जाए। आज कई लोगों को यह चिन्ता लग जाती है कि यदि क्रोध ही चला जाएगा? तो फिर मेरे साथ क्या रहेगा यह भी एक चिन्ता लग जाती है।

लोग क्रोध से पीड़ित हैं, परिवार समाज– उसके दुष्परिणामों को भोग रहा है। ऐसे लोग क्रोध को छोड़ने के बजाए पंडितों-ज्योतिषियों के पास जाते हैं। कुण्डली दिखाते हैं। दुःखों को दूर करने का उपाय पूछते हैं। क्या बतायेगा ज्योतिषी? अमुक ग्रह का दोष, अमुक ग्रह की महादशा। हकीकत में मोह-राग-द्वेष कषाय रूपी ग्रह लगे रहते हैं तो उनका फल भोगना पड़ता है। उनको हटाने के लिए तो व्यक्ति तैयार नहीं, वह चाहता है कि ज्योतिषी कोई उपाय बता दे।

यहां बैठने वालों में से बहुत सारे लोगों की जन्म कुण्डली बनी हुई होगी। बनी हुई है या नहीं? किस की कुंडली ऐसी है जिसकी कुण्डली में पाप ग्रह है ही नहीं। है कोई यहां पर? कोई है क्या, जिसकी कुण्डली में पाप ग्रह हैं ही नहीं। हम जानते हैं कि पाप ग्रह क्या है? पुण्य ग्रह क्या है? जन्म लेते वक्त परिवार वालों ने कुण्डली बना दी होगी। 9 ग्रह तो जानते हो ना? सदा 9 ही रहते हैं या 8 हो जाते हैं? कोई अस्त रहे या उदय, ग्रह तो 9 रहेंगे ही। 9 ग्रह ही रहेंगे। कोई भी किसी ग्रह को कुण्डली से बाहर नहीं कर सकता है। 9 ग्रह हर समय आकाश में रहेंगे तो फिर शुभ मुहूर्त और अशुभ मुहूर्त क्या हुआ? यह ज्योतिष की बात है।

ज्योतिष में विश्वास करने वाले ज्योतिष की बात करते हैं। वह भी विद्या है। गणित है। उसका भी असर रहता होगा। ज्योतिष भी अपने आप में महत्त्व रखता है। किन्तु पुरुषार्थी जीव ज्योतिष के भरोसे नहीं बैठे रहते। वे मुहूर्त का इतंजार नहीं करते। वे जिस समय जो कुछ क्रिया करते हैं, उस समय मुहूर्त अपने आप सही, शुभ और उनके अनुकूल बन जाता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि कोई कार्य शुरू करने के लिए ज्योतिष के अनुसार गणित सही नहीं बैठ रही है, मुहूर्त नहीं बैठ रहा हो, कोई ग्रह-गोचर नाराज चल रहा हो या कोई आगे-पीछे हो रहा हो लेकिन उस कार्य को करने के लिए उसके मन में प्रबल पुरुषार्थ का भाव है, मन में उमंग है तो वह सबसे अच्छा मुहूर्त है। उससे अच्छा मुहूर्त हो नहीं सकता।

रायबरेली की बात है, सकलेचा जी आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री जवाहर लाल जी म.सा. की सेवाओं का लाभ लेते थे। उनके पुत्र कुबेर सिंह जी सकलेचा भोपाल में एक दुकान लगाना चाहते थे। वे पिता जी से यह बोलकर गए कि मैं भोपाल में दुकान लगाने जा रहा हूँ। वहां गए तो किसी ने कहा कि आप दुकान लगा ही रहे हो तो कम-से-कम किसी पंडित जी से मुहूर्त तो निकलवा लो। वे ज्योतिषी के पास चले गए। ज्योतिषी ने उन्हें अपनी गणित करके बताया कि तुम्हारे ऊपर ढाया शनि है। ढाई साल का शनि लगा हुआ है। अगर दुकान खोलनी है तो ढाई साल के बाद खोलना। अभी खोल दी तो ढाई साल तक मुनाफा होगा नहीं। हो सकता है जो पैसा लगाओ वह भी डूब जाए, वापस नहीं आए। वे बड़ी उमंग से गए थे किंतु ज्योतिषी ने यह बात कही तो वापस आ गये कि जान-बूझकर अग्नि में कौन कूदे या जान-बूझकर कुएं में धन कौन डाले? जब वे वापस लौटकर आये तो पिता जी ने पूछा कि क्या हुआ? तुम तो भोपाल में दुकान लगाने गए थे, वापस क्यों आ गए? उन्होंने बताया– मेरे मित्र ने कहा कि दुकान लगा रहे हो तो ज्योतिषी से पूछ तो लो। पूछा तो ज्योतिषी ने बताया कि तुम्हारे ऊपर ढैया शनि लगा हुआ है। ढाई साल शनि की छाया रहेगी। यदि अभी दुकान लगा दी तो नुकसान हो जाएगा। पिताजी ने पूछा, तुम्हारा उत्साह कैसा है? तुम्हारे मन में उमंग कितनी है? उन्होंने कहा कि मेरे मन में उमंग तो बहुत है। अभी भी मन है दुकान लगाने का किन्तु मित्र लोग नहीं लगाने के लिए कह रहे हैं। पिता ने कहा, तुमने जवाहराचार्य के व्याख्यान नहीं सुने। जवाहराचार्य ने

कहा है और जैन सिद्धांत भी कहता है कि सबसे बड़ी पुरुषार्थ की महिमा होती है। तुम्हारे भीतर यदि उमंग है तो सभी मुहूर्त अनुकूल हैं।

मांगलिक सुनकर वे चले गए और वहां जाकर दुकान लगाई। वे जब आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. के दर्शन करने उपस्थित हुए तो उन्होंने बताया कि महाराज! मुझे लोगों ने और पंडित जी ने भी कहा कि ढाई साल का शनि लगा हुआ है किंतु पहले ही वर्ष में इतनी आमदनी हुई जितनी की मुझे उम्मीद नहीं थी। यह हुआ उमंग से। कार्य उमंग, प्रबल भावना के साथ हो तो अद्‌भुत चमत्कार होता है। उमंग सारे ग्रहों, दोषों को किनारे लगा देती है। यदि हम उत्साह और उमंग के साथ कार्य को करते हैं तो कार्य में कोई ग्रह आड़े नहीं आ पाता। यदि इसका उत्तर चाहिए तो, उदाहरण जानिये–

आप देखें जन्माष्टमी के समय, कंस ने किसको जेल में डाल रखा था? कंस ने वसुदेव जी और देवकी को जेल में रखा है और संगीन, घना पहरा लगा दिया था। पहले 6 पुत्र जन्म ले चुके हैं। 7वीं संतान का जन्म होने वाला है। 7 वीं संतान से कंस को ज्यादा भय है। इसलिए कंस ने ज्यादा संगीन पहरा लगा दिया। कोई पक्षी भी भीतर प्रवेश नहीं कर सके। ऐसी परिस्थिति में कृष्ण वसुदेव ने जन्म लिया। देवकी महारानी अपने पति से कहती हैं कि हे नाथ! इसकी रक्षा कीजिए! वासुदेव जी ने कहा– कहां से करूं, कैसे करूं? देवकी ने कहा, भावना प्रबल रखिए। उन्होंने कृष्ण को उठाया और चल पड़े। बाहर निकले तो देखा बाहर जितने भी चौकीदार थे, सो गए। नींद आ गई। जब वहां से और आगे चले तो देखा नगर का द्वार बन्द है। अब कैसे जाएं आगे? थोड़ा-सा आगे जाने पर जब 'हरि का अगूंठा अड़ा' श्रीकृष्ण का पैर ताले को लगा तो ताला खुल गया। आगे चले तो यमुना का पानी पूर पर था। सोचा इसको कैसे पार करें? उन्होंने उसको भी पार कर लिया। भावना यदि प्रबल है तो सारी चीजें हमारे अनुकूल होती चली जाती हैं। पुण्य प्रबल हो तो सारे योग हमारे अनुकूल होते हुए चले जाते हैं। हमारा पुण्य प्रबल हो और भावना भी प्रबल हो तो सब ठीक हो जाता है।

पुराने लोग कहा करते थे कि 'रोता-रोता जावे तो मरयोड़ा रा समाचार लावे।' मेरा कहने का आशय है कि यदि पुण्यवाणी प्रबल है तो ज्योतिष और ग्रह हमारे अनुकूल रहेंगे। कोई भी हमारे प्रतिकूल नहीं होने वाला है।

आज किसी का मुख्यमंत्री पद पर चयन हुआ या कोई प्रधानमंत्री बन रहा है अथवा कोई विधायक का चुनाव जीतता है तो बधाइयों के ढेर लग

जाते हैं। मोबाइल पर कॉल आने लग जाते हैं। बधाइयां और हर्ष व्यक्त किये जा रहे हैं। वैसे ही पहले के समय में जब संतान घर में जन्म लेती, संतान का जन्म होता तो बधाइयां दी जाती थी। बधाइयों के साथ ही जिस घर में शिशु का जन्म हुआ परिवार वाले दान-पुण्य किया करते थे। बधाइयों के रूप में धन आदि के माध्यम से लोगों को तृप्त किया जाता था। नौकर-नौकरानियों को उपहार के रूप में धन दिया जाता था। गरीब, दुःखी, असहायों को भरपूर सहयोग दिया जाता था। इसके पीछे बहुत बड़ा रीजन था। कारण था। कारण यह है कि अनेक लोगों की दुआएं उस शिशु को प्राप्त होती। कहा भी जाता है कि जो काम दवाओं से नहीं होता वह काम दुआओं से हो जाता है। अनेक गरीबों को जब राहत मिलेगी तो वे बोलेंगे कि कैसे पुण्यवान जीव का जन्म हुआ है। उन सबके दिल से आशीर्वाद का भाव निकलेगा। वह आशीर्वाद फलीभूत होता है। कहा भी है कि– गरीब को मत सता। गरीब रोएगा तो आह निकलेगी। गरीब जितना रोता है गरीब का दिल भी उतना ही रोता है।

उसी प्रकार यदि गरीब खुश होगा तो उसके भीतर से जो भाव प्रतिफलस्वरूप निकलेंगे वह हमारे लिए लाभकारी हो सकते हैं। यह पुराना रीति-रिवाज था। आज भी चल रहा होगा किंतु आज सिर्फ 'जय जिनेन्द्र सा' तक लोगों का भाव रह गया होगा। केवल ऊपरी लेवल तक रह गया। गरीबों के प्रति सद्भावना, दुःखी लोगों के प्रति सद्भावना कितनी, क्या रही है, कह नहीं सकता। उस जमाने में जो परंपरा रही थी, वह पुण्य और सद्भावना को बढ़ाने वाली थी। उससे पारस्परिक स्नेह सौहार्द्र भी बढ़ता। आज भी वह परम्परा उतनी ही प्रभावी बन सकती है बशर्ते उसका ईमानदारी से और सच्चे मन से प्रयोग किया जाय। प्रवचन के प्रारम्भ में मैंने बताया था कि कठोर हृदय को भी पिघलाया जा सकता है। कैसे? उसके चित्त के अनुकूल बन कर। ऐसा भी पुण्य योग से संभव है। पुण्य से स्वयं को पवित्र बनाएं एवं दुर्जय पर जय पाएं।

22 जुलाई, 2019

5

कुत्तो अन्नाणं सासिउं

अप्पणो य परं नालं कुत्तो अन्नाणं सासिउं

आगम का एक-एक सूत्र महत्त्वपूर्ण है। हम किसी भी सूत्र को उठा लें, सभी महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन ये सूत्र तब महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं, जब उनका जीवन में आचरण हो जाए।

यदि मैं यह कहूं कि ये सारे सूत्र जीवन में आचरित होकर हमारे सामने आए हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्रीमद् सूत्रकृतांग सूत्र में अन्य तीर्थिकों की बात को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि वे स्वयं में अनुशासित नहीं हैं। जो स्वयं अनुशासित नहीं हैं वे दूसरे को क्या अनुशासित कर सकते हैं?

इन सूत्रों में चार प्रकार के वाद बताए गए हैं– अज्ञान वाद, क्रिया वाद, अक्रिया वाद और विनय वाद। इनमें अज्ञान वाद कहता है कि ज्ञान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञान करने पर मन में उथल-पुथल मचेगी जिससे आदमी और ज्यादा विवाद, बिगाड़ की ओर जाएगा। इसलिए कहा गया है कि नहीं जानने में ज्यादा फायदा है। विनय वाद कहता है कि विनय करना चाहिए। कोई भी हो हमें उसका विनय करना चाहिए। हमारे सामने कुत्ता आ जाए या बिल्ली, उसका विनय करो। क्रिया वाद कहता है कि हमें क्रिया करनी चाहिए और अक्रिया वाद कहता है कि ज्ञान बहुत करो, किंतु क्रिया करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञान से मुक्ति मिलेगी, क्रिया से मुक्ति मिलने वाली नहीं है।

एक समय ये वाद रहे हैं। आज के समय में भी वाद पर ऐसी विचारणा कइयों की हो सकती है, किंतु भगवान महावीर कहते हैं कि जब अज्ञान वादी स्वयं अज्ञान में जी रहे हैं, उनका स्वयं पर अनुशासन नहीं है, दूसरों को शिक्षा

देने की क्या आवश्यकता है। जब आप कहते हो कि अज्ञान ही श्रेयस्कर है, अज्ञान में ही जीना चाहिए। ज्ञानी आदमी दुःखी होते हैं, इसलिए व्यक्ति को अज्ञान में ही रहना चाहिए। जब वह मानता है कि अज्ञान में ही रहना चाहिए तो दूसरे को ज्ञान क्यों दे रहा है? दूसरे को अनुशासित क्यों कर रहा है।

भगवान महावीर कहते हैं कि अनुशासन स्वयं का स्वयं पर होता है। दूसरे तुम्हें अनुशासित करें, इससे अच्छा है कि तुम अपने आप अनुशासित हो जाओ।

'वरं मे अप्पा दंतो', यह ऐसी धुरा है, एक ऐसा पथ है जिससे हम अपने आप को अनुशासित कर सकते हैं। श्रेष्ठ है कि अपने आप से अपना दमन करो, अपना अनुशासन स्वयं ही करो। कोई दूसरा तुम्हें कानून के माध्यम से बाध्य करे, तुम्हें अनुशासित करे तो वह तुम्हारे हित में नहीं है। यह तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है। उससे तुम्हारे मन में कसक पैदा होगी कि इसने मुझे जबरन बांध लिया। हम यदि आत्म नियंत्रित हों तो किसी दूसरे को हम पर नियंत्रण करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। भगवान महावीर का शासन या भगवान महावीर के सिद्धांत में यदि हम देखेंगे तो यह बात मिलेगी। उन्होंने इस पर जोर दिया है। भगवान महावीर कहते हैं– 'अहासुहं देवाणुप्पिया' यानी तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो। कोई रुकावट नहीं है। क्या करना चाहते हो देख लो, मगर सुख पैदा होना चाहिए।

सुख किसमें पैदा होता है? खाने में सुख पैदा होता है या तपस्या में? तपस्वी आदमी तपस्या करने से सुख प्राप्त करेंगे और खाने वाले यदि तपस्या कर लेंगे, ठीक हुई तब तो ठीक, नहीं तो उनको कठिनाई हो जाएगी। पर यह अवश्य है कि हमें किसी-न-किसी तप से अपने आप को भावित करना चाहिए। उपवास, बेला, तेला ही तप नहीं है। वह भी तप है। उपवास, बेला, तेला बाहर दिख जाता इसलिए हम इस पर थोड़ा जल्दी रुझान बना लेते हैं। यह बात अलग है। किंतु नहीं दिखने वाला तप भी है।

भूख से कम खाना तप है या नहीं? द्रव्य से भी लाभ है और भाव में भी लाभ है। द्रव्य से लाभ क्या है? इसमें थोड़ा अन्न बचेगा। अन्न बचना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है किंतु वहां भी भाव से लाभ होता है। यदि आदमी ठूंस-ठूंसकर नहीं खाये, अपने पेट को परिपूर्ण नहीं करे, जितनी भूख है, उससे थोड़ा कम खाता है तो जल्दी बीमार नहीं पड़ेगा। कहते हैं कि जो

ज्यादा खाते हैं उनको वैद्य को बुलाना पड़ता है। जो अल्प बोलने वाला होता है, अल्प खाने वाला होता है, उंडे में सोने वाला होता है, उसके यहां वैद्य नहीं आते। न उसके यहां चिकित्सक आते हैं और न उसको चिकित्सक के घर जाना पड़ता है। वह अपनी चिकित्सा स्वयं कर लेता है। भूख से कम खाना, बहुत बड़ी चिकित्सा है। पानी कब पीना चाहिए, यह भी अपने आप में एक चिकित्सा है। पानी भी एक चिकित्सा है। हम जब चाहें तब खा लेते हैं। जब चाहें तब पी लेते हैं। यह बीमारी है।

मदन मुनि जी, आपको नियमित पच्चक्खाण के लिए प्रेरित करते रहते हैं। हकीकत में प्रत्याख्यान बंधन नहीं मर्यादाएं हैं। जैसे 2 तटों के बीच नदी सुरक्षित बहती है, वैसे ही मर्यादाओं के तटबंध में हमारा जीवन सुरक्षित चलता है। वह स्वच्छंद नहीं हो पाता। बिना प्रत्याख्यान के, बिना त्याग के व्यक्ति की मनःस्थिति कई बार निरंकुश हो जाया करती है। मर्यादा अंकुश का काम करती हैं और व्यक्ति उसमें मर्यादित बना रहता है। मर्यादा को बंधन मान लेने पर वह बंधन बन जाती है। उसमें लाचारी झलकती है, विवशता दिखती है। किंतु जो प्रत्याख्यान-त्याग, समझ पूर्वक लिए गए हैं, वे वस्तुतः बंधनकारी नहीं होते। वे बाध्यकारी नहीं होते, बल्कि वे जीवन में प्रेरणा देने वाले होते हैं। जीवन में कुछ विशेष प्राप्त कराने वाले होते हैं। इसलिए तप किसी भी प्रकार का किया जाए– एक ही प्रकार का तप नहीं है– पांच विगय में एक विगय का त्याग करें, छः रस में एक रस का त्याग करें। ऐसे बहुत सारे प्रत्याख्यान हैं जो हमें त्याग की ओर बढ़ाते हैं। तप की ओर अग्रसर करते हैं।

आज कोई चीज खाने की मन में बहुत इच्छा उठ रही है और मैंने उसी चीज का त्याग किया। कभी-कभी भीतर लहर उठती है कि आज यह चीज खाऊं। क्या खाना? यह तो मैं नहीं बता सकता कि किसके मन में क्या खाने की इच्छा जगती है। लोगों की अपनी-अपनी इच्छा होती है। किसी को कुछ खाने की रुचि जगेगी तो किसी को कुछ। कोई मीठे में ज्यादा रुचि लेता है तो कोई नमकीन में। मेवाड़ वालों को दाल-बाटी मिल जाए तो मीठे से बढ़कर है। सबकी अपनी-अपनी रुचि होती है और मन में आ जाती है। आज कोई चीज खाने की इच्छा जगी है और वह चीज घर में ही बन रही हो तो उसका त्याग करना मन को नियंत्रित करने वाला होता है। उससे मन नियंत्रित होगा या नहीं? (प्रतिध्वनि– होगा)

ये तप भले ही बाहर नहीं दिखें किंतु हमारे जीवन को अनुशासित करने वाले बनेंगे। ये बातें छोटी लगती हैं किंतु महत्त्वपूर्ण होती है। सूई छोटी होते हुए भी कपड़ों को सिल देती है। एक सूई कितने कपड़ों को सिलती है? वह होती कितनी-सी है? एक इंच, डेढ़ इंच... ज्यादा लंबी हो तो दो इंच। जैसे एक-डेढ़ इंच वाली सूई कई मीटर कपड़ा, थान तक को सिलने में सक्षम है, वैसे ही एक छोटा-सा नियम हमारे बहुत बड़े जीवन को आकार देने में समर्थ है। हम क्यों भूल जाते हैं कि एक छोटी-सी चींटी बड़े हाथी को पछाड़ सकती है। वैसे ही एक छोटा-सा सुराख हमारे जीवन को बिगाड़ने वाला हो सकता है। एक छोटा-सा सुराख नौका को डुबाने वाला हो जाता है। इसलिए जहां भी सुराख हो उसको बंद करने का प्रयत्न करना चाहिए और अपने अनुशासन की डोर अपने हाथ में होनी चाहिए।

कहते हैं कि तैमूर लंग जब भारत में आया तो किसी जुलूस या किसी प्रसंग से उसको हाथी पर बिठाया जाने लगा। उसको हाथी पर बैठाया गया तो उसने कहा, 'हाथी की लगाम कहां है?' उसे बताया गया कि हाथी की लगाम नहीं होती है। तब उसने कहा, "रोको, ऐसे वाहन पर मैं यात्रा नहीं करता, जिसकी लगाम मेरे हाथ में नहीं हो।" इसका मतलब है कि हमारे जीवन की लगाम हमारे हाथ में होनी चाहिए। हमारा अनुशासन हमारे हाथ में होना चाहिए। दूसरे को क्यों कुछ कहना पड़े। इशारा भी क्यों करना पड़े।

आप जानते होंगे कि मृगावती जी को अपने ठहरने के स्थान पर पहुंचने में थोड़ा-सा विलंब हो गया। कहानियों में अलग-अलग रंग होते हैं। कोई कहता है रात पड़ गई। पर ऐसा लगता नहीं है कि रात पड़ गई किंतु जो समय की मर्यादा है, उसमें थोड़ा विलंब हो गया, थोड़ा अतिक्रमण हो गया हो, यह कह सकते हैं। हालांकि ऐसा संभव लगता नहीं है। विलंब होने पर महासती चंदनबाला जी ने उपालंभ के रूप कुछ कहा तो मृगावती जी को बड़ा अफसोस हुआ कि आज मेरी छोटी-सी गलती के लिए गुरुवर्या श्री को कुछ कहना पड़ा। उनके भीतर दर्द हुआ।

उन्होंने मुझे क्यों कहा, यह दर्द उनको नहीं हुआ। मेरे कारण उनके मन में पीड़ा हुई, यह दर्द हुआ। ये नहीं सोचा कि मुझे थोड़ा-सा ही तो विलंब हो गया, क्या फर्क पड़ता है। यह बात उनके मन में नहीं आई। मेरे कारण उनको समस्या हुई, इसकी पीड़ा हुई। उन्होंने अनुभव किया कि थोड़ी-सी मर्यादा

की चूक अपने आप में कितना दर्द पैदा करने वाली हो जाती है। उसी पर अनुप्रेक्षा करते हुए उनको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

अपने दोषों को देखने से केवलज्ञान मिलेगा और दूसरों के दोषों को देखकर क्या मिलेगा? अपने दोषों को देखने वाले को तो केवलज्ञान मिला, अपने भीतर की आलोचना करने वाले को केवलज्ञान मिला। अपनी समीक्षा करने वाले को, अनुप्रेक्षा करने वाले को केवलज्ञान मिला। किंतु जो दूसरों के जीवन की पंचायती करता है उसको क्या मिलेगा? उसे नरक मिलेगा या मोक्ष? हमें कहां जाना ठीक रहेगा? नरक में जाना ठीक रहेगा या मोक्ष में? (प्रतिध्वनि– मोक्ष में) मोक्ष में इतनी जगह नहीं है। इस धरती पर इतना प्रदूषण फैलाया, अब बिना सुधरे वहां पर नहीं जाना है। वहां जाकर प्रदूषण नहीं फैलाना है। इतनी जल्दी भी क्या है? वहां का वीजा भी तो ऐसे मिलने वाला नहीं है।

अमेरिका जाने के लिए कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। अमेरिका-इंग्लैंड जाने के लिए जो वीजा लेना पड़ता है, वह वीजा आसानी से मिल जाता है क्या? मेरे खयाल से कितनी बार दूतावास में जाना पड़ता है। वहां पर इंटरव्यू देना पड़ता है। उसके बाद भी वहां के अधिकारियों को जचे तो वीजा मिलता है, नहीं जचे तो नहीं मिलता है।

कहते हैं, गुजरात के मुख्यमंत्री रहे नरेंद्र मोदी को अमेरिका जाना था। दूतावास के अधिकारियों ने उन्हें वीजा देने से मना कर दिया। जब एक मुख्यमंत्री को मना कर सकते हैं तो आपका अमेरिका जाना आसान बात नहीं है। हर आदमी के लिए खुली छूट नहीं है। मान लो कि यहां तो फिर भी किसी जरीये से आदमी अमेरिका चला गया, उसको वीजा मिल गया किंतु मोक्ष में जाने का जरीया मिलने वाला नहीं है। यहां पहले सुधरेंगे तो मोक्ष में जा पाएंगे, नहीं तो मोक्ष में जाने का वीजा नहीं मिलेगा। लोग प्रतिक्रमण के बाद गाते हैं–

सीमंधर स्वामी, मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए

किससे मांग रहे हो? जैसे अमेरिका जाने के लिए अमेरिकी दूतावास से और इंग्लैंड जाने के लिए इंग्लैंड के दूतावास से वीजा मिलता है वैसे ही मोक्ष का वीजा कहां पर मिलेगा?

सीमंधर स्वामी, मुक्ति जाने की डिग्री दीजिए

डिग्री यानी वीजा। श्रीमंदिर स्वामी को हम पुकार रहे हैं कि डिग्री दीजिए। पर वहां हम बिना इंटरव्यू, बिना वीजा नहीं जा सकते। वहां जाने से पहले हमारा इंटरव्यू लिया जाएगा। पूछेंगे कि भाई! अभी तक तुमने कितने लोगों के विषय में समीक्षा की, तुमने कितने लोगों के जीवन की चर्चा की, कितने लोगों के विषय में बातें की? हमारा जवाब क्या होगा? क्या कहेंगे? कि नहीं-नहीं, हमने किसी के बारे में कुछ नहीं कहा। मैंने तो किसी के बारे में फालतू बातें की ही नहीं। आपका मन गवाही दे रहा है या नहीं? मतलब करते तो हैं। इसमें क्या बात है। मनुष्य हैं तो हो जाती है। थोड़ी-सी बातें हो गई तो क्या हो गया।

बहुत स्पष्ट बात है। परख करने के बाद ही वहां आदमियों को जाने की छूट मिलती है। हर किसी को छूट नहीं मिलती है। ऐसा है तभी वहां का वातावरण शुद्ध और शांत है। वहां पर यदि हर किसी आदमी को जाने दिया जाए तो वहां का वातावरण बिगड़ेगा या नहीं? वहां पर जाने वाले की पहले अच्छी तरह से खोजबीन होती है। बहुत अच्छी तरह से जांच-पड़ताल होती है। उसके बाद जब सब तरह से उसको योग्य समझा जाता है तब आगे जाने की डिग्री मिलती है।

सिद्ध बनने के पूर्व डिग्री कौन-सी है? सिद्ध बनने के लिए अरिहंत बनना बहुत जरूरी है। अरिहंत की डिग्री मिलेगी तो समझ लो सिद्ध बनने की डिग्री मिल गई। अरिहंत बन जाएंगे तो सिद्ध बनने की डिग्री मिल जाएगी। सिद्ध बनने के लिए वीजा है, हमारे भीतर अर्हता, अरिहंत भाव प्रकट होना। अरिहंत भाव हमारे भीतर प्रकट हो गया तो समझ लो वीजा हमें मिल गया। और वह आ गया तो कोई भी रोकने वाला नहीं होगा।

कोई रोकेगा क्या?

सड़कों पर टोल टैक्स लगता है ना। टोल टैक्स दिए बिना गाड़ी जाने लगे तो उसे रोक दिया जाता है। हर किसी को नहीं रोकते। यदि किसी एमएलए की गाड़ी है तो कोई रोकेगा क्या? नहीं रोकेगा। गाड़ी को जाने देगा। किसी पत्रकार की गाड़ी है, वह पत्रकार होने का कार्ड दिखा देता है तो गाड़ी को बिना पैसे लिए जाने देते हैं। क्यों? उनको छूट मिली हुई है। उनको कोई रोकता नहीं है। वैसे ही यदि अरिहंत का कार्ड मिल गया, अरिहंत का वीजा मिल गया तो फिर हमें कोई रोकने वाला नहीं है। उसके पहले यदि कोई जाना चाहेगा तो उसकी हालत त्रिशंकु जैसी हो जाएगी।

आपको त्रिशंकु की कहानी मालूम होगी। वैदिक संस्कृति का आख्यान है। त्रिशंकु के मन में आया कि मैं सशरीर स्वर्ग में जाऊं। सम्राट था, राजा था, शक्ति थी उसके पास। उसे इच्छा हुई कि मुझे सशरीर स्वर्ग जाना है। उसने अपनी भावना रखी तो ब्राह्मणों ने कहा कि ऐसा नहीं होता है। वह बोला कैसे नहीं होता है। फिर तुम्हारा यह यज्ञ कैसा? तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी शिक्षा में क्या ताकत? मुझे सशरीर भेजो, तुमको भेजना पड़ेगा। ब्राह्मण बेचारे क्या करते? अब राजा के अनुशासन में रहे तो करना पड़ेगा।

ज्यांरी खावे बाजरी, वांरी बजावे हाजरी।

उन्होंने राजा से कहा, ठीक है, आपको भेजते हैं सशरीर स्वर्ग में। कहते हैं कि यज्ञ करके उनका शरीर ऊपर उठाया, वे ऊपर उठने लगे। राजा बड़ा खुश हुआ कि मैं स्वर्ग में जा रहा हूं। उधर स्वर्ग के देवों को पता चला तो वे कहने लगे– अरे! अरे! कोई मनुष्य यहाँ आ रहा है, यहां आकर कचरा फैलाएगा। सड़कों पर केले के छिलके मिलते हैं। इन छिलकों को कौन छोड़कर जाता है? बंदर या हाथी छोड़कर जाते हैं क्या! छिलके सड़क पर कौन फेंकता है? मूंगफली के छिलके कौन बिखेरता है? केले और मूंगफली बंदर और हाथी खाते हैं और छिलके कौन फैलाता है सड़कों पर? 'स्वच्छ भारत अभियान' कब तक संपन्न हो जाएगा? जब तक अपना माथा नहीं सुधरेगा तब तक कुछ होना नहीं है और हमारा माथा सुधर गया, माथा स्वच्छ हो जाएगा तो अभियान चलाने की जरूरत नहीं है। सड़क अपने आप स्वच्छ हो जाएगी।

पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने अपने भाषण में कहा था कि भारतीय, कानून-मर्यादा पालने में समर्थ नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। भारत से प्लेन में उड़कर विदेश में जैसे ही उतरते हैं, वहां के कानून-कायदे-नियम सब चालू हो जाते हैं। वहां रास्ते पर थूकना नहीं है। भले ही मुंह में कितना भी थूक आए पर रास्ते पर थूकना नहीं है। कोई भी चीज, केला या मूंगफली का छिलका वहां पर फेंक नहीं सकते। छिलका वहां बाहर नहीं डालते हैं किंतु वे वापस मुंबई या दिल्ली में उतरते ही कचरा फैलाना शुरू कर देते हैं। जो वहां अनुशासन में चल रहा था, वह यहां आकर सारा अनुशासन भूल जाता है। भले ही यहां के कानून होंगे, पर वे जानते हैं, यह हमारी मां है और मां के पेट में बच्चा कितनी भी लात मारे, मां तो बच्चे को प्यार ही करती है। वैसे ही भारत माता को हम कितनी भी लात मारें लेकिन मां तो मां ही है। वह अपने बच्चे को लाड़ ही लड़ाएगी। मां तो दूध ही पिलाएगी। मां तो सीने से ही लगाएगी।

ये बातें मुझे यहां नहीं करनी चाहिए क्योंकि धर्म के क्षेत्र में तो सारे लोग अनुशासित ही होने चाहिए! हमें तो भगवान महावीर का उपदेश मिला– वरं मे अप्पा दंतो, हम लोग धर्म की आराधना करने वाले, धर्म का अनुसरण करने वाले हैं। यदि हम संयम और तप से अपने आप को अनुशासित करेंगे तो अनुशासित रहेंगे।

मैं गौतम मुनि जी की भाषा का प्रयोग करूं तो वे कहते हैं कि 100 वर्षों तक 100 साधु प्रतिदिन अनुशासन पर व्याख्यान दें और हमारा समाज अनुशासित हो जाए तो 'धन घड़ी धन भाग हमारे'। निरंतर 100 वर्ष तक यदि अनुशासन, अनुशासन, अनुशासन का व्याख्यान देंगे तो भी हमारे कान पर जूं नहीं रेंगेगी। होगा कैसे? निरन्तर पौधों पर पानी गिराने से जड़ें कमजोर ही होंगी, संभलेंगी नहीं। उसकी भी मर्यादा है। समय पर पानी दिया जाना चाहिए, समय पर खाद मिलनी चाहिए। समय पर खाद और पानी देना कारगर रहता है। निरंतर देने से उस पर असर नहीं पड़ता। क्योंकि जिसके बालों में अक्सर जूं पड़ती है उसको लगता ही नहीं है। जिसके बालों में जूं नहीं पड़ती, उसके एक बार जूं पड़ जाये तो उसको बड़ा अटपटा लगेगा। जिसके रोज ही जूंए पड़ी हुई होती हैं, उसको कुछ फर्क नहीं पड़ता है। वह सिर में खुजली कर वापस बैठ जाता है।

भगवान महावीर का जीवन चरित किसी ने पढ़ा होगा! गोशालक ने किस ऋषि को कहा था जूंओं का शय्यातर? वह तपस्वी आतापना ले रहा था और गर्मी के कारण उसके सिर से जूंए नीचे गिर जाती तो वह उसको वापस उठाकर सिर पर डाल देता था। गोशालक की चंचलता थी कि वह किसी को कुछ भी बोल देता था। उसने कहा, ऐ! जूंओं के शय्यातर! इससे उसको गुस्सा आ गया और क्रोधित होकर उसने तेजोलेश्या छोड़ दी। गोशालक जोर-जोर से चिल्लाने लगा। तब भगवान महावीर ने बड़े ही शांत भाव से उसकी ओर देखा। भगवान की शांत लेश्या से वह तेजोलेश्या शांत हो गयी। उस ऋषि के सिर में जूंए थी। उसको उन जूंओं से दिक्कत नहीं थी। किंतु किसी के सिर में एक भी जूं न हो उसके 2-4 जूंए भी आ जाए कहीं से, तो इससे उसको दिक्कत होती है।

ऐसा नहीं है कि हम अनुशासित नहीं है या हममें अनुशासन नहीं है। हम बहुत अनुशासित हैं फिर भी हमें अभी और अधिक ऊंचाइयों को प्राप्त करना

है। लेकिन जहां पर भी हमें लगता है कमियां हैं, उन कमियों को दूर करना है। उन कमियों को अपने अंदर से बाहर करना चाहिए।

एक विद्यार्थी अपनी परीक्षा के परिणाम से हताश हो गया। उत्तीर्ण होने का मापदंड था 40 प्रतिशत का और उसे 39 प्रतिशत अंक मिले थे। वह हताश हो गया, निराश हो गया। वह सोचने लगा कि मैं तो पहले ही पढ़ना नहीं चाहता था। मेरे में योग्यता नहीं थी। मैं पास हो ही नहीं सकता। व्यर्थ में ही टाइम बर्बाद कर रहा हूं। मुझे पढ़ाई छोड़ देनी चाहिए। यह विचार कर वह पढ़ाई छोड़ देता है। ये निगेटिव विचारों का बुरा प्रभाव था। ऐसी सोच में बहुत से लोग चले जाते हैं। यह सिर्फ पढ़ाई की बात ही नहीं है। उसके 40 प्रतिशत अंक नहीं आए, 39 प्रतिशत प्राप्त किये। एक प्रतिशत कम आने से वह निराश हो गया। हम भी बहुत कोशिश के बाद कुछ कर नहीं पाते हैं तो हताश हो जाते हैं। हम ऐसे हताश होंगे तो 40 प्रतिशत का आंकड़ा कभी भी नहीं मिलेगा। जब हम जीरो से 39 तक पहुंचे हैं तो 40 को प्राप्त करना कौन-सी कठिनाई की बात है। एक धक्का और लगेगा तो 40 को पार कर जाएंगे।

मैं दो दिन पहले एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें बताया गया है कि बीजेपी का गठन सन् 1980 में हुआ। उससे पहले जनसंघ या अन्य किसी नाम से चल रही थी। गठन के बाद 1984 में लोकसभा का चुनाव आया तो काफी कुछ प्रयत्न किया। अपनी तरफ से पूरा जोर लगाया किन्तु सीट कितनी आई? राकेश जी! पत्रकार हैं ना, कितनी सीटें मिली?

(प्रत्युत्तर– सिर्फ 2 सीटें ही मिली)

अरे वाह! अब थोड़ी-सी धर्म की बात पूछनी पड़ेगी। तीर्थंकरों ने तीर्थ की स्थापना नहीं की थी उसके पहले मोक्ष में कौन चला गया? (प्रतिध्वनि– मरुदेवी माता) 542 सीटों में से बीजेपी को सिर्फ 2 सीटें मिली थी। उस समय उसका कोई महत्त्व नहीं था। वह पार्टी उस समय हताश हो जाती, निराश हो जाती तो आज जिस रूप में उसको देखा जा रहा है, क्या कभी उसके दर्शन होते? यह सोच दूसरी है। आज हम जीरो पर हैं किंतु पुरुषार्थ करते रहेंगे, करते रहेंगे तो एक दिन मंजिल मिलेगी।

वैसे ही यदि हमें अपने में कुछ कमियां नजर आवें कि मुझमें ये कमी है, वो कमी है और निराश हो गये तो नहीं होगा। यह सोचें कि उसका सुधार कैसे हो सकता है, उसका संशोधन कैसे हो सकता है? यदि कोई दूसरा भी

हमें बोले कि तुम्हारे में ये कमियां हैं तो उसके संशोधन का प्रयत्न भी करना चाहिए।

मैंने सुना है आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. कई बार व्याख्यानों में फरमाया करते थे, जो उनके प्रवचनों की किताबों में भी मिल जाएगा कि जब वे दीक्षित हुए तो पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने फरमाया कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सबसे कहते रहना कि मेरी गलती बताओ। यदि आप बताओगे तो मैं गलती को दूर करने में समर्थ बनूंगा। मैंने गलती की और आप नहीं बताएंगे तो आप अपने कर्तव्य से च्युत होंगे। इसमें कोई बुराई की बात नहीं है। गलतियों को बताने वाले हितैषी होते हैं, नहीं तो आदमी जान-बूझकर आंखें बंद कर लेता है। जो हितैषी होते हैं वे बोल देते हैं। वैसे बोलने वाले कम ही होते हैं। यदि ऐसी बात कोई कहे तो उसको सुनना भी चाहिए। सुनकर शिकायत नहीं करना कि उसकी तो आदत है, वह ऐसे ही करता है। ऐसी बातें सुनकर हमें गलतियों का सुधार करना चाहिए, संशोधन करना चाहिए।

जो शिकायत के झमेले में पड़ेगा वह संशोधन नहीं कर पायेगा। उसके भीतर शिकायतें पनपने लगेंगी, जिससे उसका स्वयं का मैनेजमेंट बिगड़ जाएगा। हम यह विचार नहीं करें कि हमारे में अनुशासन नहीं है या हम अनुशासित नहीं हैं। अनुशासन नहीं है ऐसी बात नहीं है। अनुशासन है, किन्तु अभी और मुकाम तय करना है।

एक छोटी-सी घटना है भावनगर की। वहां व्याख्यान पूरा होने के बाद एक मुनि महासतियों से बात करने में मग्न हो गये। लगभग 15-20 मिनट का समय निकल गया। आचार्य श्री को यह अच्छा नहीं लगा। आचार्य श्री ने मुनि से कहा– 'इस प्रकार यदि हम बातों में समय लगाएंगे तो धीरे-धीरे हमारे भीतर स्वच्छंद बुद्धि पैदा होगी। अनुशासन हमारा धर्म है और हमें अनुशासन में रहना चाहिए।' यह बात वही कह सकता है जो स्वयं अनुशासन में जीये। आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने श्री गणेशाचार्य जी के कड़क अनुशासन में जीवन जीया था। अनुशासन उनका प्रिय विषय था तो जहां अवसर होता बोल देते, कह देते और सुझाव भी दे देते। अनुशासन होना भी चाहिए। यदि हमें कोई गलती बताता है, सुझाता है तो निश्चित रूप से हमें संशोधन करना चाहिए। अनुशासन बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। उसका पालन तो होना ही चाहिए। करना ही चाहिए। यदि कोई हमें अपनी गलतियों

को बताता है या अनुशासन पर चलने को बतावे तो निश्चित रूप से हमें संशोधन करना चाहिए। गलती बता रहा है तो स्वीकार करना चाहिए। कोई नहीं बतायेगा तो समय पर उपचार नहीं हो पायेगा।

डॉक्टर रोग बताएगा तो पता चलेगा। यदि बताएगा नहीं तो रोग का पता कैसे चलेगा। सीए के पास जाएंगे और वो आपके खाते की गड़बड़ियां नहीं बताएगा तो आगे जाकर परेशानी होगी। एडवोकेट आपके केस की गलतियां नहीं बताएगा तो दोष उसका होगा। यह सब तब होगा जब हम उन्हें सुपुर्द करेंगे। अधिकृत कर देंगे। अधिकृत है तो वह सोचेगा मेरा दायित्व है। अधिकृत किया है इसलिए हमको दोष दिखाता है। डॉक्टर को आपने अधिकृत किया या नहीं कि इस शरीर की आप जांच कर लो। जब डॉक्टर जांच करके 10 रोग बता रहा है तो ऐसा नहीं बोलते हैं कि मैंने इसलिए शरीर सौंपा था क्या कि आप 10 रोग बताओ। डॉक्टर रोगों को बताएगा तो ही आप इलाज करवा पाओगे। वैसे ही हम अधिकृत कर देते हैं केस के लिए वकील को तो, वह आपके केस की गड़बड़ियां बताएगा। सीए को अधिकृत किया तो वह खाते की गड़बड़ियां बताएगा। डॉक्टर रोग बता रहा है तो बुरा कर रहा है या अच्छा? (शब्दों पर जोर देते हुए) अच्छा कर रहा है या बुरा? (प्रतिध्वनि– अच्छा) आपको सावधान कर रहा है कि यह रोग हो गया है।

रोग हो गया तो क्या करना?

सनत कुमार चक्रवर्ती की तरह निकल सको तो निकल जाओ और डूबना है तो अस्पताल में आ जाओ। या तो हॉस्पिटल जाओ या सनत कुमार चक्रवर्ती जिस राह पर चले, उस राह पर चलो, क्योंकि मरना तो निश्चित है। उससे कोई नहीं बच सकेगा। इसलिए सोच लो कि हॉस्पिटल में मरना या सनत कुमार चक्रवर्ती की तरह मरना। डॉक्टर को शरीर सौंप दिया, वकील को हमने अपना केस सौंप दिया, उसको अधिकृत बना दिया। हम सीए (चार्टर्ड एकाउण्टेंट) को खाता दे देते हैं कि इसकी गलतियां देखना तुम्हारा काम है। वैसे ही हम हर इंसान को अधिकृत कर दें कि मेरे जीवन में कोई भी गलती नजर आए तो तुम बता देना। फिर कोई बतावे तो नाराजगी नहीं होनी चाहिए। किसी को अधिकृत नहीं किया और वह बताता है, तो नाराजगी होती है, क्योंकि वह अनधिकृत होकर बताता है। इससे अच्छा है कि हम उसको अधिकार सौंप दें, कि मेरी कोई गलती हो तो बता देना और वह गलती बतावे तो उसे सुधारना चाहिए।

हकीकत में गलती को सुधारा जाता है तो आगे से समस्या कम होती है। आचार्य पूज्य गुरुदेव ने कह रखा था लोगों से, साधुओं से, श्रावकों से कि मेरी कोई भी गलती नजर आ जाए तो आप मुझे बताना। इससे मैं आपको हितैषी समझूंगा। गलती बताने वाला हितैषी होता है और किसी ने बतायी तो अमूमन उन्होंने स्वीकार भी किया। आचार्य श्री फरमाते थे कि हित की बात कोई बच्चा भी मुझसे कहे तो मैं सुनने के लिए तैयार रहता हूं। नहीं तो कोई कितना भी बड़ा लाड़ साहब क्यों न हो मेरे मन में जँची तो मानूं नहीं जँची तो नहीं मानूं। हमारा भी लक्ष्य होना चाहिए कि यदि हमारी गलती कोई हमें बताता है तो उसमें सुधार करें। गलती बताने से, गलती सुधारने से हमारे जीवन में गलतियां कम हो जाएंगी। यदि गलतियों को ध्यान में लेकर नहीं चले तो गलतियां बढ़ती जाएंगी। गलती को बढ़ाना नहीं है। गलती को हटाना है और हटाने के लिए कोई यदि हमें बताए तो हम उसे अपना हितैषी मानेंगे।

एक बात मैं आपसे पूछता हूं कि किसी घर में संतान का जन्म हुआ हो, उसके नामकरण के लिए कुण्डली आदि बनाई जाए, नक्षत्र पूजनादि क्रिया की जाये तो उसे क्या समझना? जम्बू वृक्ष को स्वप्न में देखने से माता-पिता ने जम्बू नाम रखा था। इसी प्रकार मेघ कुमार की माता ने दोहद के आधार पर मेघ कुमार नाम रखा था। आज ज्योतिषी किसी राशि का नाम लेकर बताते हैं कि अमुक राशि पर नाम रखना है तो राशि पर नाम रखते हैं। यह लोकाचार है। एक होता है लोकाचार और एक होता है धर्माचार।

लड़के के जन्म के बाद क्या-क्या करते हैं? क्या-क्या मान्यता है? क्या-क्या लोकाचार हैं? सूरज दिखाना, पाट पर बिठाना, क्या-क्या रस्में होती हैं। अब बताओ यह धर्म का काम है या संसार का काम है? इनको करना चाहिए या नहीं करना चाहिए?

आपका विवाह कैसे हुआ? कोर्ट मैरिज हुई या अग्नि के फेरे लगाये? अग्नि के फेरे लगाया तो अग्नि के जीवों की हिंसा कराई आपने! उससे मिथ्यात्व लगा! यदि लगा तो फिर क्यों अपने बच्चों को मिथ्यात्व लगाते हो? वैसे आजकल तो बच्चे भी होशियार हो गए हैं, समझ गए हैं। वे आपको मिथ्यात्व नहीं लगवाते। अपने आप ही कोर्ट में जाकर शादी कर लेते हैं। अच्छी बात है ना! अग्नि के फेरों की जरूरत ही नहीं पड़ती। उनको लगा क्या मिथ्यात्व? हम बहुत जल्दी प्रमाण-पत्र दे देते हैं। मैं पूछता हूं घर में अग्नि जलाते हो या नहीं? रोटी बनती है या खाने की वस्तुओं को तैयार

करते हैं तो उस कार्य में मिथ्यात्व है या नहीं? फिर शांतिनाथ भगवान मिथ्यात्वी थे या सम्यक्त्वी थे? जब वे घर में थे, जब वे दीक्षित नहीं हुए थे, चक्रवर्ती बनने की तैयारी में थे, उस समय शांतिनाथ भगवान मिथ्यात्वी थे या सम्यक्त्वी थे? कटारिया जी! उनके पास सूचना पहुंची कि आपकी आयुधशाला में चक्र रत्न प्रकट हुआ। तब वे जाकर चक्र रत्न की पूजा करते हैं। वे चक्र रत्न की पूजा करते हैं तो मिथ्यात्व लगेगा या क्या लगेगा? मिथ्यात्व किसे कहा है?

संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, और मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व। यदि शांतिनाथ भगवान चक्ररत्न की उत्पत्ति और उसकी पूजा को धर्म समझकर करें तो मिथ्यात्व होता है। वे भगवान थे हम उनको दोषी कैसे मान सकते हैं, "समरथ को नहीं दोष गुसाई" है ना? यही सोच रहे होंगे आप लोग। मैं करता हूं तो मिथ्यात्व और भगवान करें तो सम्यक्त्वी? कृष्ण वासुदेव ने पौषधशाला में जाकर देव को बुलाने के लिए तेला किया तो मिथ्यात्व लगा या धर्म हुआ? धर्म नहीं हुआ किंतु मिथ्यात्व भी नहीं लगा। संसार की क्रिया के लिए किया। संसार में किसी वस्तु की खोज के लिए देव को याद किया तो वह धर्माचार नहीं है। कुछ लोकाचार होते हैं। कुछ धर्माचार होते हैं।

जिस समय लोक में परंपराएं होती हैं लोकाचार का भी यथा अवसर पालन करना होता है। यदि उस परम्परा का पालन किया जाता है और उसका धर्म नहीं समझा जाता है तो वहां मिथ्यात्व लगने का चांस मेरी दृष्टि में नहीं है। होना भी नहीं चाहिए। क्यों होगा, वह उसे धर्म नहीं समझ रहा है। वह जान ही रहा है कि यह धर्म नहीं है, नहीं तो जितने लोगों ने शादियां की क्या सारे मिथ्यात्वी बन गए? यदि बन गए तो कब-कब हमने आलोचना की और कब-कब शुद्धीकरण किया।

सोमिल ब्राह्मण के प्रकरण से हम समझें जिसने पहले बारह व्रत स्वीकार किए। बीच में मिथ्यात्व का सेवन कर लिया फिर देवता की प्रेरणा से बारह व्रतों को भी स्वीकार कर लिया। शास्त्र कहता है कि तस्स ठाणस्स अणालोइए अपडिक्कंते अर्थात् उस स्थान का (बीच में मिथ्यात्व का सेवन किया उसकी) आलोचना-प्रतिक्रमण नहीं किया, इसलिए वह आराधक नहीं विराधक बना। यदि हमने भी मिथ्यात्व का सेवन किया तो उसकी आलोचना की या नहीं?

आज तक जितने भी लोगों ने अग्नि के फेरे लिये उन्होंने क्या उसकी आलोचना की? हकीकत में सोचें तो यथार्थ को यथार्थ रूप से स्वीकार करना मिथ्यात्व नहीं है। अयथार्थ को यथार्थ और यथार्थ को अयथार्थ मानना मिथ्यात्व है। यदि यथार्थ को यथार्थ मानने से भी मिथ्यात्व ही लगेगा तो सम्यक्त्व को कैसे परिभाषित किया जायेगा? सम्यक्त्व जीव कैसा जानेगा? श्री कृष्ण वासुदेव अपने पौषध की क्रिया को सांसारिक कार्य में पूर्ति रूप ही मान रहे हों, श्री शांतिनाथ भगवान चक्ररत्न की पूजा करना लोकाचार ही मानते हों तो उन्हें मिथ्यात्व कैसे लगेगा? जैसे उनको मिथ्यात्व नहीं लगा, वैसे ही आज भी कोई लोकाचार का पालन लोकाचार मानकर करे तो उसे मिथ्यात्व कैसे लगेगा? स्पष्ट है व्यक्ति का श्रद्धान् जैसा है उसके आधार पर मिथ्यात्व व सम्यक्त्व का रूप बनता है।

यदि कदाचित् अनजान अवस्था से सिद्धांत से विपरीत मान्यता व प्ररूपणा की गई हो तो उसका परिमार्जन-सुधार कर लेना चाहिए। गलती सुधारेंगे तो हम स्वयं को अनुशासित कर पायेंगे। हमारा स्वयं का नियंत्रण और अच्छे मायने में हो सकेगा। हम व्यावहारिक जगत में अनुशासित होंगे तो धर्म के क्षेत्र में भी अनुशासन की पालना करने वाले बनेंगे। अगर जीवन में अनुशासन होगा तो हम यहां धर्म स्थान में भी अनुशासन का पालन करेंगे। पहले परिवार और घर को अनुशासित बनाएंगे तभी हम समाज और धर्म में भी अनुशासित रह पाएंगे। परिवार में अनुशासित रहें, दुकान पर अनुशासित रहें, फैक्ट्री में अनुशासित रहें, हर जगह अनुशासन रखें। यदि वहां स्वयं अनुशासन रख पाएंगे तो दूसरे को भी अनुशासन का पाठ पढ़ा पाएंगे, बल्कि स्वयं अनुशासित हैं तो दूसरों को अनुशासन का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। लोग देखादेखी स्वतः इस मार्ग पर आ जायेंगे। इस प्रकार का लक्ष्य बनाकर अपने जीवन को धन्य बनावें।

23 जुलाई, 2019

6

णो णिण्हवेज्ज वीरियं

आचारांग सूत्र के अनुसार तीर्थंकरों की प्रथम देशना 'णो णिण्हवेज्ज वीरियं' है। इसमें सबसे पहले आचार का कथन किया जाता है। साधु जीवन क्या है? साधु जीवन की क्या महत्ता है? साधु जीवन का क्या आचार है? उसको सबसे पहले बताया जाता था।

परंपरा वही है कि सबसे पहले साधुता का उपदेश दिया जाए। हमारे सामने आदर्श ऊंचा होना चाहिए। यदि हम साधु नहीं बन सकते हैं तो फिर दूसरे विकल्प हमारे सामने आ खड़े होते हैं। साधु बनकर जीना यदि मेरे लिए संभव नहीं है तो फिर विकल्प होगा कि मुझे क्या करना चाहिए? वहां हमारे सामने बातें आएंगी कि श्रावक के बारह व्रतों में एक व्रत, दो व्रत, पांच व्रत, सात व्रत या बारह व्रत धारें। किंतु साधु बनने का सामर्थ्य है, क्षमता है तो दूसरे विकल्पों की ओर जाने की कोई जरूरत है ही नहीं।

आचारांग सूत्र में साधना का भरपूर पाथेय भरा हुआ है, उसमें से एक छोटा-सा सूत्र भी यदि जीवन में उतर जाए तो जीवन शांत और सुखमय हो जाएगा। वह सूत्र है 'णो णिण्हवेज्ज वीरियं'। सूत्र छोटा-सा है। इसका तात्पर्य है कि शक्ति का गोपन नहीं करना चाहिए। मेरे भीतर जो उद्यमता रही हुई है, मेरे भीतर कार्य करने की जो क्षमता रही हुई है, मुझे उसका गोपन नहीं करना चाहिए। उसका प्रयोग करना चाहिए। कोई भी शक्ति, प्रयोग करने से विकसित होती है। यदि वह पड़ी रह जाए तो उसका विकास नहीं होता। विद्या-ज्ञान, आदमी किसी दूसरे को कराता रहता है तो ज्ञान बढ़ता है। उसका भी बढ़ता है और दूसरों का भी बढ़ता है। कोई सोचेगा कि, मैं दूसरे को ज्ञान कराऊंगा तो मेरा क्या बढ़ेगा! एक महीना वह दूसरे को ज्ञान कराकर देख ले कि क्या बढ़ेगा? इससे उसकी ज्ञान की पर्यायें विकसित

होंगी। उसका ज्ञान परिपक्व बनेगा। नए-नए आयाम, नई-नई बातें, उसके ध्यान में आएंगी। निश्चित है कि पढ़ने से अधिक, पढ़ाने से ज्ञान परिपक्व होता है। वह शक्ति वाला हो जाता है। पढ़ाने से स्वयं के भीतर एक आत्म-विश्वास पैदा होता है। उसको अहसास होता है कि मैं इस ज्ञान को, इस विषय को अच्छी तरह से जान रहा हूं। बिना पढ़ाए वह यही सोचता है कि मैं इस विषय को पढ़ा पाऊंगा भी या नहीं। मैंने इसे पहले कभी नहीं पढ़ाया। मैं कैसे पढ़ाऊंगा? किंतु जब वह पढ़ा देता है तो उसका मन दृढ़ हो जाता है। कोई भी शक्ति हमारे भीतर में रही हुई है, उस शक्ति का हमें विकास करना चाहिए, प्रयोग करना चाहिए।

मुख्य रूप से पांच प्रकार की शक्तियां होती हैं– ज्ञान की शक्ति, दर्शन की शक्ति, चारित्र की शक्ति, तप की शक्ति और वीर्य-आत्मा की शक्ति। आत्मा की शक्ति मतलब किसी भी कार्य को करने की शक्ति और वीर्याचार में इन सब का समावेश हो जाता है।

वैसे ज्ञानाचार के 8, दर्शनाचार के 8, चारित्राचार के 8 और तपाचार के 12 प्रकार बताए गए। इन सबका मिला-जुला रूप हो सकता है, वीर्याचार। मुनि के लिए यह शर्त है कि वह वीर्य का गोपन नहीं करे। अपने आपको श्रम में लगाए रखे। कुछ लोग श्रम से जी चुराने वाले, कार्य से जी चुराने वाले होते हैं। उनको लगता है कि यह कार्य भार मेरे पर नहीं आवे। वे चाहते हैं कि किसी दूसरे के ऊपर चला जावे और मुझे नहीं करना पड़े। हो सकता है कि वह इन क्रियाओं से अपने आप को बचा ले किंतु ऐसा करके वह अपने जीवन की बहुत बड़ी हानि कर रहा है। जिन कार्यों को करने से वह उनमें प्रखर और प्रवीण बन सकता था, उसके अंदर अनेक प्रकार की कलाओं का विकास हो सकता था, वह उससे वंचित रह जाता है। प्रैक्टिकल से जो अनुभूति होती है, वह सिद्धांत से नहीं होती। आज भी स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा में सिद्धांत की शिक्षा भी दी जाती है और प्रैक्टिकल भी करवाया जाता है। आगमों का भी यही दिग्दर्शन है।

ग्रहण शिक्षा और आसेवनी शिक्षा ग्रहण शिक्षा में पहले सूत्र सिद्धांत को सिखाया जाता है फिर उसका प्रैक्टिकल करवाया जाता है। प्रैक्टिकल में उसको कैसे जीना सिखाया जाता है। प्रैक्टिकल में यदि हमने अनुभव नहीं किया, अभ्यास नहीं किया तो वह शिक्षा अधूरी होगी। वह शिक्षा परिपूर्ण नहीं होगी।

एक दूसरे सूत्र में साधु के लिए बताया गया है कि उसे स्वावलंबी होना चाहिए। वह किसी पर आश्रित नहीं रहे। यह बात अलग है कि कल्प और मर्यादा की पालना भी उसको जरूरी है। जब वह मर्यादा का पालन करता है तो उसे किसी-न-किसी का आधार, सहारा जरूरी हो जाता है। साधु यदि विचरण करे तो कम-से-कम दो का सिंघाड़ा होना चाहिए और साध्वियों के लिए कम-से-कम तीन सतियों से विचरण करने की बात बताई गई है। 3 से कम साध्वी और 2 से कम साधु विचरण नहीं कर सकते। ऐसे में उसको किसी-न-किसी सहारे की जरूरत रहेगी। यह मर्यादा है, किंतु वह अपने कार्यों में स्वावलंबी रहे। अपना कार्य दूसरों पर ढालने की नीयत वाला नहीं बने ताकि उसका पुरुषार्थ जागृत रहे। उसका वीर्य जागृत रहे। वह स्वावलंबी रहेगा तो उसकी शक्ति क्रियान्वित बनी रहेगी। यदि वह अपने कार्य दूसरे से कराना चाहेगा तो सेवा करने वाले बहुत हैं। बहुत लोग सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं और सेवा करने के लिए हमेशा तैयार रहना भी चाहिए।

श्रीमद् स्थानांग सूत्र में चार प्रकार की सुख-शय्या बताई गई है। उसमें एक सुख-शय्या यह है कि जो अपना कार्य स्वयं करता है, दूसरे की अपेक्षा नहीं करता क्योंकि जैसे ही हम दूसरे की अपेक्षा करते हैं, दुःख को बुलावा देते हैं। यदि दूसरे ने समय पर काम नहीं किया तो हमें चिढ़ होगी। हमको क्रोध आएगा कि मैंने तुमको काम दिया था, तुमने हां भी कहा था किंतु काम नहीं कर पाए। एक व्यक्ति अपने आप ही काम करता है। उसकी कोई होड़ नहीं होती। उसकी कोई मिसाल नहीं है।

हमने बहुत बार सुना होगा आचार्य पूज्य गुरुदेव के संबंध में। यह भी सुना होगा कि वे जहां विराजे हुए हैं वहां सामने अलमारी में से कोई पुस्तक लेनी हो और पास में संत बैठे हुए हों फिर भी वे स्वयं उठकर पुस्तक लेने की कोशिश में रहते। यह बात अलग है कि संत पूछ लेते हैं तो फिर वे फरमाते और संत दे देते, किंतु वे स्वयं उठ करके लेने की तैयारी में रहते। ये पुरुषार्थ है।

शक्ति का गोपन नहीं होने की बात केवल साधु के लिए नहीं है। यदि हम जीवन में सुख चाहते हैं, समाधि चाहते हैं तो हम अपने कार्य में मस्त रहें और जितना हमारे में सामर्थ्य हो अपने कार्यों के साथ अन्यों के कार्यों को भी संपन्न करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि किसी पारिवारिक काम के लिए परिवार का कोई सदस्य कह दे कि ये काम आपको करना है तो

हमारे मुंह से कभी निषेध नहीं होना चाहिए कि ये काम मैं नहीं कर सकता। कोई जूता-चप्पल उठाने का काम बता दे या थाली मांजने का काम भी दे दे तो मन में ऊंचा-नीचा विचार नहीं आना चाहिए। यदि कोई कह दे कि घर में झाड़ू तुम्हें लगाना है, घर में पोंछा तुम्हें लगाना है तो ये नहीं समझना चाहिए कि मुझे इतना हलका-फुलका काम दिया है। ये हलके-फुलके काम नहीं हैं। यदि बारीकी से विचार करें, तो इन कार्यों में बहुत बड़ी यतना की आवश्यकता होती है। इनमें जीवों की विराधना के बहुत चान्स रहते हैं। छोटे-छोटे जीव जो चातुर्मास में पैदा हो जाया करते हैं, उन पर हमारा ध्यान कितना जाता है और कितना ध्यान हमारा जाना चाहिए।

यहां पर भी हम दर्शन करने आते हैं तो हमारा ध्यान कितना रहता है कि नीचे चींटियां हैं या नहीं? हम नीचे देख पाते हैं या नहीं देख पाते हैं? नीचे देखना बहुत जरूरी है। मैं जहां तक सोचता हूं या जहां तक देखता हूं नीचे देखने की प्रक्रिया प्रायः करके गौण हो जाया करती है। यहां पर भी खड़े होने के बाद चल रहे होते हैं, तो हमें देखना चाहिए कि वहां पर चींटियां तो नहीं हैं। यदि हम बिना देखे चलते हैं तो उनकी अयतना होती है। आप यहां आकर बैठते हैं तो बैठने से पहले देखते हैं या नहीं? सामायिक करने आते हैं तो हाथ, पुस्तक रखने से पहले देखकर रखते हैं या बिना देखे रखते हैं? श्रावक को सामायिक में सामान या हाथ बिना देखे इधर-उधर नहीं रखना चाहिए। सिर्फ सामायिक में ही नहीं, चाहे आप घर में हों या आफिस में, इस बात का ध्यान रहना चाहिए।

हर जगह यतना रहनी चाहिए। पुराने लोग कितनी यतना करते थे। आज तो गैस हो गई है और स्विच ऑन करने से आग जल जाती है। पहले आग को कंडों में रखा जाता था। एक कंडा ऊपर, एक कंडा नीचे और बीच में अग्नि रखकर ऊपर राख डाल देते थे और जिस समय उसको प्रज्वलित करना होता उस समय फूंकनी से फूंक-फूंककर उसमें आग पैदा की जाती थी। ऐसा करने वाले की आंख में कई बार राख चली जाती थी। कई लोग ऐसा भी कह देते कि फूंकते-फूंकते मेरी आंखें फूट गईं। आंखों से आंसू बहने लग जाते। एक सही गृहिणी चूल्हे में डालने से पहले उन लकड़ियों और कंडों को यतना से ठरकाती थी, झटकती थी ताकि कोई भी मकड़ी, चींटी या जीव कंडे में हो तो बाहर चला जाए, चूल्हे में नहीं जाए। पर यदि नौकरों के भरोसे काम होगा तो?

भंडारी जी! यहां से गुजरते हैं तो मदन मुनि जी कहते हैं यहां होना जरूरी है। भोजनशाला में जाना जरूरी नहीं है। बाहर कार्यालय में बहुत से युवा बैठे हुए बीच में नजर आते थे। आजकल युवा दिखाई नहीं देते। यहां कितने कर्मचारी हैं? कितने काम करने वाले हैं? यदि कर्मचारियों के भरोसे काम छोड़ दें तो वह भी नहीं जम रहा होगा या क्या कर रहे होंगे, पता नहीं।

जिन युवाओं ने व्याख्यान नहीं सुना, व्याख्यान से चूक गए फिर उन्होंने चौमासे का क्या लाभ लिया? मैं यदि कहूं आप से कि कल से भले ही अध्यक्ष जी व्याख्यान में नहीं रहेंगे तो चलेगा। मदनलाल जी सांखला नहीं रहेंगे तो चलेगा। यद्यपि इनको भी सुनना जरूरी है, किन्तु अब अपने जीवन को बदलेंगे कौन? कौन बदलेगा अपने जीवन को? आप तो सुनते-सुनते पक गए। युवा को व्याख्यान सुनना जरूरी है या आपको? (प्रतिध्वनि– युवा को) किंतु हम उनको काम में लगा देते हैं फिर कहते हैं कि युवक धर्म से दूर हैं। हम उनको सुनने का मौका ही नहीं दे रहे हैं। कहते हैं तुम ये संभालो, वो संभालो। तुम भोजनशाला संभालो। तुम बाहर काउंटर संभालो। क्या आपने उनके लिए व्याख्यान का समय रखा है कि तुम व्याख्यान बाद में सुन लो। उनके लिए व्याख्यान का कोई समय है? वे व्याख्यान सुनेंगे कैसे? वह नहीं सुनना चाहते हों और सुनने से मना कर दिया हो तो बात अलग है।

जहां तक मैं सोचता हूं व्याख्यान के समय में इतना कोई अनिवार्य कार्य नहीं रह जाता है कि उनको कार्यालय में बैठे रहना पड़े या बाहर से आये हुए दर्शनार्थी को मार्ग दिखाएं या उनका सामान रखवाएं। ये सब व्यवस्थाएं बाद में होती रहेंगी। जो भी दर्शनार्थी बाहर से आते हैं उन सबको स्वतः पता चल जाएगा कि यहां से अंदर जाने का मार्ग है। सामान रखना होगा तो एक बार बाहर कार्यालय में रखकर वे भी आ सकते हैं। बाद में अपना स्थान देखते रहेंगे। इससे उनको भी व्याख्यान का लाभ मिलेगा और युवाओं को भी व्याख्यान का लाभ मिल पाएगा। केवल व्यवस्था की बात नहीं बता रहा हूं। कार्यालय के काम की भी बात है। वह भी करना पड़ता है किंतु सबसे पहले हमारे भीतर रुचि होनी चाहिए। मैं देखता हूं बहुत से लोग व्याख्यान सुनने में इतने रुचिशील नहीं होते। व्यवस्था में भले ही हों या अन्य काम में हों। अभी भी दो-चार-पांच आदमी बाहर मिल जाएंगे। इन कामों को देखने के लिए कर्मचारी भी हैं, वे भी ये काम कर सकते हैं। बाहर जो भाई खड़े हैं, वे चींटियों की यतना करने में कितने सहयोगी होते हैं? मैं इधर से आता हूं तो

चींटियां नजर आती हैं। उनकी यतना होनी चाहिए किंतु कई मकोड़े के मृत कलेवर नजर आए हैं। इसका मतलब हम बिना देखे वहां चले।

ऐसे मौसम में जहां चींटियां और छोटे-छोटे जीव बहुत ज्यादा होते हैं, हमें सावधानी रखना बहुत जरूरी है। यह सावधानी भी धर्म का एक अंग ही है क्योंकि यतना को धर्म की जननी कहा गया है। यतना नहीं रह पाएगी तो धर्म की आराधना होगी कैसे? दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार का मूल निष्कर्ष है यतना। यदि यतना नहीं तो सब बेकार है। यतना बहुत मूल्यवान चीज है।

श्रावक ऐसा चाहिए, जो हो क्रियावान।
यतना और विवेक का, रखे प्रतिपल ध्यान॥

हम धर्म की कुछ भी आराधना नहीं कर पाते हों किंतु यतना और विवेक दो चीजें हमारे अंदर हैं। ये दो चीजें हमारे जीवन में गहरे उतर गईं तो मोक्ष मिल पाना निश्चित है।

शास्त्रकार कहते हैं, 14 पूर्वी मोक्ष में उस भव में जाएगा जरूरी नहीं है। भरोसा नहीं है किंतु अष्ट प्रवचन माता की सम्यक् अनुपालना करने वाले के लिए मोक्ष का दरवाजा एकदम खुला है। एकदम खुला मिलेगा। उसको मोक्ष में जाने से कोई रोक नहीं सकता। पांच समिति व तीन गुप्ति की शुद्ध आराधना कर रहा है तो कोई रोक नहीं सकता। दूसरी तरफ 14 पूर्व का ज्ञान कर लिया किंतु यदि उसने जीवों की यतना नहीं की तो वह कितना भी ज्ञानी हो जाए, उसके लिए मोक्ष के रास्ते बंद रहेंगे। उसके लिए दरवाजे नहीं खुलेंगे। मोक्ष का दरवाजा खोलना है तो हमारे में यतना और विवेक की चाबी चाहिए। जैसे चाबी के दो या तीन दांत होते हैं और इनके घूमने से ताला खुल जाता है, वैसे ही यतना और विवेक के दो दांत वाली चाबी होगी तो ही मोक्ष का दरवाजा खुलेगा। उसके बिना मोक्ष का दरवाजा खुलने वाला नहीं है।

मैं बता रहा हूं कि अपने वीर्य का, अपनी शक्ति का गोपन नहीं करें। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप में हमारी शक्ति लगे। किस-किस में कितनी शक्ति लगाना जरूरी है, यह हमें समीक्षा करनी पड़ेगी।

तप और क्रिया से पहले ज्ञान की आवश्यकता है। 'पढमं णाणं तओ दया' अर्थात् अनुष्ठान की क्रियाविधि नहीं जानते हों तो क्रिया करनी नहीं

चाहिए। यदि धर्म अनुष्ठान करो तो विधियुक्त होना चाहिए। विधियुक्त नहीं हुआ तो उसका वैसा लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए पहले क्रियाओं का ज्ञान करना चाहिए। अभी इसी चातुर्मास में शुद्ध अनुष्ठान विधि शिविर का आयोजन हुआ। उसमें आपने कितना जाना कितना नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता हूं किंतु इतना जरूर है कि हमें क्रियाओं का ज्ञान करना चाहिए और उनका शुद्ध रूप से पालन करना चाहिए। एक नवकारसी भी यदि करनी हो तो शुद्ध पालन हो, अन्यथा उसका भी लाभ मिलने वाला नहीं है। भले ही नाम की कितनी भी नवकारसियां कर लें अथवा अन्य तप कर लें वैसा लाभ देने वाला नहीं होता। श्रावकों की तपस्या का वर्णन शास्त्रों में जो उपलब्ध होता है प्रायः करके पौषध के साथ है। उपवास या तपस्या हमेशा पौषध के साथ करने का ही वर्णन मिलता है।

मान लो आपने तपस्या की या उपवास किया और हमने पचखा दिया। उसके बाद दुकान पर बैठे हुए कौन मिलेगा? तपस्वी मिलेगा क्या? तपस्या वाला भी दुकान पर जाकर बैठ गया। किसी ने पूछा कि क्या कर रहे हो तो कहेगा कि टाइम पास कर रहा हूं। तपस्या में टाइम पास करना भी उसके लिए जरूरी हो गया है। टाइम पास कैसे हो? सब जगह ऐसे लोग नहीं मिलते होंगे किंतु बहुत से स्थानों पर तपस्या वाले भाई भी दुकानों पर मिलेंगे। खाली हम खाना छोड़ रहे हैं। बाकी क्या छोड़ा? केवल अन्न छोड़ रहे हैं। बाकी क्या? क्या उपवास का अर्थ होता है, भूखे रहना? भोजन नहीं मिलने पर बहुत लोग भूखे रहते हैं किंतु वह उपवास नहीं है।

'उप समीपे वसनम्'

आत्मा के समीप वास होना उपवास है। उपवास में अपनी आत्मा के प्रति हमारी कितनी निकटता हुई? आत्मा की निकटता हमने उपवास में कितनी साधी है? ठीक है, हम मानते हैं कि आपने प्रत्याख्यान लिया। हमने प्रत्याख्यान करा दिए हैं किंतु उसके भाव कितने गौण होंगे। हमने केवल इतना समझ लिया कि हमें नहीं खाना है। नहीं खाने को ही उपवास समझ लिया!

उपवास के समय हम आत्मा के निकट आए कि आत्मा से दूर रहे? मैं क्या बताऊं, मैं बताऊं तो ठीक नहीं लगेगा लेकिन बातें कभी-कभी अखरती हैं। कहेंगे कि ऐसी तपस्या कोई करेगा नहीं। कौन कह रहा है अधिक तप करो। सही तपस्या एक ही कर लो लाभ होगा। नहीं तो कितने भी कर लो वह

लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए पहले हमको उसकी विधि जानना चाहिए। यदि पौषध करके करें तो बहुत अच्छी बात।

इसलिए हम पहले ज्ञान की आराधना करें। मेरे को किसी तरह दोष नहीं लगे इसको जानने का प्रयत्न करें, फिर क्रिया संवर युक्त हो, हमारा दर्शन शुद्ध हो, नहीं तो क्या होगा? एक तरफ हम ज्ञान करते जाएंगे और दूसरी तरफ दर्शन में चोट लगाएंगे। दर्शन शुद्धि के बिना ज्ञान की शुद्धि नहीं होगी, दर्शन जड़ है। मूल है। उसकी शुद्धि जरूरी है। दर्शन शुद्धि से ज्ञान होगा और जब ज्ञान निर्मल और सही बनेगा तो आचरण सही होगा। हम सही दिशा में गति करने वाले बनेंगे। इसलिए शक्ति का उपयोग करें किंतु शक्ति का उपयोग कहां करें, पहले इसका ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान करके हम यदि सही दिशा में शक्ति का प्रयोग करें तो निश्चित रूप से हमें आत्मसंतुष्टि मिलेगी, आत्मतोष मिलेगा। नहीं तो कर कुछ भी लें, हस्तगत कुछ भी नहीं होगा।

आचार्य पूज्य गुरुदेव के विषय में जितना कहें कम ही रहेगा। दीक्षा लेने के बाद उन्होंने स्वयं को गुरु के प्रति समर्पित कर दिया। इस सभा में बैठे कई लोगों ने गणेशाचार्य के दर्शन किए होंगे। उन्होंने उस समय मुनिश्री नानालाल जी म.सा. को भी देखा होगा। उन्होंने देखा होगा कि कैसे उनकी सेवा में, छत्रछाया में बने रहते थे। कैसे उनको शांति पहुंचाई जाए, शारीरिक, मानसिक रूप से उनको संतोष मिले, उनको ज्यादा परिश्रम न करना पड़े और शांत भाव से उनकी साधना आगे बढ़े, इसके प्रति वे सजग रहकर कार्य किया करते थे। शिष्य को छात्र भी कहा जाता है। छात्र का अर्थ होता है छत्र बनकर जो रक्षा करे। छत्र, पानी से, धूप से रक्षा करता है। छत्र, धूप व पानी को सहन करता है। वैसे ही शिष्य चोट स्वयं सहता है, गुरु पर नहीं आने देता।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने तन से, मन से, वचन से, 3 करण-3 योग से और मनोभावों से सेवा साधी। एक बार ऐसा प्रसंग बना कि वे स्वयं बीमार पड़ गए किंतु उन्होंने सेवा नहीं छोड़ी। उनकी कमजोर हालत देखकर आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री गणेशलाल जी म.सा. ने फरमाया कि क्या बात है? तुम कमजोर हो रहे हो। लगता है कुछ बीमारी है। आचार्य श्री ने हाथ लगाकर देखा तो बुखार था। आचार्य श्री ने कहा कि तुम अपने शरीर का भी ध्यान रखो। डॉक्टर मेहता को दिखाकर उनका उपचार चालू किया गया। डॉक्टर ने कहा कि गोलियों के साथ इंजेक्शन भी लेना पड़ेगा। उन्होंने कहा– 'मैं

अपने कम्पाउंडर को भेज दूंगा, वह इंजेक्शन लगा देगा।' मुनिश्री नानालाल जी म.सा. ने कहा कि आप कागज पर लिख दो, कम्पाउंडर भेजने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं इंजेक्शन लगाने का भाव रखता हूं।

जो कार्य मुनि स्वयं कर सके, वह स्वयं करे या दूसरा मुनि कर सकता है तो दूसरा मुनि करे। जहां तक बन सके, गृहस्थ की सेवा न लेनी पड़े तो सबसे उत्तम। जो कार्य स्वयं नहीं कर सकते या साधु, साध्वी में से कोई नहीं कर सकता तो फिर डॉक्टर, कम्पाउंडर की सेवा ले सकते हैं किन्तु उसका भी प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा। तब वह अपने चारित्र को पवित्र बनाकर रख पाएगा। यदि चारित्र पवित्र नहीं होगा तब दोष लगते जाएंगे और धीरे-धीरे जीवन दोष का पिटारा बन जाएगा। उसका चारित्र भी दोष का पिटारा बन कर रह जाएगा।

पूज्य गुरुदेव जितनी गुरु सेवा में तन्मयता रखते थे, उतना ही वे अपने कार्य में भी स्वावलंबी बने रहते थे। अपना कार्य दूसरों को सौंप कर गुरु सेवा नहीं करते थे। अपना काम करना और गुरु की सेवा भी करना। धोवन पानी लाने के लिए जाना हो तो भी वे स्वयं जाते थे। ऐसा नहीं था कि किसी साधु को कह दिया कि तुम पानी लाने के लिए जाओ मैं तो गुरु सेवा कर रहा हूं। कर्मठ-सेवाभावी श्री इन्द्रचन्द जी म.सा. से हमने सुना है कि बीकानेर में पहले बहुत दूर-दूर से पानी लाना होता था। बीकानेर में गोगागेट तक पानी के लिए उस समय जाना पड़ता था। आजकल तो हम सोचते हैं कि यहीं पास में कोई पांच घर बता दो हम झटपट पानी लेकर आ जाएंगे। मेरी पढ़ाई का समय हो रहा है या मेरी क्लास का समय हो रहा है, अध्ययन का समय हो रहा है। हमको झटपट पानी लेकर क्लास में जाना है। उस समय गोचरी वालों के साथ पानी लेने के लिए जाना होता था और पानी का योग भी थोड़ा-थोड़ा बन पाता था। जो योग बनता उसे पहले अन्य साधुओं को पानी का पात्र भरवाकर रवाना कर देते थे, फिर अंत में स्वयं पानी लेते।

मुनि श्री नानालाल जी महाराज साथ वालों को पानी भरवाकर फिर अपने पात्रों में पानी भरते। यह नहीं कि मुझे जल्दी जाना है, गुरुदेव की सेवा करनी है या अध्ययन करना है। नहीं तो इतना घूमना पड़ेगा और इतना घूमना सार्थक हुआ या निरर्थक? (प्रतिध्वनि—सार्थक) क्या पता? मुनि श्री नानालाल जी म.सा. ने तो इतना समय लगाया और वह सार्थक बना गए। यदि हमें इतना समय लग जाए तो हम सोचेंगे कि अरे! इतना समय निरर्थक

लगा। चारित्र की आराधना के लिए, ज्ञान की आराधना के लिए जो समय लग रहा है वह कभी निरर्थक नहीं है। चारित्र में, गोचरी में, पानी में ज्यादा भी समय लगाना पड़ा और ज्ञान करने में, ध्यान में, अध्ययन में समय कम है तो भी सार्थक ही है। म.सा. का तो सार्थक है और आपका लगे तो?

हमारे संत गोचरी-पानी की गवेषणा में चार बातें पूछें तो आपको बुरा तो नहीं लग जाता है। इतनी सारी बातें पूछते हो आप तो, क्या हम नहीं खाते हैं। आप सोने के सिक्के खाते होंगे हमको क्या पता? यदि आप भी खाते हों सोने के सिक्के तो कभी महाराज को बहराते कि म.सा. ये लो सोने के सिक्के। खाते तो बहराते। कोई भी, कितना भी धनाढ्य हो, कितना भी धनी आदमी हो, राजा हो या नगर सेठ, खाने को तो रोटी ही मिलेगी। खाने को तो गेहूं, बाजरे, मक्की या ज्वार की रोटी ही मिलेगी। चावल मिलेंगे। हो सकता है कोई थोड़ी नमकीन और मिठाई खा ले और कोई बिना नमकीन के भोजन कर ले किंतु पेट किससे भरेगा? (प्रतिध्वनि– रोटी से) पेट तो रोटी से ही भरेगा। रोटी से भरेगा तो उसमें दूसरी-तीसरी चीजें क्यों बहराते हो? म.सा. नियमित समय पर आ रहे हैं तो ये चीजें बना दें, वो चीजें बना दें। पर संत के लिए कभी-भी ज्यादा बनाना नहीं और जल्दी भी नहीं बनाना।

हम अपने व्याख्यान के लिए आ रहे हैं, जल्दी बना देते हैं तो कोई बात नहीं है किन्तु म.सा. के लिए अगर हम जल्दी बना देते हैं, तो वह दोष का कारण है। आपको भगवान महावीर ने माता-पिता की उपमा दी है। माता-पिता संतान का हित चाहते हैं या अहित चाहते हैं? हित चाहते हैं तो कभी भी अशुद्ध आहार बहराने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। शुद्ध आहार पूरा का पूरा देना कोई मना नहीं है। हम पूरा-पूरा घर में बना हुआ आहार बहरा दें और कहें कि हमको उपवास पचखा दिया जाए। यह हो सकता है किंतु म.सा. गोचरी शुद्ध लेकर जाएंगे। संत भी और सतियां भी। कुछ कहते हैं– हम ध्यान, विवेक नहीं रखेंगे तो कौन रखेगा? क्या विवेक रखोगे? चार रोटी जल्दी-जल्दी बना लो यह विवेक नहीं है। कभी भी गोचरी के लिए कोई भी चीज जल्दी तैयार नहीं करना चाहिए। वह सदोष आहार होता है। ऐसी गफलत भरी बातें कभी नहीं करनी चाहिए। ऐसी बात कभी विचार में भी नहीं आनी चाहिए। घर में जो भी स्वाभाविक बना है, उसको बहराने के लिए तैयार रहना चाहिए। जो भी हो, सूखी चीज ही क्यों न हो उसको बहराना

उचित रहेगा। ऐसा नहीं हो कि जल्दबाजी में आज व्याख्यान में लेट हो गया तो धड़ाधड़ बना दिया। ऐसा काम नहीं करना चाहिए। ये सदा ध्यान रखना। कभी भी साधु या साध्वियों के लिए हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए।

आप लोगों ने पूज्य गुरुदेव के मुंह से सुना होगा कि एक बार महाभारत का वाचन हो रहा था। श्रोता सुन रहे थे। वाचन पूरा हुआ तो एक भाई पंडित जी के पास पहुंचा और बोला, 'पंडित जी! आपने तो आज मेरे कानों की खिड़की खोल दी। महाभारत का यही वाचन पहले सुन लेता तो मेरी दशा कुछ और ही होती।' पंडित जी खुश हुए कि भगत बड़ा वैरागी है लगता है ध्यान से सुना है। पंडित जी ने पूछा कि क्यों भाई, कुछ और क्या हो जाता? वह बोला कि महाराज मैं जुआ खेलता हूं और मुझे पता नहीं था कि धर्मराज ने अपनी पत्नी को भी दाँव पर लगा दिया था। पता होता तो मैं भी नहीं चूकता। आज मैं यह सुन पाया हूं। अब बताइये सुनने का सार क्या निकला? इसी प्रकार उसकी पत्नी ने कहा कि मैंने यह पहले नहीं सुना कि द्रौपदी के पांच पति थे फिर भी सती कहलाई। यदि पहले ज्ञात होता तो मैं एक के पीछे क्यों रहती। अब बोलो! अर्थ लेने वाले क्या-क्या अर्थ ले लेते हैं। अर्थ लगाने वाला तो कुछ भी अर्थ लगा सकता है। कुछ लोग अच्छाई को प्राप्त करते हैं तो कुछ बुराई को ग्रहण करते हैं।

हम सुनते हैं कि ऋषभदत्त राजा ने जम्बू कुमार के लालन-पालन के लिए पांच धायों को रखा था। आजकल आया बच्चे को संभालने के लिए रखी जाती है तो इसमें क्या बुराई है। पांच धायों को लालन-पालन के लिए रखा गया। उनका उद्देश्य क्या था? राजकुमारों के बारे में ऐसा-ऐसा वर्णन भी मिलता है कि 18 देशों की धायों को रखा जाता था। 18 देशों की धायों को रखने के पीछे का रीजन था कि 18 देश की भाषाएं वे धायें बोलेंगी तो राजकुमार को जन्म से ही 18 भाषाओं का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। वह बचपन से ही सीख लेगा। अलग से किसी भाषा का ज्ञान कराना मुश्किल होता है। उस समय कोई धाय किसी भाषा में बोलती थी, कोई धाय अन्य किसी भाषा में। जिसकी जो भाषा रहती राजकुमार सहज उतनी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता था। आज घर में आया होती है, वह कितनी भाषा जानती है? वह तो घर की भाषा भी नहीं जान रही है। वह बंगाली या हिंदी भाषा या जिस क्षेत्रविशेष से होती है उस भाषा को जानती है। वह उसको विशेष क्या समझा पाएगी।

पांच धायों को रखने का मतलब है कि अलग-अलग संस्कृति का उसको ज्ञान हो जाए। अलग-अलग प्रकार के संस्कारों का ज्ञान हो जाए। आप देखेंगे कि हर जाति की अलग-अलग संस्कृति होती है। क्षत्रियों का कुछ अलग संस्कार होता है, ब्राह्मणों की अलग संस्कृति होती है। ऐसे ही दूसरों की अलग-अलग संस्कृतियाँ होती हैं। अलग-अलग संस्कृतियों का ज्ञान भी बच्चे को होना जरूरी है। वह कैसे होता है? बात ही बात में ज्ञान होता है। धायें खेलाते-खेलाते ही बच्चों को ज्ञान करा देती थीं। उनका स्तर आया से ऊँचा होता था। इसका मतलब यह नहीं कि उनकी माताएं अपना दायित्व नहीं निभाती थीं। माताएं अपना पूरा दायित्व निभाती थीं। धायें उनके सहयोगी के रूप में होती। उन धायों को साफ कह दिया जाता था कि उन बच्चों के मन या मस्तिष्क में कभी भी आघात नहीं लगे, ऐसा बराबर ध्यान रखना। ऐसा कोई भय उनको नहीं दिखाना जिससे बच्चा भयभीत हो जाए।

आज कई बच्चे बिल्ली से डरते हैं, चूहे से डरते हैं। कई बच्चे अंधेरे में जाने से डरते हैं। इसका कारण हमें ढूंढ़ना पड़ेगा। कहीं-न-कहीं हमारी माताएं बच्चों पर नियंत्रण करने के लिए बोलती हैं कि देख ऐसा किया तो अंधेरे कमरे में डाल दूंगी। बिल्ली के सामने डाल दूंगी। ऐसा करने से बच्चों में उनके प्रति भय पैदा हो जाता है। यह भय उनके मस्तिष्क में घुस जाता है और वे उनसे भयभीत हो जाते हैं। झोपड़ पट्टी में रहने वालों को उधर से निकलते हुए संतों की ओर इशारा करके कहते सुना गया है कि चुप हो जा नहीं तो इन महाराज के साथ भेज देंगे। इससे बच्चा महाराज से डरने लग जाता है। बच्चों का महाराज के प्रति भय हो जाता है।

ऐसे ही एक बच्चा अंधेरे में जाने से घबराता था। वह उस रूम में जाता नहीं था। उसको उस रूम में जाने के लिए कहा जाता तो वह जाता नहीं था। वह कहता है उस रूम में भूत है, मैं नहीं जाता। सोचें! यह भूत कहां से आया? यह उन माताओं की ही देन है कि बच्चों में भय बचपन से ही पैदा हो जाता है। बचपन में जैसा संस्कार बच्चे को देंगे वैसा बच्चा ग्रहण करके उसको मस्तिष्क में बिठा लेगा।

उस बच्चे के दादाजी ने विचार किया कि ये संस्कार बचपन से उसमें बने रह जाएंगे तो आगे नुकसान होगा। उन्होंने कहा कि मैं तुमको एक ताबीज देता हूं। इस ताबीज को तुम बांध लो, मैं बाहर बैठा हूं। इस ताबीज

में इतनी ताकत है कि पहले तो भूत पास में आएगा ही नहीं और पास में आ भी गया तो तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। बच्चे ने उस ताबीज को बांध लिया और रूम में गया। उसको कोई भूत नहीं दिखाई दिया। वह वापस आ गया। उसको भूत मिला ही नहीं। अब नए संस्कार बन गए कि ताबीज है तो, भूत नहीं है। अब नया संस्कार क्या बन गया? ताबीज है तो भूत नहीं है। अब ताबीज खोलकर भेजो तो वह डरेगा कि ताबीज खोलकर नहीं जाऊंगा। बच्चा फिर से डरने लग जाएगा और वह जाएगा नहीं। दादाजी ने प्रयत्नपूर्वक वह भय भी दूर किया। कुछ लोग समझदार होते हैं जो उसकी मानसिक कुंठा को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। अन्यथा ऐसी छोटी-छोटी बातें बच्चों के सामने कर देते हैं जो बच्चे के कच्चे मस्तिष्क में बैठ जाती है फिर उनके जीवन में लंबे समय तक निकल नहीं पाती है।

एक बात और ध्यान में लें कि भय दिखाकर या लालच देकर बच्चे को डराना गलत बात है। कई बार आप बच्चों को महाराज को लाने के लिए भेजते हैं और बोलते हैं यदि महाराज को लेकर आ गया तो चॉकलेट देंगे। बच्चा म.सा. को लेकर आता है तो घर में आते ही बोलता है कि मैं लेकर आ गया म.सा. को, अब मुझे टॉफी दो। इससे उसने क्या सीख लिया? 'पैसा फेंको, तमाशा देखो।' कोई काम कराना हो तो उसके एवज में कुछ दो। बच्चों को कुछ देकर काम करवाया जाता है, बच्चों को बोलते हैं यदि तुमने यह काम किया तो तुम्हें यह सब दूंगा, तो बच्चे की मानसिकता उसके अनुरूप बन जाती है। फिर बुढ़ापे में जब बच्चे से काम करवाना होगा तो बच्चा बोलेगा– चाबियां देंगे तो सेवा करूंगा। बैंक बैलेंस मेरे नाम से होगा तो काम करूंगा। सोचें! बच्चे ने क्या सीखा। इसलिए लालच देकर भी बच्चे के मस्तिष्क को खराब नहीं करना चाहिए। उसे सिखाकर कार्य को करवाना चाहिए न कि लालच देकर। लोभ देकर, भय देकर काम कराया जाता है तो यह उनके जीवन के लिए हित की बात नहीं होगी। इससे गलत संस्कारों की जड़ जम जाती है। अतः सारे कार्य सही तरीके से होने चाहिए। ठीक समय पर सोना चाहिए और ठीक समय पर उठना चाहिए। ऐसा नहीं कि रात-रात भर जागे फिर दिन भर सोए। समय पर सोना, ठीक समय पर उठना। यदि हम अपनी चर्या को नियमित बनाना चाहते हैं तो ठीक समय पर उठना और ठीक समय पर सोना होगा। नीतिकारों ने कहा है कि सोते समय रात को 10 से अधिक नहीं बजने चाहिए। सोने से पहले 10 का घंटा न सुनें। यह यहां

के लिए है। असम में सूर्योदय और सूर्यास्त जल्दी हो जाता है। सूरज जल्दी अस्त और उदय जल्दी हो जाता है। उस स्थिति में वहां सोने का समय बदल जाएगा। यह क्षेत्र के अनुरूप है। यहां के क्षेत्र के अनुपात से रात को 10 बजे से ज्यादा जगना नहीं चाहिए और सुबह सूर्य उदय से 2 घण्टे पहले उठना चाहिए। आज तो पोरसी सोये-सोये आ जाती है। कहीं-कहीं तो ऐसा होता है कि रात को 10-11 बजे तक बातें करते रहेंगे फिर कहते हैं कि अब पढ़ेंगे और चार बजे तक पढ़ेंगे फिर सोएंगे। फिर उठना 9-10 बजे। सूर्य की पहली किरणें हमारे गात्र को स्पर्श करनी चाहिएं। अब आप कहेंगे कि ठीक है म.सा. आज से हम बाहर ही सो जाएंगे। जिससे किरणें हमारे तन का स्पर्श कर लेंगी। बात आपको जमी नहीं? सूर्य की किरणें हमारे गात्र को स्पर्श करेंगी तो हमें विटामिन डी भरपूर मात्रा में देंगी। इसकी आज अमूमन कमी पाई जाती है क्योंकि हम कोमल किरणों का स्पर्श देह को होने ही नहीं देते।

एक डॉक्टर साहब आए थे। बीकानेर में डॉक्टर ने कहा, 'म.सा., आप श्रावकों को पच्चक्खाण दिला दो कि एक सामायिक सुबह की धूप में बैठकर किया करें। सुबह की सामायिक धूप में बैठकर करने से विटामिन डी भरपूर मिलेगा। म.सा. ने पूछा, इससे क्या होगा? तो डॉक्टर साहब ने कहा कि आज व्यक्तियों में विटामिन डी की बहुत कमी होती जा रही है। इसलिए सुबह-सुबह की सामायिक, सूर्य की कोमल किरणों में करें। हालांकि हम लोगों को शरीर का ध्यान रखने के लिए नहीं कहते हैं। हमें शरीर का ध्यान नहीं रखना। हमें तो आत्मा को शुद्ध बनाने का ध्यान रखना है। डॉक्टर साहब ने कहा क्योंकि हम सूर्य की कोमल किरणों को ग्रहण नहीं करते, इस कारण से लोगों में विटामिन डी की कमी ज्यादातर होती है। सूर्य की कोमल किरणों का एक घंटा स्पर्श कर लें तो उनको भरपूर विटामिन डी मिलेगा और वह शरीर के लिए लाभदायक होगा। इसलिए ठीक समय पर सोना चाहिए और ठीक समय पर उठना चाहिए।

आप देखते होंगे पक्षियों को। शाम होते ही वे झुंड बनाकर एक जगह रुक जाते हैं। रात में गमन विशेष नहीं करते। सुबह होते ही चहल-पहल करते हैं और अपनी-अपनी क्रियाओं में लग जाते हैं। मनुष्य इतना आलसी हो गया कि 9 बजे, 10 बजे तक उठेगा। ऐसा करना शरीर ही नहीं, संस्कारों के लिए भी हानिकारक होता है। इसलिए बच्चे पर ऐसे कुसंस्कार पड़ें, ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

विषय को पूरा करने का मन में लोभ बना रहता है। विषय आता है तो ऐसे नहीं लगता कि विषय को छलांग लगाकर पार कर लूं। विषय को स्पष्ट नहीं करूं। इन विषयों को इसलिए बताना है कि इनमें जीवन निर्माण के लिए गहरे तत्त्व हैं। हमें जीवन निर्माण करना है तो ध्यान देना होगा कि माता-पिता किस प्रकार से अपना खयाल रखें ताकि बच्चों में वैसे ही संस्कार आवे। आप बच्चे को जैसा उपदेश देंगे, वह वैसा बनेगा। आप जैसा जीवन जी रहे हो, उसे देखकर आपका बच्चा वैसा जीवन आसानी से जी लेगा। आप सही समय पर उठोगे तो बच्चा अपने आप ही सही समय पर उठ जाएगा। आप 10 बजे उठते हो तो बच्चा भी 10 बजाएगा। हो सकता है कि 12 भी बजा दे। वैसे ही बारह बजाने वाले हैं!

बच्चों को मनोरंजन का साधन भी नहीं मानना चाहिए। ये देश के भावी स्तम्भ हैं। इसलिए देश और धर्म के स्तम्भ के रूप में इनको देखना चाहिए। कभी हम बच्चों के साथ हंसी-मजाक की बातें कर लेते हैं वे बातें मनोरंजन के रूप में वैसी नहीं होनी चाहिए। कभी-कभी हम कोई चीज हाथ से दिखाकर फिर छुपा लेते हैं। बच्चा लेने की कोशिश करता है और हम छुपा लेते हैं वह दिमाग में असर डालती है। ये बातें उनके लिए लाभदायक नहीं होती हैं।

एक बात पहले कही थी मैंने कि वीर्य शक्ति, अपनी कार्य शक्ति का गोपन नहीं करें। कैसा भी कार्य हो हमको स्वयं करने की तैयारी रखनी चाहिए और उसे अच्छे से करना चाहिए। जितना अच्छे से करेंगे, उतनी कला विकसित होगी। जो अपने आपमें कलाएँ विकसित करना चाहते हैं, उन्हें काम को नकारना नहीं चाहिए। ऐसा लक्ष्य हमें रखना चाहिए। यदि हमें कोई किसी कार्य के लिए कह दे, हमारी शक्ति हो तो उसके लिए ना नहीं करना चाहिए। ऐसे लक्ष्य के साथ हम आगे बढ़ेंगे तो अपने जीवन को धन्य बना पाएंगे।

24 जुलाई, 2019

7

पुज्जा जस्स पसीयंति

"पुज्जा जस्स पसीयंति" बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। जब मैं यह कह रहा हूं कि यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है तो मेरे भीतर एक प्रश्न खड़ा हो रहा है कि कौन-सा सूत्र महत्त्वपूर्ण नहीं है? जब किसी सूत्र के विषय में कहा जाता है कि यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है, बहुत महत्त्वपूर्ण है तो प्रश्न खड़ा होता है कि ऐसा कौन-सा सूत्र है, ऐसी कौन-सी गाथा है कि जो महत्त्वपूर्ण नहीं है?

वस्तुतः तीर्थंकर देवों का जो भी उपदेश है, तीर्थंकर देवों की जो भी वाणी है, सभी अनमोल हैं। उसका एक-एक अक्षर बहुमूल्य है, अनमोल है, किंतु जिस समय जो कथ्य होता है, जिस समय जिसका कथन करना होता है, उस समय उसकी बात की जाती है। उसका कथन किया जाता है, वर्णन किया जाता है।

वर्तमान में हमारा कथ्य है कि पूज्य पुरुष जिस पर खुश हो जाते हैं, पुज्जा जस्स पसीयंति। वैसे वे तो सदा खुश रहने वाले होते हैं। वीतराग भगवन्तों को, महापुरुषों को पूज्य पुरुष कहा गया है। फिर भी थोड़ा बहुत कहीं अंतर हुआ करता है। कहीं कुछ विशेष है। वह विशेष व्यक्तिगत स्थिति होती है। वह कैसे होता है, क्या होता है पात्रता के आधार पर बात बनती है। पात्र जैसा होता है, उसके अनुरूप बात बनती है। पात्र के अनुरूप बदलाव आता है। जहाँ तक मैं सोचता हूं कि पात्रता के अनुसार ही व्यक्ति किसी पर खुश हो पाता है।

मैं आगम की बात ले रहा हूं। श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र के 22वें अध्ययन में अरिष्टनेमि भगवान के जीवन का वर्णन किया गया है। हल्ला मच गया कि भगवान अरिष्टनेमि शादी के लिए तैयार हो गए। हालांकि उन्होंने हां नहीं भरी थी। शादी के लिए उन्होंने कोई हां नहीं भरी थी किंतु हल्ला हो गया कि शादी

के लिए तैयार हो गए– हो गए, हो गए। उसके अनुसार शादी की बातें भी बन गई। कृष्ण वासुदेव स्वयं जाकर राजा उग्रसेन से राजीमती की याचना करते हैं। उग्रसेन जी भी तैयार हो जाते हैं। विवाह की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। बरात सजकर रवाना हो जाती है।

जाते समय मार्ग पर उन्होंने दृश्य देखा कि बाड़े और पिंजरों में अनेक पशु-पक्षियों को बंद करके रखा गया है। वे करुण-क्रंदन कर रहे थे। उन्होंने करुण-क्रंदन को सुना, देखा। अरिष्टनेमि ने सारथि से पूछा, 'कस्स अट्ठा इमे पाणा' अर्थात् ये प्राणी किसलिए इकट्ठे किए गए हैं? इन प्राणियों का यहां क्यों संग्रह किया गया है? सारथि ने स्पष्ट किया कि आप पूछ रहे हो कि ये किसके लिए यहां इकट्ठे किए गए हैं तो बता रहा हूं। सारथि ने कहा– 'तुज्झ विवाह कज्जम्मि'। प्रसंग आपके विवाह का है। आपकी शादी का है। आपके विवाह के विषय में सभी आतुर हैं। अब तक सभी ने यह सुना था कि आप शादी के लिए तैयार नहीं हैं। जब आपकी तैयारी सुनी तो मनुष्य जगत में ही नहीं, देव जगत में भी हलचल मची हुई है। देव जगत के सभी देवी-देवता यह दृश्य देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं, अभिमुख हो रहे होंगे कि क्या होने वाला है? ये क्या हो रहा है? ये कैसे हो रहा है?

एक वर्णन में ऐसा भी बताया गया है कि शकेंद्र एक ब्राह्मण का रूप बनाकर आया और कहता है 'लगन में दिखे हो कई अधूर, इण अवसर नहीं परणे गरूर' कि लगन में कमी दिख रही है, लगन में अधूरापन दिख रहा है। यह प्रसंग अपूर्ण दिख रहा है। यह शादी होनी तो मुश्किल है। जब कृष्ण वासुदेव के कानों में ये शब्द पड़े तो उनके कान खड़े हो गए कि जैसे-तैसे करके तो अरिष्टनेमि माने हैं! अब शादी के लिए बीच में विघ्न पैदा करने वाला यह कौन आ गया? श्री कृष्ण वासुदेव उस ब्राह्मण से पूछते हैं कि 'आपको यहां आने के लिए पीले चावल किसने दिए?' आपको किसने बुलाया? आप रवाना हो जाओ यहां से। आपको क्या लेना-देना इस शादी से? यह कहकर वहां से उनको हटाया गया।

सारथि कहता है कि मैं जहां तक समझता हूं देवलोक में भी हलचल मची होगी कि ये शादी कैसे रची जा रही है और जब आप तैयार हुए हैं तो बरात में बहुत सारे लोग आए हैं। सारे के सारे लोग शाकाहारी नहीं हैं। कई लोग मांसभक्षी भी हैं। उन लोगों के लिए बाड़े और पिंजरों में पशुओं को इकट्ठा किया गया है।

यह बात सुनकर अरिष्टनेमि भगवान का चेहरा अत्यंत गंभीर हो गया। वे विचार में पड़ गए कि क्या एक शादी, एक विवाह के लिए इतने सारे प्राणियों का घमासान होगा। इतने सारे प्राणियों के प्राणों की हानि होगी।

एक सवाल है। आशीर्वाद से फलापा होता है या दुराशीष से? कोई पेड़ या पौधा भी फलता है तो किसी के आशीर्वाद से फलता है। यदि उसको दुराशीष लग जाए तो वह भी फलता नहीं है। वह खड़ा रह जाएगा। छाया देने वाला बन जाएगा किंतु फलेगा नहीं। तो दुराशीष से फलता है या आशीष से फलता है? विवाह-शादी आप करने को तैयार हुए, हजारों फूलों की हानि हुई, हजारों जीवों की घात हुई, हजारों क्या असंख्यात जीवों की घात हुई। वे जीव जो दाम्पत्य जीवन जीने के लिए तैयार हो रहे हैं, उन्हें वे आशीर्वाद देंगे या उनका करुण-क्रंदन बाहर आएगा? आशीष के रूप में आएगा या दुराशीष के रूप में?

विचार करने की बात है कि हम किसी को आगे बढ़ाने की बात तो करते हैं किंतु वैसा काम करते नहीं हैं। उसको आगे बढ़ाने के लिए, उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए यदि हजारों प्राणियों का घमासान होगा तो? वह जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता।

हमारे पूर्वजों ने कहा है–

सुख दियां सुख होत है, दुःख दियां दुःख होय।

सुख दोगे तो सुख मिलेगा और दुःख दोगे तो आपको भी दुःख मिलेगा। किन्हीं जीवों का, प्राणियों का हनन करोगे तो सुख कहां से मिलेगा? इसलिए जितनी भी आडम्बरकारी प्रवृत्तियां हैं, दिखावे की प्रवृत्तियां हैं– एक प्रकार से अनावश्यक हिंसा है जिसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह डेकोरेशन नहीं होगा तो विवाह-शादी नहीं होगी क्या? क्या संबंध नहीं जुड़ेंगे? क्या पटाखे नहीं फोड़े जाएंगे तो विवाह-शादी नहीं होगी? क्या पटाखे फोड़ने से पति और पत्नी का हृदय मिल जाएगा? जितनी हिंसा विवाह, शादी आदि प्रसंग पर बढ़ी है, उतने ही तलाक बढ़ गए हैं।

बढ़े या घटे? (प्रतिध्वनि– बढ़े हैं)

यह शुभ आशीष का फल है या दुराशीष का परिणाम?

कई तो कोर्ट में चले गए तलाक के नाम पर। कई लोग घर में तैयारी करके बैठे हैं। लड़की विवाह के बाद पीहर आकर बैठ गयी है। लड़का अपने घर में बैठा है। दोनों सोच रहे हैं कि कैसे तलाक दे दिया जाए। आपस में ही यदि समझौता हो जाए तो ठीक है। कोर्ट में जाना ही नहीं पड़े। कोर्ट में जाना ही पड़े तो सीधे जाकर राजीनामा दे दें कि ये अलग और मैं अलग। ऐसी तैयारियां भी घरों में चल रही हैं। जैसी जानकारी है मैं बता रहा हूं। जैसा मुझे पता है कि कई तलाक हो रहे हैं और कई तलाक के किनारे पर बैठे हैं। कई घर में सोच रहे हैं कि ये समझौता कैसे हो जाए। ये संबंध कैसे टूट जाए।

ऐसे प्रसंग क्यों बनते हैं भला?

बहुत स्पष्ट है कि जीवों की घात का प्रतिफल हमको मिलेगा। यदि हमने बहुत जीवों की हिंसा नहीं की होती, जीवों को तकलीफ नहीं पहुंचाई होती, जीवों को सुखी बनाया होता, जीवों के जीवन को बचाया होता, जीवों को धर्म लाभ दिया होता तो ऐसी नौबत, ऐसी बात शायद नहीं होती।

जो कुछ भी प्रसंग है यह तो प्रसंगोपात बात आ गई। अरिष्टनेमि भगवान चिंतामग्न हो गए कि क्या एक विवाह के कारण से इतने जीवों की घात होनी चाहिए? क्या सचमुच में ऐसा विवाह जीवन को सुख देने वाला बनेगा? उनकी गंभीर मुद्रा से सारथि समझ गया कि अरिष्टनेमि भगवान क्या चाहते हैं? ऊंचे लोगों के पास, बड़े लोगों के पास रहने वाले यदि उनके इंगित, चेष्टा भाव को नहीं समझें, नहीं जानें तो वहां रह करके क्या अपना विकास किया!

सारथि समझ गया कि अरिष्टनेमि भगवान क्या चाहते हैं। वह रथ से नीचे उतरा और बाड़े व पिंजरों के द्वार खोल दिये। द्वार खोलते ही पशु-पक्षी बड़े खुश होकर, मानो आशीर्वाद देते हुए, उपकार मानते हुए वहां से प्रस्थान करते हैं।

अरिष्टनेमि भगवान ने क्या किया? वे क्या बोले? उन्होंने सारथि से कहा कि रथ मोड़ लो। वह वापस मुड़ गए। कहानी बहुतों के पढ़ी हुई है, सुनी हुई है। अरिष्टनेमि भगवान लौट आते हैं। शादी नहीं होती है। उधर राजुल विह्वल हो गई। वह रह-रहकर बिलखने लगी। बार-बार बेहोश हो जाती है। उसे होश में लाने का उपाय किया जाता है। रो-रोकर उसकी आंखें सूज गईं।

वह कहने लगी, मेरे प्राणनाथ! मेरे में क्या दोष देखा, जन्मों-जन्मों का साथ निभाने वाले, मुझमें क्या कमी देखी? क्यों मुझे छोड़कर चले गए?

जिस समय आदमी में राग का आवेग, काम का आवेग होता है, मोह-माया का आवेग होता है, उस समय उसकी दृष्टि में दूसरी चीज नहीं आती। जैसे चश्मा जिस रंग का लगा हुआ होता है, पदार्थ वैसे ही दिखते हैं। व्याख्यान में बैठने वालों की चादर कौन-से रंग की है? (प्रतिध्वनि– सफेद) यदि मैंने लाल चश्मा लगाया होता तो ये चादरें कैसी दिखती? (प्रतिध्वनि– लाल) और काला चश्मा लगाया है तो कैसी दिखेंगी? जैसा चश्मा पहनेंगे वैसी दिखेगी।

सामायिक में कौन-से रंग की पैंट पहननी चाहिए? (प्रतिध्वनि– चोलपट्टा।) कहाँ वर्णन है, चोलपट्टे का? चोलपट्टे का वर्णन कहां पर है? किसी भी आगम में, किसी भी जगह पर आप बता दो चोलपट्टे पहनकर सामायिक करने का विधान। कौन बताएगा? कहां पर विधान मिला है? सही-सही बात करें तो चोलपट्टे का विधान नहीं है।

क्या बात समझ में आ रही है?

सही-सही बात करें तो सामायिक में चोलपट्टे का विधान नहीं है। यह विधान नहीं है कि चोलपट्टा पहनकर सामायिक की जाए।

पुराने समय में कहा जाता था कि इकलंगी धोती होनी चाहिए। धोती के दो लांग लगायी जाती है। उसमें एक लांग खुली रहनी चाहिए। किंतु उसका भी कोई वर्णन आगम में देखने में नहीं आया। इकलंगी धोती का कोई विधान नहीं है। यदि आप प्रतिमाधारी की बात कर रहे हैं तो उसके पांचवीं या छठी प्रतिमा में 'मउलीकडे' शब्द आया है। उसका अर्थ होता है कि जैसे अंगोछा लपेटते हैं, बिना सिलाई का होता है। मद्रास की तरफ के लोग जो वस्त्र लपेटते हैं उसका नाम मद्रास वाले जान सकते हैं। शायद उसे वेष्टी कहते हैं। वह बिना सिलाई का होता है। दोनों तरफ से किनारे से पकड़ लेना और लपेटना। उसको दोनों किनारों से पकड़ करके लपेट दिया जाता है। प्रतिमाधारी के लिए ऐसा जरूर बताया गया है किन्तु उससे हम समझ लेते हैं कि सामायिक में वही सब होना चाहिए।

फिर बात आती है कि चोलपट्टे का प्रचलन कैसे होने लगा? हमने यह देखा कि इस आगम पाठ के नजदीक क्या है? इसलिए उसका विधान

कर दिया। धोती भी पहन सकते हैं किंतु किसी को पहननी आती नहीं, इसलिए चोलपट्टे को मान्यता दे दी गई। यह कम-से-कम उसके नजदीक है। चोलपट्टा मउलीकडे के नजदीक है। लोग अभी इसका प्रयोग कर रहे हैं। आगम में मउलीकडे दिया है। यह खुला होता था और धार्मिक क्रिया के समय आदमी को यह पहनना चाहिए।

अब यह जानना है कि सामायिक लेते समय पैंट, पायजामा, वगैरह क्यों नहीं पहन सकते। आजकल यह देखा जाता है कि कपड़े पहने हुए हैं और कुरते पर ही एक चादर का टुकड़ा डाल लिया जाता है– कपड़े खोलने की भी मेहनत नहीं करना। कुछ लोग कोट या कमीज उतार देते हैं। बनियान पर चादर ओढ़कर ही सामायिक में बैठ जाते हैं। यह कहा जाता है कि साधना के समय में वस्त्र एकदम ढीले होने चाहिए ताकि साधना में कहीं अवरोध पैदा नहीं हो। वस्त्र बिना सिलाई का हो या चोलपट्टा हो। जिसमें एक लाइन सिलाई होती है तो वह भी साधना में विशेष बाधा पहुंचाने वाला नहीं बनेगा। इसलिए उसको मान्यता दे दी गई। इस प्रकार का वस्त्र रहता है तो साधना में कठिनाई नहीं आती। तंग वस्त्र कठिनाई खड़ी करने वाले होते हैं। तंग वस्त्र पहनने से साधना में बैठने पर थोड़ी देर में ही कठिनाई आएगी। वह नहीं रहनी चाहिए। ऐसे वस्त्र पहनने वाले ज्यादा देर तक साधना में एक ही आसन में नहीं बैठ पाते।

यह तो एक विषय आ गया। एक प्रसंग आ गया। अतः उस पर कुछ बातें बोल गया। मूल बात हमें ध्यान है कि अरिष्टनेमि भगवान का सारथि उनके इशारे से समझ गया और उसने जीवों के बाड़े और पिंजरों को खोल दिया। भगवान ने रथ मोड़ लिया। राजुल यह जान कर दुःखी हो रही है। उसके दुःख का कारण उसका लगाव है। जैसे ही किसी में लगाव पैदा हो गया, दुःख शुरू हो जाता है। जब तक शादी तय नहीं हुई, संबंध नहीं बना, तब तक अरिष्टनेमि से उसका कोई लेना-देना नहीं था। जब तक अरिष्टनेमि से कोई संपर्क नहीं था, कोई बात नहीं थी। संपर्क अभी भी नहीं हुआ था किंतु मन में यह भाव अवश्य आया कि अरिष्टनेमि के साथ मेरा संबंध हो गया। वे मेरे भावी प्राणनाथ हैं।

उसके मन में अटैचमेंट हुआ। मन का यह अटैचमेंट ही व्यक्ति को दुःखी बनाने वाला हो जाता है। इससे व्यक्ति को पीड़ा होती है कि उसे क्यों उपेक्षित किया गया। वह सोचता है कि मेरे में क्या खोट, मेरे में क्या कमी

है? मेरे में क्या दोष है जिससे मेरा त्याग कर दिया गया? मेरे में क्या दोष देखा गया? अब अरिष्टनेमि से कौन पूछे कि वे क्यों मुड़ गए? क्या राजुल में कोई दोष है?

लोग अपनी-अपनी चर्चा करते हैं। कोई कहता है कि राजुल में कमी रही होगी इसलिए पीछे मुड़ गए भगवान। दूसरा कारण यह बताया जा रहा था कि बहुत सारे पशुओं को इकट्ठा देखकर भगवान का मन दुःखी हो गया, इसलिए लौट गए। किसी ने कहा, एक ब्राह्मण आया था, उसने बोला था कि लगन में कोई अधूरापन है इसलिए लौट गए। जितने मुंह उतनी बातें होती हैं। हकीकत तो भगवान अरिष्टनेमि को ही पता है कि वे क्यों मुड़ गए।

हालांकि अनेक पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने उद्घोषणा की थी कि 22वें तीर्थंकर शादी नहीं करेंगे। नहीं करेंगे तो नहीं करेंगे। ये सारा एक माया जाल रचा गया था। अरिष्टनेमि पहले भी तैयार नहीं थे और बाद में भी तैयार नहीं रहे। जो कुछ भी प्रसंग बना। कहने का आशय है कि अरिष्टनेमि भगवान ने यह बता दिया कि संबंध जोड़ने के लिए, विवाह-शादी के लिए इतने जीवों का घमासान कदापि उचित नहीं है।

आज हम क्या करते हुए चले जा रहे हैं?

'जितना ज्यादा पैसा, उतनी ज्यादा समस्याएं'

ध्यान रखिए पैसा पूर्व जन्म के पुण्य योग से मिल गया। पूर्व जन्म में कोई सुकृत कार्य किया होगा। तप, संयम नियम की आराधना की होगी तो यह पैसा मिल गया। धन मिल गया और वर्तमान में इस पैसे-धन का क्या उपयोग कर रहे हो? इस पैसे से पाप कर्म का उपार्जन कर रहे हो या धर्म का? पुण्य का उपार्जन किया जा रहा है क्या?

आप फाइव स्टार होटलों में विवाह रचा लोगे। प्रदर्शन हो जाएगा। लोगों में बड़ा नाम हो जाएगा कि सेठ जी ने 5 स्टार होटल बुक कर लिया और 3 दिन तक वहां पर मांसाहार नहीं पकाया गया। तीन दिन का किराया कितना? (सभा से प्रतिध्वनि– लाखों रुपए)

मतलब सभा में लोग तो हैं फाइव स्टार होटल में जाने वाले। यहां पर फाइव स्टार होटल में जाने वाले लोग कौन-कौन मौजूद हैं? नहीं तो हमको क्या मालूम फाइव स्टार का किराया क्या होता है? हमने कहीं तो कुछ किया होगा तभी मालूम होगा। जितना भी हो, पांच लाख या जो भी

आप बोलें, जो भी समझ लो। जितने भी दिन के लिए किराये पर लिया। उस किराये पर होटल वाले का खर्च कितना होगा और होटल वाले का मुनाफा कितना होगा? खर्च तो क्या है, लाइट-पानी, साफ-सफाई और क्या खर्चा है। ज्यादा से ज्यादा होटल के बनाने के लिए लगे पैसे का ब्याज जोड़ दो। उसके बावजूद पैसे बचेंगे या नहीं बचेंगे? (प्रतिध्वनि– बचेंगे) उस पैसे से होटल मालिक एक और फाइव स्टार होटल की नींव डालने के लिए तैयार हो रहा है या ये पैसे किसी हॉस्पिटल में या दान पुण्य में जाने वाले हैं? एक नया फाइव स्टार होटल और वह भी एकदम मौके के स्थान पर बनाएगा। वह होटल कहां पर होगा? जोधपुर में मौके का स्थान कौन-सा है? पहले पुराना शहर मुख्य स्थान था। अब तो लोग शहर छोड़कर बाहर की ओर बस रहे हैं तो होटल वहां चाहिए। होटल कहां चाहिए? जहां पर चौड़ी सड़क हो, पार्किंग की फुल जगह हो। तब वह होटल ठीक चलेगा। बल्कि ऐसा स्थान ढूंढ़ों जहां पर कोई भी चुपचाप आकर चला जाए, कोई देखने वाला नहीं हो। ढूंढ़ने पर भी नहीं मिले, छुपकर वहां पर लुत्फ उठा सकें। अब नया होटल तैयार हो रहा है, नींव डाल रहे हैं। किसके पैसों से नया होटल तैयार हो रहा है? वहां पर प्रतिदिन कितने जीवों की घात होगी, कितने जीवों का वध होगा? होगा या नहीं? कहीं-न-कहीं हम उसमें शरीक हो रहे हैं या नहीं?

क्या अर्थ हुआ इसका?

उसने मासखमण किया तो मैं भी करूंगी। देवरानी ने मासखमण कर लिया तो जेठानी बोल रही है मैं क्यों पीछे रहूं। मैं भी कर लूं। मैं भी देखा देखी चालू कर लूं! किंतु उपवास करने पर पहले ही उपवास में चारों खाने चित हो गई। इसलिए कहते हैं देखा-देखी नहीं करनी चाहिए। जितनी अपनी शक्ति हो, उतना ही काम करें किंतु आदमी देखा-देखी किए बिना रहता नहीं है। घर में अभी कुछ भी नहीं है। कर्जा ऊपर चढ़ा हुआ है किंतु विवाह-शादी करने के लिए दिखावा तो करना पड़ेगा। उसने शादी में इतना खर्चा किया तो मैं भी इतना तो करूंगा। नहीं तो मालूम कैसे पड़ेगा कि सेठ जी हूं। दिखावा-प्रदर्शन के लिए अपना मकान गिरवी रखेगा। जमीन बेचेगा। पता नहीं क्या-क्या चीजें बेच-बेचकर पैसे इकट्ठा करेगा, क्योंकि दिखावा जरूरी है। एक बार तो प्रकाश हो जाए। भले ही झोपड़ी जलाकर प्रकाश करना पड़े, लेकिन

प्रकाश तो करना ही है। क्या झोपड़ी जलाकर प्रकाश करने वाला अपने आप को सुखी बना लेगा?

एक आदमी फाइव स्टार होटल में जा रहा है तो दूसरे ने भी फाइव स्टार होटल में आयोजन किया नहीं तो पता कैसे चलेगा कि वह आदमी एक नंबर है, दो नंबर है। जोधपुर के दस रईसों में उसका एक नाम है और मेरा 20-30 रईसों में भी नहीं आएगा। नाक और नाम के पीछे लोग भागते हैं। एक आदमी ही ऐसा प्राणी है जो नाक के पीछे भागता और नाम के पीछे रहता है कि मेरा नाम हो जाना चाहिए। ऐसे नाम से क्या मिलेगा? ऐसे नाम से लंबे समय का संताप मिलेगा। अभी उसने कर्जा ले लिया। बाद में कर्जा और ब्याज चुकाते-चुकाते ही हाथ-पांव सारे ठंडे पड़ जाएंगे। और बाणिये का ब्याज? बैंक का पैसा नहीं चुका रहा है तो हाथ ऊंचा कर लो, खत्म हुई बात। आज कितनी कंपनियाँ बैंकों से कर्जा लेकर हाथ ऊंचे करके बैठी हैं? लाइन लगी हुई है हाथ ऊंचा करने वालों की।

कहते हैं कि आदमी की साख, आब बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। बंद मुट्ठी लाख की... मेरे खयाल से आज व्यक्ति अपने जीवन की साख नहीं समझ रहा है। वर्तमान में जिसने जितनी बार हाथ ऊँचे (दिवालिया) किए, वह आदमी उतना ज्यादा ऊँचा समझा जाता है। हालत बहुत नाजुक है। लोग मुखौटा लगाकर जी रहे हैं। मुखौटा अच्छा दिखना चाहिए। कर्जा लेकर चलते हैं लेकिन भीतर कितनी हानि हो रही है। भीतर मेरी हालत क्या हो रही है? यह कभी देखा उसने अपने भीतर? भीतर की हालत वह स्वयं जान रहा है किन्तु ऊपर एकदम अप-टू-डेट दिखना चाहिए। क्या हो जाएगा ऐसा दिखाकर? क्या हो जाएगा ऐसा दिखाने से?

ऊपर सूट-बूट पहने हुए हैं। दिखावा करने के लिए और भी पता नहीं क्या-क्या करते होंगे? वस्त्र एकदम नए पहने हुए, महंगे-महंगे वस्त्र, किंतु भीतर देखे तो... क्या होगा इससे? लंबे समय का दुःख। इसके अलावा कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। इसलिए कभी-कभी कहा जाता है–

ओ पैसे वाले धनवानों! गरीबों का दुःख पहचानो

उनके भीतर कितनी आह भरी हुई है। जो बंगले बने हैं वे किससे बने हैं? जो पैसा आया, कैसे आया है? इन बातों की क्या समीक्षा है? इन बंगले को बनाने में क्या-क्या नहीं हुआ? क्या-क्या गुल नहीं खिले हैं। उसमें

कितने लोगों के पैसे मारे गये होंगे, हड़पे गये होंगे। इतना करने के बाद ऊपर से सेठ बनकर फिर रहे हैं। फिर कहे जायेंगे कि सेठ साहब हैं।

किसी के पैसे हड़पने और पैसा गबन करने से सेठ जी नहीं होंगे। ऐसे लोग सेठ जी नहीं– ठग होंगे, लुटेरे होंगे। वे सेठ हो ही नहीं सकते। सेठ उन्हें कहा गया है, जिनका आचरण अच्छा होता है। जो गरीब का पैसा गबन कर लेते हैं, वे सेठ नहीं होते। बेचारा गरीब आदमी बोल भी नहीं सकता कि हमारा पैसा खा गया। वह किससे बोले और बोले भी तो सुनेगा कौन? सेठ के सामने खड़े होने की हिम्मत हर कोई करता भी नहीं है। सेठ को बोलकर यह बताए कौन, कि वह गलत कर रहा है? बेचारा गरीब दुःखी होता है। पर उसकी आह तबाह कर देती है। भूलो मत ये गाड़ी-बंगला चार दिन की चांदनी है। यह चार दिन तक ही चमकने वाली है। हमेशा न किसी की जमीन रही है और न किसी का बंगला।

बड़े-बड़े राजाओं ने चौड़ी दीवारें बनाईं। ऊंचे-ऊंचे किले बनवाए हैं। आज वे किले, होटल में बदल रहे हैं। जहां पहले कोई परिंदा भी पंख नहीं मार सकता था, आज वहां पर होटल्स बन रहे हैं। जब उनमें इतने गुल खिल रहे हैं तो समझ लो राजाओं के इतने बड़े-बड़े किलों में क्या हो रहा होगा?

यह चलाचल है। तुम चाहो तो धन से, पैसों से, पुण्य भी कमा सकते हो, पाप भी कमा सकते हो। हमारा मन किसमें रहता है? हमारा मन पाप कमाने में रहता है या पुण्य कमाने में? बेटे-बेटियों की शादियों में इस प्रकार का आडंबर करने से क्या मिलेगा? लाखों रुपये तो डेकोरेशन में ही खर्च होते हैं। इन लाखों रुपयों से कितने लोगों को अन्न मिल जाएगा, कितने बिना पढ़ाई वाले लोगों को पढ़ने को मिलेगा, कितने लोगों को जीवन मिल सकता है? कितने गरीबों, बीमारी से मरने वालों का इलाज इन पैसों से हो सकता है? उनको दवाइयों के पैसे दे सकते हैं या नहीं? कितने लोग जीवन यापन के लिए पर्याप्त पैसा नहीं जुटा पाते हैं? उनके लिए उनके मन में कितनी जगह होती है?

एक दम्पती मेरे पास आए और कहा, गुरुदेव! हमारे शादी की 25वीं सालगिरह है। गुरुदेव, हमने निर्णय लिया है कि हम कोई आडंबर नहीं करेंगे। दिखावा नहीं करेंगे। भोजन नहीं करायेंगे। आपके दर्शन करने थे, तो दर्शन करने के लिए हम आपके पास आए हैं। हमने विचार किया है कि यथा क्रम सौ गायों की गोशाला खोलेंगे और गायों की रक्षा करेंगे। तो 25वीं सालगिरह

मनाई जाएगी क्या? मान लोगे कि उनकी 25वीं सालगिरह मन गई। उत्सव मन गया। आज इतने से शादी का उत्सव मन गया। नाम को रो रहे हो। लेकिन कितने जीवों को भोजन मिला, कितने जीवों की रक्षा हुई? पैसे का उपयोग किधर भी करो, कैसे भी करो उसके दो ही परिणाम होंगे– पाप कर्म या पुण्य कर्म। चाहे पुण्य उपार्जन कर लो, चाहे पाप का उपार्जन कर लो।

विवाह-शादी में डेकोरेशन में क्या होता है? उसमें पुण्य बंधता है या पाप? वहां मोह बढ़ाने का खेल है, दिखावे का खेल है। उससे कभी जीवन में खुशियां नहीं हो सकती हैं। अधिकांश काम अपने नाक और नाम के लिए हो रहे हैं। यह पैसा पूर्व के किसी पुण्य के कारण से आपको मिला है और आप उससे पापकर्म या पुण्य का उपार्जन कर रहे हो, यह सोचने की बात है। जब तक यह हमारी समझ में नहीं आएगा, तब तक यह खेल खेलते रहेंगे। यह खेल खेलते समय हम अपना स्वयं का ही नुकसान नहीं करते, बल्कि समाज का भी नुकसान करने वाले होते हैं। समाज भी हमारी देखा-देखी चलता है।

समाज को चलाने वाला कौन है? हम बड़ी-बड़ी बातें कर लेते हैं, उत्क्रांति ले रहे हैं और उस उत्क्रांति के पालन में भी दांव-पेंच खेल रहे हैं, खेले जा रहे हैं। दांव-पेंच कैसे खेल रहे हैं कि मैं तो खाली शादी-विवाह की उत्क्रांति कर रहा हूं, बाकी सब खुला है। क्यों दुनिया को ठग रहे हो? क्यों लोगों में गलत धारणा पैदा कर रहे हो? ऐसी बातें करके लोगों में एक प्रकार से अस्थिरता पैदा की जा रही है। नहीं लेना है, मत लो। किसी के साथ कोई जबरदस्ती नहीं है। ऐसी स्थिति में व्याख्यान में खड़े होकर क्यों प्रत्याख्यान करते है। क्यों की जा रही है। प्रत्याख्यान करके फिर गलत काम करना धोखाधड़ी का काम है। ये धोखाधड़ी का काम कभी नहीं करना। लोगों में कितने समय तक दिखावा करोगे? कब यह दिखावा करना छोड़ेंगे? यदि पासा पलट गया तब क्या होगा? एक लड़की की शादी तो अच्छे से कर ली किंतु अब दूसरी लड़की की शादी करने में घर की क्या-क्या चीजें बिकेंगी, घर के आभूषण बिकेंगे? सोच लेना कि हम जिस रास्ते पर जा रहे हैं, वह रास्ता कितने लाभ का है और कितनी हानि का है? हम किसके अनुयायी हैं उस पर विचार करो। हमारे आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. को मान-सम्मान नहीं, संयम प्रिय था। उन्होंने उसके लिए श्रमण संघ में प्राप्त मान-सम्मान को एक झटके में छोड़ दिया। जानें इसे।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री गणेशलाल जी म.सा. सादड़ी सम्मेलन में उपस्थित हुए। आचार्य श्री म.सा. के नेतृत्व (शांतिरक्षकत्व) में मुनियों ने एक संघ की स्थापना की– 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'। समय आ गया कि इस संघ का नेतृत्व करने के लिए किसी योग्य मुनि का चयन किया जाए। शाम को प्रतिक्रमण के बाद का समय बना था।

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. कहने लगे कि आज हम सभी मुनियों ने अपना परिश्रम किया और हम एक मुकाम पर पहुंचे हैं। हमने एक संघ की स्थापना की, 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ'। आज हम इसके नेतृत्व के लिए योग्य मुनि का चयन करने जा रहे हैं। इसके अनुशास्ता के रूप में मैं आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. का नाम प्रस्तावित कर रहा हूं। यह सुनकर सभा में आवाजें आने लगीं– 'हर्ष हर्ष, जय जय।' वहां पर सभी हर्ष का अनुभव कर रहे थे। सभी के चेहरे खिले हुए थे। सब इससे सहमत थे। आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ही अध्यक्षता कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि मुनिराज! आपने मुझे बिना जानकारी दिए मेरा नाम क्यों लिया? मैं तो वृद्धावस्था में हूं। मुझे बीमारी थी, अभी आपरेशन भी हुआ है। मुझे इतने विशाल संघ की सारणा, वारणा और धारणा देना वृद्धावस्था में मेरे लिए संभव नहीं है। मैं तो स्वयं भार हलका करने के लिए आया हूँ। इसलिए किसी ऐसे युवा मुनि को चुनो जो इतने विशाल संघ का संचालन कर सके। जिस भी ऐसे योग्य मुनि का नाम आप चयन करेंगे मैं उनकी आज्ञा को भगवान महावीर की आज्ञा मानकर चलूंगा। मुनियों ने आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. से कहा कि एक समुदाय के आचार्य का चयन होता है वहां भी 2-4 साधु इधर-उधर हो जाते हैं, किंतु यहां पर तो एक साथ हर्ष ध्वनि करके सभी ने सर्वानुमति से आपका चयन किया है। आचार्य श्री उससे सहमत नहीं थे। वे उसे स्वीकारने को तैयार नहीं थे। उसी दौरान दो आचार्य, आचार्य-उपाचार्यादि रूप प्रस्ताव भी आये। समय अधिक हो जाने से सभा बरखास्त कर दी गई। विषय अनिर्णीत रहा। रात्रि को अनेक मूर्धन्य संत पधारकर आचार्य श्री को सविनय आग्रह करने लगे। अन्ततोगत्वा आचार्य श्री के मौन को स्वीकृति समझ ली गई। आचार्य श्री भी उनके आग्रह को टाल नहीं पाए। प्रत्युत सर्व सत्ता संपन्न उपाचार्य पद पर प्रतिष्ठापित किए गए। आचार्य श्री ने संघ प्रवेश पत्र पर नोट लगाया कि जब तक अखण्डता रहती है तब तक संघ में रहने को बाध्य हूँ। यह नोट

इसलिए जरूरी था क्योंकि वे संयम को चाहते थे, सयंम पूर्वक समुदाय हो। सामाचारी का उच्छेद, स्वच्छंद प्रवृत्ति उन्हें स्वीकार्य नहीं था। यथा प्रसंग उन्होंने फरमाया भी कि– मुझे संयम प्रिय है, संयम के लिए कल्पपूर्वक मैं अकेला भी रहूँगा तो मुझे फर्क नहीं पड़ेगा। मुझे समुदाय की, भीड़ की आवश्यकता नहीं है। मुझे संयम की आवश्यकता है।

इसके बाद जो कुछ भी घटनाक्रम बना उसमें विवाद करने की बजाय अपने आपको वहां से अलग कर लिया गया और आचार्य श्री हुक्मीचंद जी महाराज साहब की परंपरा का संचालन करते रहे। यह उनके मान-सम्मान त्याग का, नाम के इच्छा त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण है। उस समय उनकी शारीरिक स्थिति भी उतनी अनुकूल नहीं थी। फिर भी उनकी हिम्मत दृष्टव्य थी। उनकी शारीरिक अवस्था को देखते हुए यह विचार हो रहा था कि संघ की सारी गतिविधियों का संचालन कौन करे? यह सोच श्रावक संघ चिंतित हो रहा था कि कैसे होगा, क्या होगा? कैसी स्थितियां बनेंगी? संघ ने लिखित में निवेदन किया, साधु-साध्वियों ने भी निवेदन किया कि आपने अपना काम सिद्ध कर लिया, किन्तु हमारे लिए आधार क्या हैं? हम किसके आधार पर चलेंगे? हमको गाइड करने वाला कौन रहा?

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है–

पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वसंथुया,
पसन्ना लाभइस्संति विउलं अट्ठियं सुयं॥

तदनुसार आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने वह श्रुत ज्ञान ही नहीं दिया, पूरा गणिपिटक दे दिया। साथ ही उन्होंने श्री नानालाल जी महाराज साहब को युवाचार्य बना दिया और तीर्थंकर देवों का भंडार सौंप दिया? अक्षय तृतीया के दिन ये घोषणा कर दी कि आज से संघ की सारणा, वारणा, धारणा पंडित रत्न श्री नानालाल जी म.सा. देखेंगे, वे उसको संभालेंगे। कई लोग हर्षित हुए कि गुरुदेव आपने हमको दिशा दे दी। हमको अस्थिरता से बचा लिया किंतु कुछ लोग गंभीर हो गए। कहने लगे कि ये नानालाल जी म.सा. किसी से बात भी नहीं करते हैं। श्रावकों से संपर्क नहीं रखते हैं। खाली किताबों में लगे रहते हैं। इसके अलावा उनका कोई ध्येय नहीं है। वे संघ को कैसे चलाएंगे? हमारे सामने बड़ी चुनौतियां हैं कि वे उन चुनौतियों का सामना करते हुए कैसे संघ चला पाएंगे?

उसके उत्तर में आचार्य श्री ने बहुत सुंदर जो बात कही उसका सारांश यह है कि "हीरे की कीमत जौहरी जानता है। अभी आपको यह मालूम नहीं पड़ रहा है कि मुनि नानालाल जी संघ को कैसे संभालेंगे किंतु समय पर अपने आप ज्ञात हो जाएगा।" यह ज्ञात हो गया या नहीं हो गया? जिनके भी मन में संदेह था वह संदेह दूर हो गया।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने अपने विचारों से, अपनी मति से, अपने प्रज्ञा बल से देखा कि श्री नानालाल जी म.सा. संघ की सारणा, वारणा, धारणा करने में समस्त मुनियों में निपुण हैं। मुनियों की कमी नहीं है संघ में और होनी भी नहीं चाहिए। एक नहीं 10 मुनि आचार्य बनने की योग्यता वाले हैं। होने भी चाहिए। 10 नहीं 100 मुनि होने चाहिए। हजार मुनि होने चाहिए पद की योग्यता वाले, किंतु पद के लिए उम्मीदवार किसी को नहीं होना चाहिए। किसी भी राजनैतिक पार्टी में ये दिखाई देता है कि अमुक दल, अमुक दल के उम्मीदवार खड़े हैं। योग्यता कितनी है यह बात अलग है। धर्म नीति कहती है कि सबके भीतर योग्यता का विकास होना चाहिए किंतु पद के लिए उम्मीदवार कोई नहीं होना चाहिए। उतनी क्षमता हमारे भीतर होनी चाहिए कि यदि कोई कार्य हमें भी सौंप दें तो कार्य करने में हम सक्षम हों किंतु उम्मीदवार नहीं हों। "पद हमारा प्राप्तव्य नहीं है।" मैं पद की प्राप्ति के लिए नहीं, अपनी योग्यता विकसित करने के लिए ज्ञान प्राप्त कर रहा हूं। योग्यता हमारे हर मुनि में होनी चाहिए। छोटे-से-छोटे मुनि में होनी चाहिए किंतु उम्मीदवारी किसी की नहीं होनी चाहिए। ऐसा हमारा धर्म संघ होना चाहिए कि आचार्य जिसके लिए नाम निर्देशित करें, जो निर्णय करें, चाहे वह मुनि कल का नवदीक्षित ही क्यों नहीं हो, वही हमारे लिए आधारभूत चक्षुभूत है। संघ उसके लिए भी उसी प्रकार से अपनी समर्पणा दे।

आज हम देख रहे हैं कि जैसा आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. ने कहा था वैसा आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने संघ का विकास किया है। विकास की छत्रछाया के भीतर, विकास के उस भव्य महल में हम आज सुख से, संयम की यात्रा करते हुए चल रहे हैं। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आत्मलीन होकर जी रहे हैं। इसी प्रकार हम अपने भीतर का सामर्थ्य बढ़ाते हुए, क्षमता और शक्ति बढ़ाते हुए अपनी भीतरी योग्यताओं को प्रकट करें। उन शक्तियों से हम अपने धर्म की रक्षा की तरफ आगे बढ़ेंगे, किन्तु

शक्तियों और क्षमताओं का प्रदर्शन करने नहीं जाएंगे। हमारा विकास होना चाहिए। विकास हमारा लक्ष्य हो और उस विकास की दिशा में हम गतिशील बनें और गति करते रहें।

हमारा ज्ञान बढ़े, दर्शन बढ़े, चारित्र बढ़े तो हम अपने आप को धन्य बना पायें! यदि आपको भी अच्छा लगे तो आप भी अपने जीवन को सही बनाएं और समाज के परिदृश्य को भी सही बनाने का लक्ष्य बनाएं। ऐसा करके अपने जीवन को धन्य बना सकेंगे।

25 जुलाई, 2019

8

उवसमेण हणे कोहं

"उवसमेण हणे कोहं" क्रोध को कैसे जीतें?

बहुत-सी जगहों पर हमारे यहां निषेधात्मक वचनों का प्रयोग किया गया है। जैसे 'ऐसा नहीं करना, वैसा नहीं करना।' कई बार एक प्रश्न खड़ा होता है कि तीर्थंकर देवों का उपदेश निषेधात्मक ही क्यों है? सकारात्मक क्यों नहीं है?

'हिंसा नहीं करना', 'झूठ नहीं बोलना', ये निषेधात्मक उपदेश हुए। सकारात्मक उपदेश क्या होगा? 'उवसमेण हणे कोहं' यहां पर उपशम भाव से क्रोध को जीतो, यह विधेयात्मक उपदेश है। किसी भी तत्त्व की प्ररूपणा दो प्रकार से होती है। एक विधि से, दूसरी निषेध से। विधि से भी उसका ज्ञान हो जाता है और निषेध से भी उसका ज्ञान करवाया जाता है।

'कोपं मा कुरु' क्रोध मत करो, क्रोध नहीं करना, यह निषेध वचन हुआ और सकारात्मक हुआ कि उपशम भाव से क्रोध को जीतो। इसमें क्रोध को जीतने की विधि बताई गई है। निश्चित रूप से बहुत से व्यक्ति क्रोध से परेशान हैं। वे क्रोध को जीतना चाहते भी हैं पर जीत नहीं पाते हैं। क्रोध आ गया तो कुछ बोल देते हैं। हालांकि ऐसा होने के बाद उनके मन में पश्चात्ताप होता है कि मैं क्यों बोल गया? थोड़ा धैर्य क्यों नहीं रख लिया? उनको फीलिंग होती है कि मैंने गुस्सा क्यों कर लिया? क्यों बोल दिया? पर वह फीलिंग लम्बे समय तक रहती नहीं है। पुनः जैसे ही प्रसंग उपस्थित होता है वह झट से क्रोध कर लेता है। जैसे शराबी अपने मन में संकल्प करता है कि मैं शराब नहीं पीऊंगा किंतु जैसे ही शराब की बोतल सामने आती है या वह शराब की दुकान की तरफ, ठेके की तरफ जाता है, न चाहते हुए भी उसके भीतर उसे पीने की भावना आती है। मन चाहे नहीं-नहीं, करता रहे लेकिन

उसके पैर उधर उठने लग जाते हैं। नहीं-नहीं करते हुए भी हां-हां की तरफ वह बढ़ जाता है। उसका संकल्प टिक नहीं पाता।

वैसे ही क्रोध करने वाला कभी-कभी मन में विचार करता है किंतु रोक नहीं पाता है। वह क्रोध कर लेता है फिर वही बात, वही पश्चात्ताप होता है। वही फीलिंग होती है कि मैंने क्यों क्रोध कर लिया? क्रोध करने के बाद उसे अपराध बोध होता है कि मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए था। मैंने क्यों कर लिया? किंतु उसको रोके कैसे? यह सामर्थ्य व्यक्ति अपने भीतर नहीं पा रहा है। ये उसकी समझ में नहीं आ रहा कि उसको जीतूं कैसे? रोकूं कैसे?

रोकने की बात नहीं है। यदि हमने उसके प्रवाह को रोक लिया तो रुका हुआ प्रवाह भी घातक होगा। न तो क्रोध के प्रवाह को बढ़ने देना है और न रोकना है। सवाल है फिर क्या करना? उसका उत्तर दिया गया कि उसको निष्फल करो। उसमें फल देने की शक्ति मत रहने दो। जैसे चने को बीज के रूप में बोते हैं तो बहुत सारे चने हो जाते हैं। चने को ऐसा कर दो कि उससे फल पैदा हो ही नहीं। उसकी ताकत खत्म कर दो। उसके लिए क्या करना होगा? इसके लिए चने के बीज को भून दो। यदि भून दिया तो भूंगड़ा बन जायेगा। उसके बाद उसको यदि कोई जमीन में डाल भी दे, उगाना चाहे तो क्या वह उगेगा? नहीं। अब वह फलीभूत नहीं होगा।

जैसे उस चने को हमने निष्क्रिय कर दिया वैसे ही कई जगहों पर बम रखा होने की सूचना के बाद बम निरोधक दस्ता पहुंचता है और पहुंचकर उसको निरस्त कर देता है। जैसे बम निरस्त करने की क्षमता उनमें है, जानकारी उनमें है, वैसे ही क्रोध के बम को तुम निष्फल कर दो। क्रोध की शक्ति को निष्फल कर दो ताकि न तो वह रुकी रहे और न उसका प्रवाह बहकर तुम्हें हानि पहुंचावे।

अब बड़ी बात यहां सामने आ गई कि उसको निष्क्रिय कैसे किया जाए? निष्क्रिय करने के लिए भी कुछ-न-कुछ उपाय होना चाहिए। अकबर का समय था। उसने अनेक राजाओं को अपने अधीन किया। उन राजाओं को अधीन करने के बाद उसने उनके भीतर में लड़ाकूपन की वृत्ति को निष्क्रिय कर दिया। अब बिना अकबर की इजाजत के वे लड़ नहीं सकते हैं। अकबर का संदेश मिलेगा, अकबर का आदेश मिलेगा तो ही वे कहीं युद्ध में जा सकते हैं। नहीं तो वे युद्ध नहीं कर सकेंगे। अकबर ने उनके युद्ध करने पर

रोक लगा दी। अब वे चाहें तो भी युद्ध नहीं कर सकते हैं। राजाओं के युद्ध करने की भावना को अकबर ने अपने नियंत्रण में ले लिया।

क्रोध ऐसी चीज है जिसको दूसरा कोई नियंत्रित करे तो वह नियंत्रित नहीं होता है। स्वयं को उसका नियंत्रण करना पड़ेगा। स्वयं उसका नियंत्रण कैसे करें? नियंत्रण करने के लिए सबसे पहले अपने मन में उसके लिए संकल्प होना जरूरी है।

जैसे मकान बनाने के पहले नक्शा बनाया जाता है। नक्शा स्वीकार करवाया जाता है, नगर निगम से। उसके बाद बिल्डिंग खड़ी की जाती है। उसी तरह पहले हमको नक्शा बनाना पड़ेगा। पहले क्रोध को शांत करने का नक्शा बनाना होगा कि जब भी प्रसंग उपस्थित होगा मैं क्रोध नहीं करूंगा। क्रोध नहीं करूंगा, यह तो मैंने विचार कर लिया किंतु इतने मात्र से काम होगा नहीं। मुझे यह मकान बनाना है, इतना सोच लेने मात्र से मकान नहीं बनता है। यह भी सोचना होगा कि वह कितना लंबा, कितना चौड़ा बनेगा, उसमें कहां पर रसोईघर होगा, कहां पर ड्राइंग रूम होगा, कहां पर क्या रहेगा। ये सारा प्लान, सारी प्लानिंग करनी होती है। वैसे ही क्रोध को मैं नहीं करूंगा कह भर देने से, क्रोध को नियंत्रण में नहीं किया जा सकता। इतने मात्र से क्रोध को नियंत्रित नहीं किया जा सकेगा। तो फिर क्या किया जाए? कैसे करें? उसके विषय में हमको सोचना होगा और भूतकाल से कुछ प्रेरणा लेनी होगी कि अब तक मैंने जब-जब क्रोध किया है, उससे लाभ क्या हुआ? अब तक मैंने जितनी बार क्रोध किया, उस क्रोध से हानि हुई या लाभ हुआ? ये हमें समीक्षा करनी पड़ेगी। यदि इसके पहले क्रोध से आपको हर बार हानि हुई है तो इसका मतलब है कि क्रोध से लाभ होता ही नहीं है।

एक बात और है कि "क्रोध से आप किसी व्यक्ति के मुंह को बंद कर सकते हो किंतु दिल का बदलाव उससे नहीं कर सकते। दिल के बदलाव के लिए आपको उसके दिल में घुसना पड़ेगा और क्रोध से व्यक्ति कभी उसके दिल में घुस नहीं पाएगा। उसके दिल में घुसने का एक ही रास्ता है– मैत्रीभाव।" प्रेम, वात्सल्य का एक ही मार्ग है। उसी मार्ग से आप किसी के दिल में घुस सकते हो। बातें जब बोलने लगते हैं तो कई बातें सामने आने लगती हैं। हमारे आगमों की या कई सूत्रों की शुरुआत 'सुयं मे आउसं' से हुई है।

हे आयुष्मान! गुरु, शिष्य को संबोधित कर रहे हैं। बड़ा अनुग्रह कर रहे हैं। इतना वात्सल्य से भरा हुआ यह संबोधन है, हे आयुष्मान! आयुष्मान शब्द बहुत ही मीठा है, मधुर है। हर किसी के दिल को छूने वाला है। तत्काल दिल में स्थान बनाने वाला है। यदि उस शब्द को हमने वात्सल्य के लहजे से कहा है, तो तत्काल वहां रास्ते खुल जाएंगे। दरवाजे खुल जाएंगे और आराम से आप दिल में प्रवेश कर सकते हैं।

एक बात बताऊं आपको कि प्रवेश के लिए जब तक दिल के दरवाजे को खोलते नहीं, तब तक उपदेश विशेष कारगर नहीं होता। चाहे कोई कितना भी बढ़िया उपदेश दे-दे, कितनी भी बढ़िया शिक्षा दे-दे, कितना भी बढ़िया से बढ़िया प्रवचन दे-दे किंतु हमारे दिल के दरवाजे नहीं खुले होंगे तो वह प्रवचन, वह व्याख्यान हमारे लिए विशेष कोई लाभ का नहीं होगा। 'हम श्रोता बनेंगे, (केवल सुनने वाले) उपभोक्ता नहीं बनेंगे। श्रोता सुनता है, उपभोक्ता उसका आचरण करता है।' हम श्रोता बन जाते हैं। हालांकि श्रोता बनने की भी शर्त यही है कि जीवन में उस तत्त्व को उतारें। जो प्रवचन, व्याख्यान को जीवन में उतारे, वही सच्चा श्रोता होता है, अन्यथा वह केवल द्रव्य श्रोता होता है, भाव श्रोता नहीं होता। भाव श्रोता केवल कान से नहीं सुनता, वह दिल से सुनता है। अब वही बात आ जाती है कि हमारे दिल के दरवाजे खुले रहेंगे तो ही उपदेश हमारे लिए काम का होगा। यदि नहीं खुले तो उपदेश हमारे काम का नहीं होगा।

इंद्रभूति गौतम, भगवान महावीर के पास शास्त्रार्थ करने के लिए आ रहे हैं। भगवान ने इंद्रभूति गौतम को आते हुए देखा, गौतम प्रविष्ट हुए उन्होंने उनके नाम से संबोधित किया। मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो बताया है कि यदि किसी व्यक्ति का नाम ले लो तो उसका दिल खुश हो जाता है। आपने म.सा. के दर्शन कई बार किए होंगे कभी पुनः दर्शन के लिए जाओ और वे आपको नाम से संबोधित करें तो आप बड़े खुश होंगे कि म.सा. को मेरा नाम ज्ञात है। आपने तो कई बार दर्शन किए हैं इससे म.सा. नाम जान रहे हैं, किंतु गौतम ने कितने समय के बाद दर्शन किए थे? (प्रतिध्वनि– पहली बार)

गौतम ने भगवान के दर्शन पहली बार किए थे। वह पहली बार मिल रहे हैं और भगवान संबोधित करें कि इंद्रभूति गौतम! गौतम के कान खड़े हो गए। क्या बात हो गई, ये मेरा नाम जान रहे हैं! असर पड़ेगा या नहीं पड़ेगा?

नेतृत्व कला में यह बात बताई गई है कि नेतृत्व करने वाले को अपने सभी फॉलोअर्स से रू-बरू होना चाहिए। सबके चेहरे को पहचानना चाहिए और सबके नामों को जानना चाहिए। बात कठिन है, किंतु बताई गई है। यदि ऐसा होता है तो उसका वर्चस्व बना रहता है। लोग उसको दिल में बिठाते हैं। कोई किसी के आते ही उसके नाम से, उसके गोत्र से, उसकी पहचान से बात करेगा तो आत्मीयता के द्वार खुल जाएंगे। बंद नहीं रहेंगे। ऐसा नहीं होने पर मिलने वाला सोचता है कि हमको पहचानेंगे या नहीं? पहचान भी रहे हैं या नहीं पहचान रहे हैं? ऐसी स्थिति में मन-ही-मन दूरी बनी रहती है। किंतु जैसे ही नाम लिया कि सामने वाले ने अपने दिल को खोल दिया। उसने प्रवेश की अनुमति दे दी और वो वहां पर प्रवेश पाता है।

भगवान महावीर ने नाम लिया तो गौतम स्वामी के दिल के दरवाजे खुल गए। किंतु दूसरे ही क्षण फिर उसने विचार किया कि मेरा नाम तो बहुत लोग जानते हैं। इतने में भगवान ने दूसरी बात जो कह दी कि तुम्हारे जैसा विद्वान् आत्मा के विषय में संशय करे, यह उचित नहीं है। अब तो कोई उपाय नहीं है कि रास्ता बंद कर ले, द्वार बंद करे। अब जिज्ञासा पैदा हो गई। जिज्ञासा जहां पैदा हो जाती है, वहां पर दरवाजे खुले रखने ही पड़ेंगे। दिल में प्रवेश करने की पूरी छूट देनी ही पड़ेगी अन्यथा समाधान होना संभव नहीं है।

सुयं मे आउसं! प्रेम, वात्सल्य ये दिल की चाबी है, जिससे हम सामने वाले के दिल के दरवाजे को खोल सकते हैं। आयुष्मान् बड़ा वात्सल्यपूर्ण शब्द है। वात्सल्य से दिल का ताला खुल जाता है। उसके बाद गुरु उपदेश देता है– हे आयुष्मान्! मैंने जो कुछ भगवान महावीर से सुना है, वही तुमसे कह रहा हूं। पहली बात, वात्सल्य से प्रवेश और दूसरी बात, जो मैंने भगवान से सुना है वही कह रहा हूं– निरभिमानता, यानी कोई अहंकार नहीं, कोई अभिमान नहीं। मैं इतना ज्ञानी हूं यह बात नहीं है। मैंने तो भगवंतों से जो सुना है, वही तुम्हारे सामने कह रहा हूं। मैंने गुरु भगवान से जो जाना है, वही तुम्हें बताया जा रहा है। ये निरभिमानता है। "निरभिमानता से जो बात कही जाती है, वह प्रभावी होती है जबकि अभिमानपूर्वक जो बात कही जाएगी, लोग उसे नकार देंगे।" कहेंगे कि यह बड़बोला है, इसे बोलने की आदत है। निरभिमानता मायने रखती है। हमारे गणधर देव, आर्य सुधर्मास्वामी जब जम्बू स्वामी को उनके निवेदन पर आगमों का अनुग्रह कर रहे हैं तो वे कहते हैं, हे आयुष्मान्! उन भगवान महावीर स्वामी ने अमुक अंग का, शास्त्र का

अर्थ बताया है इस प्रकार भगवान महावीर के नाम से वे उस आगम का ज्ञान देते हैं क्योंकि जो चीज जिससे प्राप्त की, उससे उसका नाम नहीं हटाना। उसका लेबल नहीं हटाना। जिस कंपनी का माल ला रहे हैं, यदि उस पर उसका नाम लिखा हुआ है, कंपनी की छाप लगी हुई है तो व्यक्ति आश्वस्त होता है कि यह नामी कंपनी की चीज है। लोग कहते हैं कि चीज नहीं बिकती, वस्तुएं नहीं बिकती, ट्रेडमार्क बिका करता है। लोग ट्रेडमार्क देखकर उस वस्तु को ग्रहण कर लेते हैं। ट्रेडमार्क देखकर इसलिए लेते हैं, क्योंकि वे उस ट्रेडमार्क के प्रति आश्वस्त हैं। वे विश्वस्त हैं कि ये ट्रेडमार्क, ये कंपनी अच्छी है। ये गड़बड़ नहीं करेगी। धोखाधड़ी नहीं करेगी। इतना विश्वास होता है और ट्रेडमार्क देखते हैं तो उस चीज को कबूल कर लेते हैं। स्वीकार कर लेते हैं।

वैसे ही आर्य सुधर्मास्वामी ने जो भगवान महावीर से सुना वही वे कहते हैं। भगवान महावीर के ट्रेडमार्क से जम्बू स्वामी को आगम का ज्ञान देते हैं और जम्बू उस आगम ज्ञान को स्वीकार करते हैं, क्योंकि कंपनी का माल है, ट्रेडमार्क का माल है। उस समय उसको बहुत अच्छी तरह से ग्रहण करते हैं, स्वीकार करते हैं।

वही बात मैं यहां पर बता रहा था कि हम दिल के दरवाजे खोलते हैं तो उसमें प्रवेश करा पाते हैं, और जब अपनी आत्मा में प्रवेश करा देते हैं तब वह प्रवेश उपयोगी होता है। 'उवसमेण हणे कोहं' उपशम भाव से क्रोध को जीतो।

एक उदाहरण दे रहा हूं जो प्रायः गुरुदेव फरमाया करते थे। एक विश्वविद्यालय में पढ़ा हुआ विद्यार्थी ग्रेजुएट था। उसकी मान्यता थी कि साधु, संन्यासी, संत राष्ट्र पर भारभूत हैं। ये कोई मायने नहीं रखते राष्ट्र के लिए। हो सकता है कि वह आज के कम्यूनिज्म के विचारों से प्रभावित हो और मानता हो कि सबको काम करना चाहिए। सबको मेहनत करनी चाहिए। किंतु कहते हैं ना, कि हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और होते हैं। हाथी के जैसे दो तरह के दांत होते हैं, दिखाने के दांत अलग हैं, खाने के दांत अलग हैं, वैसे ही एक तरफ वे कहते हैं कि सबको एक समान धरातल पर होना चाहिए किंतु क्या ऐसा कहने वाले समान धरातल पर चल रहे होते हैं? इस बात की हम अभी समीक्षा नहीं करना चाहेंगे। मूल बात पर आते हैं।

मूल बात है कि उस ग्रेजुएशन किये विद्यार्थी, पढ़े-लिखे विद्यार्थी के मन में यह भाव था कि ये साधु, संत भिक्षा मांगने वाले, राष्ट्र के लिए कलंक हैं। समाज के लिए कलंक हैं। कुछ मायने में यह बात सही भी हो सकती है, किंतु भिक्षावृत्ति और खास कर जैन साधु की भिक्षावृत्ति को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। जिस भिक्षा में दीनता हो वह कलंक हो सकता है किंतु जिस भिक्षा में दीनता नहीं, शूरवीरता होती है, सज्जनता होती है। और उनकी अपनी एक नियमावली होती है। वे उसी के तहत भिक्षा ग्रहण करते हैं। उस भिक्षा को गलत ठहराया नहीं जा सकता।

संयोग से एक दिन उसका एक महात्मा से आमना-सामना हो गया। वह विद्यार्थी उन महात्मा को बहुत सारी गालियां सुनाने लग गया। कहने लगा कि तुम राष्ट्र के लिए कलंक हो। बहुत सारी गालियां उसने थोड़े ही समय में बक दीं। किंतु मुनि अपने मस्ती में रहे। वे सुनते रहे, सुनते रहे। जब वह विद्यार्थी चुप हो गया तो मुनि ने कहा कि देवानुप्रिय! मेरी एक जिज्ञासा है, मेरा एक प्रश्न है। क्या मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे? मुझे समाधान दोगे? वह विद्यार्थी बोला कि अरे! पूछो ना, एक नहीं दस प्रश्नों का उत्तर दूंगा। उसने अपने आपको बहुत पढ़ा-लिखा बताते हुए कहा कि जो पूछना है पूछो, मुझे सब ज्ञात है। मैं भिखमंगा नहीं हूं जो इधर-उधर मांगता फिरूं।

मुनि ने कहा, बहुत अच्छी बात है, अब आप उत्तर देंगे। एक सेठ ने अपने घर की सारी संपत्ति बाहर रोड के किनारे ला कर रख दी और एलान करवा दिया कि जिसको जो चाहिए, ले जाए। सुबह से शाम तक लोग उधर से निकले किंतु कोई एक भी चीज उठाकर ले जाने वाला नहीं बना। तो मेरा प्रश्न है कि अंततोगत्वा शाम के बाद वह सारी सामग्री, सारा धन, माल किसका रहा? विद्यार्थी बोला, "अरे बेवकूफ! इतना भी नहीं मालूम। ये भी कोई प्रश्न है। जब सेठ सारी वस्तुएं अपने घर से, अपने आवास से लाया किंतु किसी ने कुछ नहीं लिया, कोई उसको ले जाने वाला नहीं बना तो वह सारी संपत्ति, सारा धन-माल, सब कुछ सेठ का ही रहेगा।"

मुनि ने कहा कि बहुत अच्छी बात है। इसी तरह तुमने अभी तक जितना भी माल मेरे सामने प्रस्तुत किया, मैं उसमें से कोई भी माल ग्रहण नहीं कर रहा हूं। अब वह किसका रहा? (प्रतिध्वनि—उसी का)

क्रोध को जीता गया या नहीं जीता गया? क्रोध को जीतना है तो सबसे पहला उपाय है कि यदि कोई गालियां बक रहा है, यदि हमें कोई बात कह रहा है तो जवाब देने से पहले उसकी पूरी बात को सुनो। सुनते रहो, सुनते रहो, सुनते रहो। आप देखना कि जब कोई कुछ कहने लगता है तो आदमी पहले ही बोलने लग जाता है कि हां-हां, मैं जानता हूं। वह सोचता है कि अब सामने वाले का मुंह बंद कर दूं। किंतु बोलकर नहीं, सुनकर मुंह बंद करना चाहो तो कर सकते हो। सुनो, सुनते जाओ, सुनते जाओ, सुनते जाओ।

राजस्थान में एक कहावत है ना कि गाळ सूं गूमड़ा थोड़ी हुवे, गाली सुनने से गूमड़े नहीं होते हैं। आप सुनो, वह बोलता रहेगा, बोलता रहेगा तो स्वतः थक जाएगा। हमने उसको पहले ही थका दिया। लेकिन आप यदि बोलने लगते तो उसकी शक्ति को और बढ़ा देते। एक कहावत है कि–

देता गाली एक है, पलट्याँ होय अनेक।
जो गाली पलटे नहीं, तो रहे एक की एक॥

वो कितना भी बोले, सामने वाला जवाब नहीं दे रहा है तो आगे विकास नहीं होगा। आगे बात बढ़ेगी नहीं। उसको वहीं खत्म हो जाना पड़ेगा। जब ये उसकी बात हो जाए तो अपन धीरे से कहेंगे कि और कुछ बोलना है? और कुछ कहना है? अब क्या कहेगा? इतने समय तक आपने धैर्य रख लिया तो क्रोध जीता जाएगा या नहीं जीता जाएगा? वह क्रोध को जीतेगा। क्रोध का असर हमें अपने भीतर में नहीं होने देना है। हम संकल्प करें कि क्रोध का असर हम नहीं होने देंगे अपने भीतर में।

सामने वाले के क्रोध के परमाणु भी हमारे भीतर को उद्वेलित करने वाले होते हैं। जैसे खांसी एक संक्रामक रोग है। एक खांसी करता है तो अन्य दस आदमियों को खांसी आने लगती है। एक आदमी को खुजली आती है तो दूसरे के भी खुजली चलने लगती है। भले ही नहीं हो रही है किंतु उसके मन में यह भाव पैदा होता है कि मेरे भीतर में खुजली आ रही है। जैसे ये एक संक्रामक बीमारी है, वैसे ही क्रोध संक्रामक बीमारी है। उसके परमाणु, उसके जर्म्स हमें उद्वेलित करने लगते हैं किंतु उसको यदि हमने शांत कर दिया, उभरने नहीं दिया, उनको प्रकट होने नहीं दिया तो वहां वह क्रोध फलीभूत नहीं हो पाएगा।

एक उदाहरण और आपके सामने प्रस्तुत करूं। एक पत्र आपके पास आया। उस पत्र में आपके खिलाफ बहुत सारी बातें लिखी हुई हैं। आप पत्र पढ़ते गए, पढ़ते गए। भाव बनते रहे, बनते रहे और उसी समय उसका उत्तर लिखने के लिए आपने लेटर हेड लिया और लेटर लिखना शुरू किया। लिखते रहे, लिखते रहे और लिखते रहे। एक पेज भरा, दो पेज भरे, तीन पेज भर गए। तीन पेज भरते-भरते थोड़ी थकान आ गई, आपने छोड़ दिया। फिर वापस मूड नहीं बना उत्तर लिखने का। एक दिन निकला, दूसरा दिन निकला, तीसरा दिन आया और आपने विचार किया कि वापस उसको पूरा कर लेते हैं। फिर तीसरे दिन जब उस पत्र को दुबारा पढ़ते हैं तो मैं जहां तक सोचता हूं, आप उस पत्र को आगे नहीं लिख पाएंगे, बल्कि पहले लिखे हुए तीन पेज भी फाड़ देने पड़ेंगे। आप उसे भी रखने के लिए तैयार नहीं होंगे। जिस समय लेटर आया और आपने पढ़ा उस समय आप उत्तेजित थे। उस समय आपको उस पत्र ने उद्वेलित कर रखा था। जो उद्वेलित भाव थे, उन्हीं भावों को आपने कागज में लिखा, लेटर हेड पर लिखा। किंतु जैसे ही 2-3 दिन निकले वो बात, वो उत्तेजना ठंडी पड़ गई। अब पत्र नहीं लिखते हैं। वह भाषा नहीं लिखी जा सकती। अब आप सोचेंगे कि ऐसा रफ पत्र! आगे वाले ने जो गलती की है वह मैं क्यों करूं? मैं जहां तक सोचता हूं आप उस पत्र को नहीं लिख पाएंगे और फाड़ देंगे, फेंक देंगे। अगर लिखना चाहें तो दूसरा पत्र भले लिखें किंतु दूसरे पत्र में पहले पत्र की अपेक्षा बहुत बड़ा बदलाव मिलेगा।

यह सब क्यों हुआ?

एक घटना मैं और बताऊं आपको! पिपलिया मंडी मंदसौर के पास आचार्य पूज्य गुरुदेव पधारे। अक्षय तृतीया का प्रसंग था। दीक्षा का प्रसंग था और चातुर्मास स्वीकृति का भी प्रसंग उसी दिन था। आचार्य पद के बाद पहली अक्षय तृतीया का कार्यक्रम था और वहां पर श्री अमरचंद जी की दीक्षा का कार्यक्रम संपन्न होना था। अक्षय तृतीया पर चातुर्मास खुलने वाला था। अनेक संघों की विनती चल रही थी। एक से बढ़कर एक तर्क प्रस्तुत किए जा रहे थे। आचार्य जैसा फरमाते थे, वही बात उन्होंने उस समय भी कही कि यदि आप सभी विनती करने वाले एकमत होकर तय कर लें तो मुझे सोचने में सुविधा होगी, कि मुझे कहां चातुर्मास करना है। बातें भले ही सभी एकता की करें किंतु तय करने की बात आ जाए तो कौन-कौन तय करने

के लिए तैयार हो जाएंगे कि चलो इस साल तुम करवा लो, अगले साल हम करवा लेंगे। सामान्यतया ऐसा होता नहीं है। सभी अपनी-अपनी बात करते हैं। विनतियों का उत्तर देते हुए आचार्य श्री ने फरमाया कि, मेरा चातुर्मास कहीं भी हो, चातुर्मास करवा लेना ही मुख्य बात नहीं है। किंतु यह ध्यान रखिए कि चातुर्मास में आपको करना क्या है? चाहे कोई आपके साथ कैसा भी बुरा बर्ताव कर दे आप 'ईंट का जवाब पत्थर से' नहीं दोगे। आप धैर्य रखोगे, शांति रखोगे तब तो संतों का सान्निध्य फायदे की बात है। अन्यथा संतों का चातुर्मास मिल भी जाए तो वह हमारे लिए लाभ की बजाए हानि करने वाला हो जाता है।

लाभ की बजाए हानि कैसे हो जाती है? लॉबी बन जाना, ग्रुप बन जाना, अमुक आगे नहीं बढ़े, अमुक व्यक्ति आगे नहीं बढ़ना चाहिए। परस्पर संघर्ष के भाव पैदा हो जाते हैं। अब तक संघर्ष नहीं था। सभी एक थे, किंतु चातुर्मास कराने के बाद हमारे भीतर संघर्ष चालू हो गया। यह कई बार हो जाता है।

क्यों हो जाता है, संघर्ष? कहीं-न-कहीं हमारे भीतर दबा हुआ क्रोध, दबा हुआ मान, दबी हुई माया, दबा हुआ लोभ काम करता है और उसका प्रैशर हमारे ऊपर आ जाता है। उस प्रैशर के दबाव से हमारे भीतर ये सारी चीजें पैदा होने लग जाती हैं और भीतर-ही-भीतर संघर्ष पैदा हो जाता है। एक-दूसरे से दूरियां बढ़ती चली जाती हैं।

बोलो ऐसे में चातुर्मास में लाभ उठाया या चातुर्मास में हमने कुछ खोया? चातुर्मास कराकर कुछ पाया या कुछ खोया? वैसा चातुर्मास कराने में क्या फायदा? दुनिया जीम-जूठकर चली जाएगी और ऊपर हमारे हाथों में बचा-खुचा रहेगा। वह भी खा पाएंगे या नहीं खा पाएंगे? लोग लाभ उठाकर ले जाएंगे। मलाई-मलाई कौन लोग खा जाएंगे और खुरचन भी हमारे लिए बचेगी या नहीं बचेगी! यह सोचने की बात है।

आचार्य श्री ने यह बात रखी कि कोई भी स्थिति आ जाए, यदि कोई आपके गाल पर चांटा भी लगा दे तो आप उसके सामने दूसरा गाल भले कर देना पर प्रतिकार नहीं करना। ऐसे समय आप यदि शांत रहोगे तो समझ लेना, आपने क्रोध को जीत लिया है। चातुर्मास उस समय रतलाम खुल गया और यथासमय प्रवेश भी हो गया। उस समय वहाँ हिंदुओं और

जैनों के बीच संघर्ष चल रहा था। हालात यह बने हुए थे कि हिन्दुओं का कोई जुलूसादि निकलता तो जैनी घरों में घुस जाते। पूज्य गुरुदेव के पुण्य प्रताप से हवा ऐसी बदली कि जो लोग जैनियों के विरोध में खड़े थे वे आचार्य पूज्य गुरुदेव के प्रवचन में अगली पंक्ति में बैठने वाले हो गए। लोग दांतों तले अंगुली दबाने लगे कि संघर्ष में आगे रहने वाले आज व्याख्यान में सबसे आगे बैठने वाले कैसे बन गए? फिर भी लोग सोचते थे कि ये यहां पर कोई हुड़दंग तो नहीं मचाएंगे? सोच में 10 बातें उलटी पहले आती हैं। इस प्रकार से सोचने वाले कई होंगे। सही तरीके से सोचने वाले बहुत कम हैं। निगेटिव बातें आदमी ज्यादा सोचते हैं। क्या खराबी कर सकते हैं, यह सोचेंगे। क्या अच्छाई कर सकते हैं, इसको कम ही सोचेंगे। ये व्यक्ति यहां पर आये हैं, तो कुछ अच्छा भी कर सकते हैं किंतु ऐसा बहुत कम सोचते हैं। यद्यपि वहाँ आपसी तनाव, संघर्ष तो कम हुआ किंतु एक घटना घट गई।

कन्हैयालाल जी बोथरा ने किसी प्रसंग से प्रेरणा दी होगी और किसी ने आकर उसी समय उन्हें चांटा जड़ दिया। जैसे ही चांटा जड़ना हुआ कि कन्हैयालाल जी के भीतर उत्तेजना जगी किंतु गुरुदेव के वचन याद आए और उन्होंने उनके सामने दूसरा गाल कर दिया। अब हाथ उठेगा? दूसरे गाल पर चांटा लगा पाएगा? दूसरा गाल आगे किया तो चांटा नहीं लगा। तब दूसरे-तीसरे लोग भी नहीं आए। उन्होंने सोचा मुझे क्या करना है, इनको जो उचित लगा उन्होंने किया। यदि कन्हैयालाल जी वापस चांटा लगा देते तो कितने लोग इकट्ठा हो जाते। किंतु उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया।

उस समय कन्हैयालाल जी ने अपने क्रोध को जीत लिया। गुरुदेव की बात को ध्यान में लिया और दूसरा गाल सामने कर दिया। लोग आए तो भी उन्होंने कहा, इनकी समझ में आया वह उन्होंने किया, अपने को कोई प्रतिकार नहीं करना चाहिए। सभी शांत हो गए। सुबह नहीं शाम, शाम नहीं सुबह 'नई बात नौ दिन और खींची-तानी तेरह दिन।' कितने दिन चलेगी वह बात। उसको जितना खींचने की कोशिश करेंगे वह बात लंबी होती चली जाएगी। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया तो बात वहीं-की-वहीं खत्म हो गई। उसने आगे विकराल रूप नहीं लिया। तूफान का रूप नहीं लिया। वह बात वहीं बंद हो गई।

बस सुनो, जवाब मत दो। सुनते जाओ, सुनते जाओ और सुनते जाओ। यदि हमारे काम की चीज नहीं है तो इधर से सुनो, उधर से निकाल दो। बात को अंदर जाने मत दो। अंदर जाएगी तो भीतर-ही-भीतर घुटेगी और कभी-न-कभी वह विस्फोट का रूप लेगी। इसलिए इस कान से सुनो उस कान से निकाल दो। ऐसे प्रसंगों पर ऐसा ही करना चाहिए। एक कान से सुना और दूसरे कान से निकाल दिया। मुझे क्या करना है? अपने कर्तव्य पथ पर हमें अडिग रहना चाहिए। जो अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहता है, वह कभी चूकता नहीं है। कैसी भी विपरीत परिस्थितियां हमारे सामने आवें, थोड़ी देर शांत रहकर, आत्मलीन रहकर सुनते रहें। कोई जवाब नहीं दिया तो क्रोध को, कषाय को शांत करने में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हो सकती है।

आज शिक्षा का युग है। पहले शायद इतना जोर नहीं दिया जाता होगा या धनवानों के बच्चों को ही पढ़ना नसीब होता होगा। शायद उसी के कारण नीतिकारों का कहना रहा होगा कि वह पिता-माता शत्रु हैं, जो अपने बालकों को शिक्षा नहीं देते। जो अपनी संतानों को संस्कारित नहीं करते। जो पढ़ाते नहीं हैं, लिखाते नहीं हैं।

यह पढ़ाना और लिखाना किसलिए? एक दिन पहले भी बात चली थी कि लोग पैसे कमाने के लिए पढ़ाई कराते हैं। पढ़ाई कराने का उद्देश्य, विद्याध्ययन कराने का उद्देश्य होना चाहिए कि वह इंसान बनाना चाहते हैं। इंसान बनेगा तो भगवान बनेगा। यदि इंसान नहीं बन पाया, केवल पैसों की मशीन बनकर रह गया तो वह एक चलती-फिरती लाश हो सकती है, जीता-जागता इनसान नहीं हो सकता।

पूर्व जन्म के संस्कार होते हैं, जिससे कुछ व्यक्ति विद्या का त्वरित अभ्यास कर लेते हैं। एक बार उनके सामने बात रखो, वे धड़ाधड़ हृदयंगम कर लेते हैं। दूसरी तरफ ऐसे विद्यार्थी भी होते हैं जिनको एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, पांच बार या कितनी बार भी कहो उन्हें समझ नहीं पड़ती है।

हमारे नीरज मुनि जी तो स्कूल गए ही नहीं। लगभग साढ़े तीन साल की उम्र से ही साधु-साध्वियों की संगत में आ गए। उन्होंने एक बार यदि शास्त्र पाठ पढ़ लिया तो विषय कंठस्थ हो जाता है। एक बार पुस्तक को देख लिया

तो पुस्तक के अंदर कौन-सी चीज कहां पर है लंबे समय तक याद रहेंगी। यह अपनी-अपनी क्षमता के बल पर है। इस संबंध में सोचें। यदि पढ़ने का, ज्ञानार्जन का अवसर किसी को मिले। पशु को यह मौका नहीं मिला। पुण्य-योग समझें कि यह अवसर मानवों को मिला है। उसमें भी भगवना की शिक्षा क्या हर किसी को प्राप्त हो जाती है?

आपने सुना होगा कि देवता भी ये कामना करते हैं, भावना भाते हैं, विचार करते हैं कि हमें यदि मनुष्य भव प्राप्त हो तो श्रावकों के कुल में जन्म मिले। जो सम्यक् दृष्टि के देव होते हैं, वे विचार करते हैं कि श्रावक कुल मिले। कदाचित् पुण्यवाणी में कमी रह गई और श्रावक का कुल नहीं मिला तो श्रावक के यहां पर काम करने वाले दास-दासियों, नौकर-चाकर के वहां पर जन्म हो जाए ताकि कभी-न-कभी श्रावक के घर आने-जाने का मौका मिलेगा और कभी तत्त्व ज्ञान की दो बात सुनने-समझने को मिलेगी।

पहले श्रावकों के घर में प्रवेश करने पर वहां गोधन मिला करता था। घर में जाने पर क्या मिलता था? घर में गायें मिलती थीं। एक जमाना था, जिसके पास जितनी अधिक गायें हैं, वह उतना अधिक धनाढ्य माना जाता था। आज गाय मिले या नहीं मिले, कुत्ता जरूर मिल सकता है। जैसे गोधन मिलता था, वैसे ही पुराने श्रावकों के वहां पर नीति की बातें हुआ करती थी। तत्त्व की बात हुआ करती थी। सत्य और ईमान की बात हुआ करती थी। नैतिकता के पाठ वहां पर रटे नहीं जाते थे। नैतिकता के पाठ स्वतः वहां पर पढ़ने में आते थे। आज श्रावकों के यहां पर कौन-सी शिक्षा मिलेगी? कौन-सी शिक्षा वहां देखने को मिलेगी?

यहां बैठने वालों में से 9 तत्त्व के नाम एकदम शृंखलाबद्ध, बिना अटके हुए, बिना रुके हुए, क्रम से कौन बोल सकता है? जो बोल सकते हैं, हाथ ऊपर कीजिए। अब हाथ ऊपर करो तो भी फंसे और नहीं करो तो भी फंसे। यह संकोच क्यों? कॉन्फिडेंस क्यों नहीं है कि मुझे 9 तत्त्व याद हैं। यह कॉन्फिडेंस क्यों नहीं है?

एक बार बड़ी सादड़ी चातुर्मास में मैंने थोकड़ों की बात कही और कहा कि जो भी अखिल भारतवर्षीय जैन साधुमार्गी संघ के ऊपरी लेवल के लोग हैं, अधिकारी, पदाधिकारी लोग हैं, उनकी 9 तत्त्व की परीक्षा ली जाएगी। उदयपुर में परीक्षा ली भी गई। उस समय सायर चंद जी छलाणी चरण स्पर्श

करने आए और बोले, गुरुदेव! ये थोकड़ा होता क्या है? मैंने कहा कि बाद में बात करेंगे। बाद में उन्हें बताया गया कि थोकड़े क्या होते हैं। उनके अंदर लगन लगी। परीक्षा के बाद उन्होंने थोकड़े सीखने शुरू किए।

आप विचार कीजिए, वे दिल्ली से जयपुर आते थे, तीन दिन, थोकड़ा पढ़ने के लिए। बीकानेर में कभी लोग मूंछें ऊंची रखा करते थे कि, पांच सौ थोकड़े कंठस्थ हैं।

अब कितने लोग हैं? एक मुहिम चालू की गई कि आचार्य श्री नानेश जन्म शताब्दी पर पांच सौ थोकड़े की परीक्षा होगी। लोग लगे हुए हैं। कौन कितना गहरा उतरेगा यह बात अलग है। बीच में एक बार बीकानेर में था तब पंजाब से मांग आई कि हम थोकड़ों का अध्ययन करना चाहते हैं। सुना है बीकानेर में कई लोग थोकड़ों की जानकारी रखते हैं। संघ वालों से कहलवाया था कि आपको सुविधा हो तो किसी को थोकड़े पढ़ाने के लिए भेज दो। अब क्या जवाब दें कि कौन जा सकता है? कौन कराने वाला है? मुश्किल हो जाती है। कठिनाई की बात हो गई कि क्या जवाब दें? सायर चंद जी तीन दिन दिल्ली से जयपुर आते। व्यापार करने के लिए नहीं, थोकड़े पढ़ने के लिए। उस रुचि ने उनको साधु बना दिया।

श्रावक में तत्त्व-ज्ञान होगा तो तत्त्व ज्ञान की बात चलती रहेगी। जैसे व्यापारी के दिमाग में व्यापार की बात चलती रहती है, वैसे ही ज्ञानी के दिमाग में ज्ञान की बात चलेगी। ज्ञान की बात चलते-चलते, विचारते-विचारते उनका झुकाव ज्ञान की तरफ ही होने लगेगा।

अब आप कहोगे कि म.सा. रहने दो। साधु बन जाएं वह बात मत बताओ। हमें तो पैसे की कमाई हो सके वह बात बता दो। ज्ञान करने से पैसा मिलेगा, कमाई होगी, बढ़िया कमाई होगी तो बता दो। 9 तत्त्व का ज्ञान कर लें तो बढ़िया कमाई होगी। वह वस्तुतः आपकी कमाई होगी। अन्य कमाई धन-दौलत तो आज है कल का भरोसा नहीं। भाई बांट लेगा। सरकार की रेड पड़ गई अथवा चोर घुस गए तो लूट लेंगे पर धर्म की पढ़ाई वह आपका और आपका धन होगा। उसे न कोई बांट सकता है न कोई हरण ही कर सकता है पर आपकी मोहब्बत ज्यादा उस पर है जो आपका साथ निभाने वाला नहीं है।

शिक्षा की उम्र के विषय में बात करें तो आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की जवाहर किरणावली में आपने पढ़ा होगा कि 7 साल तक के

बच्चों को प्रकृति के साथ रखना चाहिए। कुदरत के साथ उसको पढ़ने-बढ़ने देना चाहिए। महात्मा गांधी, आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की यदि बात करो तो उनका पक्ष मिलेगा कि 7 साल तक के बच्चे को सिलाई किए हुए वस्त्र भी नहीं पहनाने चाहिए। उसके शरीर को विकसित होने के लिए कुदरत को सौंप दो। ऐसे बच्चों को हमने देखा है कई बार, झोपड़ पट्टियों में रहने वाले बच्चे नंग-धड़ंग खड़े हैं। उन्हें कोई सर्दी नहीं लग रही है। उधर बाणियों के बच्चों की बात करें तो उनको शॉल, स्वेटर पहनाए हुए हैं– एकदम पैक। फिर भी वह बच्चा छींक रहा है, (खांस कर बताते हुए) खांस रहा है। उसे जुकाम लगा हुआ है।

क्यों हो गया ऐसा? क्योंकि कुदरत को हमने मौका नहीं दिया उसको गढ़ने का। 7 साल तक बच्चा यदि कुदरत के साथ खेल लेता है तो उसका शरीर गठीला हो जाता है और उसके भीतर इतनी क्षमता आ जाती है कि उसके शरीर में बीमारियां घर नहीं कर पाती। कभी कोई रोग पास में नहीं आता। बीमारियों को भगाने की ताकत उसके भीतर होगी। उसको किसी डॉक्टर के पास जाने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। न डॉक्टर के पास दवा लेने जाना पड़ेगा, न डॉक्टर को घर बुलाना पड़ेगा। उसका दिमाग भी इतना खुल जाएगा कि जो भी अध्ययन कराओ कर लेगा। धड़ाधड़ ज्ञान कर लेगा।

अभी बालक डेढ़-दो या ढाई वर्ष का होता है कि उसको केजी, एल. केजी में भेज देते हैं। कई लोग तो ढाई वर्ष का भी नहीं होने देते हैं। 4-6 घंटे विद्यालय में खेलकूद करते होंगे। हो सकता है आपकी सोच होगी। वैज्ञानिक ऐसा सोच रहे हों। शिक्षाविद् सोच रहे हों। आज के मनोवैज्ञानिक, आज के लोग सोच रहे हों कि ऐसा करने से ठीक होगा किंतु हकीकत में देखें तो वह कभी भी ठीक नहीं हो सकता। हम उसकी बुद्धि को कुंठित कर रहे हैं। उसकी बुद्धि का विकास हम रोक रहे हैं। इससे उसकी बुद्धि विकास नहीं कर पाएगी। 7 साल उसकी बुद्धि का विकास कुदरत करेगी, उसके बाद जो कुछ ग्रहण करेगा, धड़ाधड़ वह विद्या को हासिल करने वाला बनेगा।

हम अभी जो बातें कर रहे हैं, उन पर ध्यान देते हैं। जो सामने है उस पर विचार करेंगे तो हो सकता है कि अपने बच्चों के साथ न्याय करने में समर्थ बनें। साथ ही उनकी शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, मौलिक-शक्ति के विकास में हम सहयोगी बनेंगे।

हमारा विषय है कि उपशम भाव से क्रोध को जीतें। आज प्रयोग हो सकता है। हां या नहीं? अभी आवाज पूरी नहीं आई। क्या, पच्चक्खाण करा दें? कोई कैसा भी व्यवहार कर दे, कैसी भी गालियां दे, चाहे कुछ भी करे किंतु हम क्रोध नहीं करेंगे। चाहे चांटा लगा दे, चाहे कुछ भी करे, हम उसका प्रतिकार नहीं करेंगे। उसको जवाब नहीं देंगे। क्रोध नहीं करेंगे। सामने वाले पर गुस्सा नहीं करेंगे। यदि गुस्सा आए तो भी उसे जीतने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार अपने जीवन को धन्य बनाएंगे। बीच में कुछ भिन्न विषय आ गया पर वह भी समादरणीय व समाचरणीय है। अतः प्रसंगोपात वह बता दिया गया।

26 जुलाई, 2019

9

जस्स णत्थि ममाइयं

"से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइयं"

श्रीमद् आचारांग सूत्र के उपर्युक्त सूत्र का अर्थ है कि वह मुनि दृष्टपथ है, उसी मुनि ने मार्ग को देखा है, वही मार्ग को देखने वाला है, वही रास्ते को जानने वाला है, उसी ने राह को देखा है, जिसको मेरेपन का भाव नहीं है। जिसको कोई ममत्व नहीं है, जिसको कोई परिग्रह नहीं है। जिसमें 'यह मेरा है, यह तेरा है' कहने का कोई भाव नहीं है। वह मुनि दृष्टपथ होता है।

दृष्टपथ का अर्थ मोक्ष के रास्ते को जानने से लिया गया है, जो मोक्ष के रास्ते को देख रहा है। हम जिस रास्ते पर चलना चाहते हैं, उस रास्ते को जानना जरूरी है। यदि उसे ही नहीं देख पाएंगे, तो उस पर गति कैसे करेंगे? हम चलते हैं तो सड़क को देखकर चलते हैं। सड़क की ओर देखकर चलते हैं। किसी ड्राइवर को ड्राइविंग करनी है तो वह भी रोड को देखकर चलेगा। यदि रोड को देखकर नहीं चलेगा तो कब, किस समय एक्सीडेंट हो जाए, कोई नहीं बता सकता।

जैसे पैदल चलते हुए या ड्राइविंग करते समय जमीन को देखकर चलना होता है, सड़क को देख कर चलना होता है, वैसे ही मोक्ष की ओर गतिशील मुनि को भी उस मार्ग को देखते हुए, उसे जानना जरूरी है। यदि नहीं देख रहा है तो किधर जाएगा, किधर गति करेगा, कुछ भी पता नहीं। इसलिए कहा गया है कि उसी ने मार्ग को जाना है, जिसको मेरेपन का चश्मा नहीं लगा है। मेरेपन का चश्मा लगा रहेगा तो मार्ग नहीं दिखेगा। चश्मे में ग्लास लगा हुआ है तो हम मार्ग को देख लेते हैं। यदि इस ग्लास के स्थान पर लकड़ी लगी हुई हो तो क्या मार्ग दिखेगा? नहीं। तब मार्ग नहीं दिखेगा। मेरेपन का भाव, ममत्व का भाव मुनि के देखने में बाधक बनता है। जो मोक्ष का मार्ग हमें दिखना चाहिए, वह दिखना बंद हो जाता है। दिख नहीं पाता है।

ममत्व अवरोध पैदा करने वाला होता है। इसलिए मुनि को मेरेपन या ममत्व की बुद्धि का त्याग कर देना चाहिए। यदि उसे मंजिल पाना है तो मेरेपन का भाव, ममत्व बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। ममत्व बुद्धि परिग्रह का बहुत बड़ा अंश है। 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है। जितना मेरापन और ममत्व बुद्धि होगी, उतना ही मुनि परिग्रह में डूबा हुआ होगा।

आप देखिए भगवान ने मुनि को कितना सावधान किया है। मुनि को यह नहीं कहना चाहिए कि ये रजोहरण मेरा है। क्या नहीं कहना चाहिए? मेरा है, नहीं कहना तो क्या कहना? मुनि को कहना चाहिए कि मेरी नेश्राय में है। यह कह सकता है कि मेरी नेश्राय में है। अब इस पर विचार करो कि मेरे और यह मेरी नेश्राय में क्या फर्क पड़ता है।

मेरा और मेरी नेश्राय में फर्क पड़ रहा है? नेश्राय ट्रस्टी भाव का बोधक है। न्यास या ट्रस्ट। ट्रस्ट के पास संपत्ति है, जमीन है, बहुत सारी संपत्ति है। उसका मालिक कौन है? ट्रस्टी उसका मालिक नहीं है। ट्रस्टी केवल उसकी देखरेख करता है। ट्रस्ट भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। सामान्यतः ट्रस्टी उस ट्रस्ट की संपत्ति की देखरेख करने वाला होता है। वह उसका मालिक नहीं बन सकता है। ट्रस्टी उस संपत्ति को देखे, उसकी रक्षा करे, सुरक्षा करे। वह चौकीदार बनकर उसकी रक्षा करे। किंतु क्या वह उसका उपयोग कर सकता है? उसमें से खर्च करने का उसको अधिकार होता है! यदि उसे कोई अधिकार है तो उसमें से खर्च कर सकता है किंतु वह यह नहीं कह सकता है कि यह संपत्ति मेरी है।

संपत्ति ट्रस्ट की है। जो ट्रस्टी है उसकी नेश्राय में है। वर्तमान में ट्रस्टी की नेश्राय में है। इसका मतलब यह है कि वह ट्रस्ट उसका नहीं है। वह उसका नहीं है किंतु उसकी नेश्राय में है, वह देखरेख करने वाला है। मेरेपन का भाव मालिकाना हक जताता है। मेरेपन का भाव, ममत्व भाव मालिकाना हक जताने वाला होता है और नेश्राय के भाव में तटस्थता होती है कि मैं इसकी देखरेख कर रहा हूं किंतु मेरा नहीं है। ये भाव उसमें बना रहेगा क्योंकि मेरेपन के भाव को वहां तिरोहित करना है। मेरेपन को जागृत नहीं रखना है। जहां मेरेपन का भाव, ममत्व भाव जागृत रहेगा, वह दुःख, संताप पाता रहेगा।

ममाइयं बुद्धिं जहाय...

साफ कहा गया है कि तुम ममत्व बुद्धि को छोड़ो। ममत्व बुद्धि का त्याग करो। यदि सुख पाना चाहते हो, समाधि पाना चाहते हो तो ममत्व-

बुद्धि का त्याग करना पड़ेगा। तुम चाहो कि ममत्व बुद्धि भी रह जाए और सुख भी मिल जाए तो ऐसा नहीं हो सकता।

एक सेठ की दो पत्नियां तो फिर भी हो सकती हैं किंतु एक म्यान में दो तलवारें कभी भी रखी नहीं गई है। आज तक का इतिहास आप देखोगे कि एक म्यान में कितनी तलवारें रहती हैं? एक म्यान में एक तलवार रह सकती है– दो नहीं। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह पाती हैं, नहीं रह सकती हैं, वैसे ही सुख और ममत्व बुद्धि एक साथ नहीं रहेंगे। मुनि को वस्त्र-पात्र भी ग्रहण करना होता है किंतु वह संयम की रक्षा के लिए उनको ग्रहण करता है। इसलिए उस पर मेरेपन का भाव नहीं होना चाहिए।

यदि वस्त्र रख रहा है तो वह उस वस्त्र की रक्षा करेगा या नहीं करेगा? वस्त्र में मिट्टी लगी हुई है तो धोने का काम भी करेगा। वह ये सारी क्रियाएं कर रहा है फिर भी अंतर में भाव यही रहता है कि यह मेरा नहीं है। मेरी नेश्राय में है। अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल। अंतर में अपने आप को उससे अलग रखना, उससे अटैचमेंट नहीं होना। अटैचमेंट जहां होता है, वहां हमारे साथ ममत्व भाव बना लेता है। कहीं-न-कहीं वह हमारा स्थान घेरता है और जैसे ही वह स्थान घेरेगा हमारे भीतर संकीर्णता आएगी। संकीर्णता आएगी तो मन अपने आप छोटा हो जाएगा। इसलिए मन में मेरेपन का भाव, ममत्व बुद्धि को आगे बढ़ने ही नहीं देना चाहिए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव के जिन्होंने भी दर्शन किए हैं, उन्होंने कभी उनके मुख से यह नहीं सुना होगा कि मेरे इतने शिष्य हैं। उनके शब्द लगभग यही हुआ करते थे कि ये मेरे भाई हैं, ये मेरी बहिनें हैं। वे कितने भी साधुओं का समुदाय लेकर चले किंतु वह ममत्व बुद्धि नहीं आई। सभी साधुओं की सारणा, वारणा, धारणा करना है, सभी को सही दिशा देनी है किंतु ममत्व बुद्धि नहीं। यदि किसी दीक्षार्थी के परिवार से भी बात करनी है तो गुरुदेव का एक ही शब्द हुआ करता था कि मैं तो जड़ को देखता हूं, फल को नहीं। जिस पेड़ की जड़ मीठी होती है, उसका फल भी मीठा होता है। ये बात अलग है कि अपवाद कहीं भी हो जाते हैं।

पिपलिया मंडी में दीक्षा का कार्यक्रम संपन्न हुआ तब लसड़ावन वालों की भावना बनी कि हमारे यहां भी दीक्षा हो। पिपलिया से गांव ज्यादा दूर भी नहीं है। दीक्षा की स्वीकृति हुई। आचार्य श्री का लसड़ावन पधारना हुआ। जब

दीक्षा सम्पन्न हुई उस समय एक नया प्रसंग आया। रावटी के सुश्रावक श्री मथुरालाल जी आचार्य पूज्य गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि मेरी व मेरी पत्नी की दीक्षा लेने की भावना है। पिछले काफी समय से हम विरक्त होकर चल रहे हैं। धर्मपत्नी की भावना भी ऐसी ही है। बालक छोटे हैं किंतु उनकी हमें कोई चिंता नहीं है। उनको उनके दादा-दादी अर्थात् मेरे पिताजी और माताजी बहुत अच्छी तरह से संभाल लेंगे।

आचार्य देव ने कहा कि आपकी भावना उत्तम है। भाव भी अच्छे हैं किंतु बच्चों को पहले कभी अलग रखने का प्रसंग बना या नहीं बना? उन्होंने उत्तर दिया कि अलग रखने का तो काम नहीं पड़ा है। तब गुरुदेव ने कहा कि पहले उनको अलग रख करके देखो कि क्या स्थिति होती है? दीक्षा लेना बहुत अच्छी बात है किंतु अपने दायित्व का निर्वाह भी होना जरूरी है। आप उनको देखिए कि वो रह पाएंगे या नहीं। आपकी अनुपस्थिति में उनके आर्तध्यान की स्थिति तो नहीं बनती है। वे ठीक से रहते हैं या नहीं रहते हैं, आप अभ्यास करके देख लो। आचार्य श्री के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दीक्षा के लिए द्रव्य-क्षेत्र, काल भावादि का कितना विचार करना होता है। यह नहीं कि बस कोई दीक्षार्थी आ गया और दीक्षा की बात कर ली तो झटपट उसको दीक्षा दे दी जाए।

कभी-कभी झटपट भी दी जा सकती है। ऐसा नहीं है कि झटपट दीक्षा नहीं दे सकते। तत्काल, हाथोंहाथ भी दीक्षा दी जा सकती है किंतु कभी हाथोंहाथ नहीं दे करके लंबे समय तक नहीं दी जाती है और कभी जल्दी देने की भी स्थिति बन सकती है।

दीक्षा के लिए क्या चीज जरूरी है? दीक्षा के लिए क्या होना जरूरी है? क्या होने पर दीक्षार्थी को दीक्षा दी जा सकती है और क्या नहीं होने पर दीक्षा देने में रुकावट पैदा हो सकती है? दीक्षार्थी के लिए दो बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण होती हैं। वे दो बातें हैं "संवेग और निर्वेद।" उसके भीतर संवेग का भाव कितना गहरा है और उसके भीतर निर्वेद का भाव कितना गहरा है। संवेग और निर्वेद यदि कच्चे हैं, वैराग्य भाव यदि परिपूर्ण नहीं है तो दीक्षा नहीं हो सकती। संवेग और निर्वेद का दूसरा अर्थ वैराग्य से ले लेते हैं। वैराग्य की प्रबलता यदि है तो वह दीक्षार्थी दीक्षा के योग्य है। यदि वैराग्य की प्रबलता नहीं है तो चाहे उसने कितने भी शास्त्र और थोकड़े याद कर लिए हों किंतु अभी दीक्षा की योग्यता नहीं है। दीक्षा की योग्यता नहीं है, तो हम

दीक्षा नहीं दे सकते क्योंकि वह दीक्षा के नियमों का सही तरीके से पालन नहीं कर सकेगा। योग्यता की परख करने के बावजूद कर्मों के उदय से किस समय क्या गति बनती है, वह बात अलग है। उसके आगे तो किसी का वश नहीं चलता है। भगवान महावीर ने जमाली को, अपने जंवाई को दीक्षा दी किंतु कालान्तर में भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति को छोड़कर जमाली ने अपना अलग मत, पंथ चला दिया। यह विषय अलग है क्योंकि कर्म जिस समय प्रबलता से हमारे पर हावी होते हैं, प्रबलता से आक्रमण करते हैं, उस समय कुछ विरले लोग ही उसके आक्रमण को झेलने में समर्थ होते हैं, अन्यथा अधिकतर प्रवाह में बह जाते हैं। यह निश्चित है कि मेरेपन का भाव होगा तो कर्मों का प्रभाव हमारे पर जल्दी होगा। मेरेपन की बुद्धि होगी, ममत्व की बुद्धि होगी तो कर्मों का वहां पर जल्दी भाव हो जाएगा।

आज संजय मुनि जी बोल गए मौसम के बारे में। आज का मौसम देखें। इस मौसम में किसी ने मैले कपड़े पहने हुए हैं, उस पर मैल चढ़ा हुआ है और किसी का कपड़ा धुला हुआ है। दोनों में से किस कपड़े में लीलन ज्यादा आएगी? धुले हुए, साफ किए हुए कपड़े में लीलन ज्यादा आएगी या जिसमें मैल चढ़ा हुआ है उस कपड़े में? (प्रतिध्वनि– मैले कपड़े में)

आप लोग कह रहे हैं कि जिस कपड़े में मैल चढ़ा हुआ है। यूं ही बोल रहे हैं या कुछ अनुभव किया है? आपके पहने हुए कपड़े मैले हैं और ये कामण हवा, बरसाती हवा जब चलती है तो वह कपड़ा भारी-भारी लगेगा। उस कपड़े में सीलन आ जाएगी। साफ धुले हुए कपड़े में सीलन आने के चांस नहीं रहते हैं। हलकी-फुलकी सीलन आ भी जाए तो कपड़ा भारी नहीं लगता है। आचार्य भद्रबाहु द्वारा रचित ओघनिर्युक्ति में बताया गया है कि वर्षा का सीजन आने से पहले मुनि को अपने सारे वस्त्रों का प्रक्षालन कर लेना चाहिए। वस्त्र मैल से भरा हुआ नहीं रहे क्योंकि मैले कपड़े पर यदि पानी की बूंद लगेगी तो जल्दी सीलन आ जाएगी। बरसाती हवा चलने से लीलन-फूलन आएगी और मैले वस्त्रों में पानी की बूंद गिरेगी तो जीवों की विराधना जल्दी होगी। इसलिए उसको साफ कर लें, धो लें। वहां पर यह भी बताया गया है कि यदि वस्त्र वैसे ही साफ नहीं होता हो तो क्षार पदार्थ ग्रहण करके उनकी सफाई करें, धुलाई करें। यह कपड़ों की धुलाई शोभा के लिए नहीं, बल्कि अहिंसा के लिए है। दूसरा उस पर यदि पानी भी लगेगा तो भी जीवों की विराधना नहीं होगी। जल्दी से उसमें लीलन-फूलन पैदा नहीं होगी।

मैं यह बात इसलिए बता रहा हूं कि जैसे बरसाती हवा से मैले कपड़े में सीलन जल्दी आएगी, वैसे ही ममत्व बुद्धि होने पर उसमें कर्मों का प्रभाव जल्दी बनेगा। कर्म उस पर जल्दी हावी होंगे। जबकि जिसकी ममत्व बुद्धि नहीं है, उस पर कर्मों का प्रभाव जल्दी नहीं बनेगा।

क्यों नहीं बनेगा?

इसको ऐसे समझें। एक गारे की दीवार में किसी को खूंटी गाड़नी है। खूंटी गाड़नी है, कील नहीं। एक लोहे की कील होती है और एक लकड़ी की खूंटी होती है। गारे की दीवार में खूंटी गाड़ी जा सकती है या नहीं? (प्रतिध्वनि–गाड़ी जा सकती है) दूसरी आरसीसी की दीवार है, जिसमें लोहे की तीखी कील गाड़नी है तो वह कितनी आसानी से घुसेगी? एक कील, दो कील, तीन कीलें गाड़ते जाओ। कीलें मुड़ जाएंगी किंतु उस दीवार के भीतर नहीं घुसेंगी। मेरेपन का भाव, ममत्व बुद्धि वाले का दिल या उसके भाव गारे की दीवार के तरह हो जाते हैं, जिसमें कोई खूंटी, चाहे कितनी भी मोटी हो, भीतर घुस जाएगी किंतु आरसीसी जैसी सुदृढ़ दीवार में लोहे की तीखी कील भी जा नहीं पाएगी। आरसीसी की दीवार जैसी हमारी भी दृढ़ता होनी चाहिए। यह दृढ़ता तब होगी जब मेरेपन की बुद्धि समाप्त होगी। जहां मेरेपन की बुद्धि समाप्त होगी, वहां पर हमारे में दृढ़ता आएगी और मेरेपन का भाव जहां रहेगा वहां दिल कमजोर हो जाएगा। इसलिए ममत्व बुद्धि का त्याग मुनि को करना होता है। एक आदर्श मुनि के लिए आरसीसी जैसा मजबूत दिल होना बहुत जरूरी है।

आदर्श देखना चाहें तो नमि राजर्षि की ओर देखें। उन्हें शकेन्द्र कहते हैं कि मिथिला जल रही है। राजा ने अभी दीक्षा ली नहीं है। अभी उनका वैराग्य है। वे वैराग्य में चल रहे हैं। मतलब दीक्षा लेने वाले हैं। उस समय राजा को शकेन्द्र ने बताया कि मिथिला जल रही है। तो राजा ने कहा कि मिथिला के जलने से मेरा कुछ नहीं जल रहा है।

सूरत में पर्युषण पर्व चल रहा था। भाई सुमित जी राठौड़ खड़े हो गए कि मुझे दीक्षा लेनी है। मैंने कहा, अभी रुको! व्याख्यान के बाद में बात करते हैं लेकिन वे बोले कि नहीं, मुझे अभी दीक्षा लेनी है। बड़ी मुश्किल से उनको बैठाया गया। उन्हें समझाया कि व्याख्यान के बाद में बात करते हैं, जल्दी क्या है? श्रीचंद जी महाराज की दीक्षा हुई। उसके बाद में सोचा कि आजकल आपके बैंकों का कुछ हिसाब आदि रहता है। हालांकि उनके पुत्रों

ने कह दिया दोष लगे तो वैसा हमें कुछ नहीं करना है। फिर ये तो इतनी बड़ी इंडस्ट्री चला रहे हैं, इसलिए पता नहीं क्या कुछ करना होगा। उन्होंने कहा मैंने सब कर लिया है, कुछ भी करना नहीं है। उनका कहना था कि बस हो ही जाए! समय क्यों चूकें। कहने लगे, बस मुझे दीक्षा लेनी है। तो मैंने कहा कि आप इतनी जल्दबाजी क्यों कर रहे हो? किंतु वे नहीं माने, कहा कि मुझे तो अभी की अभी दीक्षा लेनी है। मेरा भी एक ही उत्तर था बातचीत करेंगे, किंतु वे तो बस इसी बात पर टिके थे कि दीक्षा लेनी है। मैंने कहा कि दीक्षा के लिए कुछ सामान की जरूरत पड़ती है, वस्त्र वगैरह चाहिए होते हैं, कुछ तैयारी करनी होती है, उसके बिना दीक्षा नहीं होती। वे इन सब चीजों को लाने में जुट गए। ये सब लाने में दोपहर हो गई। मैंने कहा कि आपकी व्यापारिक-पारिवारिक स्थितियों को कैसे सॉल्व करेंगे, तो वे बोले कि सब सेट कर लिया है। सब मोबाइल में सेट कर दिया है। दीक्षा लेने के बाद पत्नी भाई सा को सब बता देगी। मैंने कहा किंतु यदि कोई सरकारी कागजी कार्यवाही होगी, उसका क्या होगा? जो होगा हो जाएगा। कहने का मतलब उन्हें दीक्षा की त्वरा थी। इसे वैराग्य का प्रबल भाव कह सकते हैं। स्पष्ट है जब ममत्व बुद्धि का त्याग हो जाएगा, तब वैराग्य जीवन में दृढ़ता आ जाएगी। किन्तु मेरेपन का भाव बना रहता है तो कभी पत्नी को देखकर, कभी पिता को, कभी भाइयों को और कभी माता को देखकर मन कमजोर होगा।

ऐसी भावनाएं मुनि जीवन में कभी नहीं आनी चाहिए। मुनि जीवन में ऐसी सोच भी नहीं आनी चाहिए। क्योंकि अब तुम्हारा उनसे संबंध नहीं रहा। मुनि ने इस संबंध को तोड़ दिया और जब संबंध तोड़ दिया तो तुम्हारा रह क्या गया? मुनि ने कह दिया कि यह मेरा नहीं है। ये माता-पिता, ये परिवार, संबंधी, रिश्ते-नाते ये सब मेरे नहीं हैं और मैं उनका नहीं हूं। वही भावना– "जाए सद्धाए निक्खंतो, तमेव अणुपालिया, विजहित्तु विसोत्तियं।" जिस श्रद्धा से, जिस भावना से मुनि जीवन स्वीकार किया जाता है, अंत तक उसी भावना से मुनि जीवन की आराधना करनी चाहिए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री मथुरालाल जी को स्पष्ट कहते हैं कि आप पहले कुछ समय तक बच्चों को अलग रखकर देख लो। उन्होंने कहा कि आपका चातुर्मास यहां रतलाम में है और मैं रावटी से आता हूं जो रतलाम से थोड़ी ही दूर है। मैं यदि रतलाम में रुकूंगा तो ममत्व के जिस परीक्षण के लिए मैं घर से अलग रहना चाहता हूं, वह कार्य संपूर्ण नहीं हो पाएगा।

इसलिए यदि आप फरमाएं तो मैं गंगाशहर-भीनासर में बहुश्रुत श्री समरथमल जी म.सा. के चातुर्मास में उनकी सेवा में रहकर ज्ञान-ध्यान करूं। आचार्य श्री ने कहा कि आप कहीं भी रहें, रुकावट नहीं है। किंतु परीक्षण कर लेना चाहिए ताकि बच्चों की स्थिति स्पष्ट हो जाए कि आपकी अनुपस्थिति में वे दादा-दादी के पास आराम से रह लेते हैं या नहीं।

ऐसे एक नहीं, अनेक प्रसंग आचार्य पूज्य गुरुदेव के हैं। वस्तुतः मुनि जीवन यदि लेना है तो बड़ी मस्ती का जीवन होना चाहिए। बाद में मुड़कर देखने की नौबत नहीं आनी चाहिए कि पीछे क्या हो रहा है? नो टेंशन, अटेंशन। अब मुझे कोई टेंशन नहीं है।

श्री हुलासमुनि जी म.सा. दीक्षा से पूर्व गंगाशहर-भीनासर में लगभग 20 वर्षों तक धर्म स्थान में रहकर धर्म ज्ञान करते रहे। सामायिक पौषध करना, पहले सिर्फ भोजन के लिए घर जाते। बाद में भोजन-पानी भी वहीं आ जाता। भोजन-पानी के लिए भी घर नहीं जाना, फिर भी जो मजा, जो आनंद संयम में था, वह उस अवस्था में नहीं था। उनके लड़के की भावना बनी और उन्हें ज्ञात हुआ कि राजेंद्र की भावना बन गई है। उनको लगा कि राजू दीक्षा ले और मैं बैठा रह जाऊं! क्या करना चाहिए? दीक्षा लेनी या क्या करना? (प्रतिध्वनि– दीक्षा) किसको दीक्षा लेनी है? वे दीक्षित हुए 65 वर्ष की उम्र में। 20 वर्षों तक स्थानक में रहे वह आनन्द नहीं आया। क्योंकि किसी-न-किसी का आना-जाना बना रहता था। कभी भोजन लेकर भाई-बहन आते और कहते कि घर में ये हो गया, वो हो गया। ये समाचार विह्वल बना देने वाले होते। वे मन में धीरज रखते किंतु दीक्षा लेने के बाद जो आनन्द आया वह आनन्द उस समय नहीं आया। यह तो कोई ले तो मालूम पड़े।

मैं कहना चाहूंगा कि कोई उस आनन्द का अनुभव करके देखना चाहे तो देख ले। अनुभव करके देखें तो मालूम पड़ेगा कि वस्तुतः क्या स्थिति होती है। लेकिन एक बात ध्यान में रखना! साधु जीवन में रमेंगे तो आनन्द आएगा। यदि साधु जीवन में नहीं रमे और मेरेपन की बुद्धि रह गई, पोते के प्रति, दोहिते के प्रति मोह रह गया तो उसमें वह आनन्द नहीं आएगा। आनन्द किसने सोख लिया? मोह ने।

अभी शिविर लगा है। कौन-सा शिविर लगा हुआ है? सकारात्मक कार सेवा शिविर। जो काम हाथ से कर लिया वही साथ में जाने वाला है। 'हाथे

ते ज साथे'। अभी कौन-सा वर्ष चल रहा है? आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी का जन्म शताब्दी वर्ष। 'अनन्य महोत्सव।' अनन्य महोत्सव चल रहा है। यहां बोर्ड लगा हुआ देखा था। अब कहीं दूसरी जगह लगा दिया होगा। अक्षर छोटे-छोटे होंगे। अब आप बड़े अक्षरों का बोर्ड बनाकर मत ले आना कि महाराज ने कहा था कि अक्षर छोटे हैं, हमने बड़े अक्षरों का बोर्ड बना दिया। मैंने इसके लिए नहीं बोला है। अनन्य महोत्सव के लिए भी लोग अलग-अलग विचार करते हैं। हमारा भी कुछ-न-कुछ योग जुड़ना चाहिए। यदि हम अपना योग देने के लिए कुछ करना चाहते हैं कि हमें भी आचार्य देव के प्रति भावांजलि अर्पित करनी है, श्रद्धांजलि देनी है। हमें भी कुछ अर्घ्य अर्पित करना है तो हमें न धन, न सोना, न चांदी चाहिए। न कोई आभूषण चाहिए, न पैसे चाहिए। न कोई डेबिट कार्ड या क्रेडिट कार्ड चाहिए।

सकारात्मक कार सेवा में जितने बिन्दु संकलन करके लिखे हुए हैं, सारे साधुओं के नहीं हैं, युवा संघ ने संकलन किया है। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहे कि आचार्य श्री के जन्म शताब्दी समारोह, अनन्य महोत्सव में हमको कुछ भी करने का मौका नहीं मिला। संघ के विकास के लिए, इसको आगे बढ़ाने के लिए, आचार्य पूज्य गुरुदेव ने कितनी मेहनत की होगी। आज हम जो ज्ञान वृद्धि, धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा का रूप देख रहे हैं तो कहीं-न-कहीं हमारे आचार्य देव का श्रम हमारे साथ जुड़ा हुआ है। इस ज्ञान के विकास में, श्रद्धा में उनकी कहीं-न-कहीं मेहनत और परिश्रम रहा हुआ है। उसके बदले में हम क्या अर्पण कर सकते हैं? हमारे सिर पर किसी का करोड़ रुपये का ऋण है, यदि हम 5-25 देंगे तो भावांजलि होगी या नहीं? शबरी के बेर जूठे जरूर थे, किन्तु उसके पीछे मनोभाव था कि मैं कुछ अर्पण करूँ। वैसे ही सकारात्मक कार सेवा के पीछे ये उद्देश्य है कि कोई भी भक्त यह नहीं कह सके कि मैं अछूता रह गया। मैं अनन्य महोत्सव में कुछ भी नहीं कर सका। ऐसा कहने की नौबत नहीं आवे, इसलिए कोई भी कार्य जरूर करें। जरूरी नहीं कि 100 कार्य लेवें या 50 कार्य करें। हां, कम-से-कम एक काम अवश्य करना चाहिए। जो कार्य करें उसे कम-से-कम 5 लोगों से करवाएं भी।

उदाहरण के रूप में नवकार मंत्र, सिखाना। नवकार मंत्र एक सामान्य बात है। ऐसे पांच लोग जिन्हें अभी नवकार मंत्र नहीं आता है, उन्हें नवकार मंत्र सीखाएंगे। क्या साल भर में नहीं सीखा सकते? यदि आपने यह थोड़ा-सा काम किया तो ये धर्म के विकास के लिए सहयोगी होगा या नहीं होगा?

इससे धर्म की प्रभावना होगी या नहीं? यदि 5 लोगों को गुटका खाना छुड़ा दिया, 5 लोगों को शराब पीना छुड़ा दिया, 5 लोगों को मांस खाना या मांस विक्रय नहीं करने का त्याग करा दिया तो बोलो धर्म की प्रभावना होगी या नहीं होगी? इससे आपके मन में प्रसन्नता होगी या नहीं होगी कि अनन्य महोत्सव पर मैंने भी एक छोटा-सा काम किया है।

एक बहुत बड़ी बिल्डिंग बनती है। थोड़ी देर के लिए हम सोच लें कि आरसीसी से खड़ी नहीं करके ईंटों से बनाई जाती है तो उस बिल्डिंग में कितनी ईंटें लगेंगी? बहुत सारी ईंटें लगेंगी। जितना बड़ा मकान होगा या जितनी बड़ी बिल्डिंग होगी, उसकी लंबाई और चौड़ाई के आधार पर ईंटें लगेंगी। हम पूरा मकान न खड़ा कर पायें लेकिन एक ईंट भी वहां लगाने में समर्थ हुए तो एक ईंट की सहभागिता हमारी हुई कि नहीं। अनन्य महोत्सव में भी एक ईंट हमारी होनी चाहिए। अनन्य महोत्सव रूप महल यदि खड़ा होने वाला है तो महल में अधिक नहीं तो कम-से-कम एक ईंट हमारी होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? अनन्य महोत्सव में एक ईंट हमारी होनी ही चाहिए।

आवाज नहीं आ रही इस व्याख्यान सभा से। बात समझ में नहीं आ रही है क्या? (प्रतिध्वनि– आ रही है।) अच्छा समझ में आई है तो बताओ क्या समझ में आई है? सुराणा जी! कुछ-न-कुछ योगदान देना है। कम-से-कम पांच लोगों को नवकार सिखाना है। पांच से ज्यादा को कराओ तो कोई दिक्कत नहीं है किंतु कम-से-कम पांच तो होने ही चाहिए। न्यूनतम संख्या पांच होनी चाहिए। कोई भी कार्य हाथ में लें। जैसे यदि कोई कहीं पूजा कर रहा है तो उसको दीया-बत्ती नहीं करने की सलाह दें, अगरबत्ती नहीं करने की सलाह दें। उसको बताएं कि इससे असंख्य जीवों की हिंसा होती है। कुछ नहीं तो कम-से-कम पांच लोगों को व्याख्यान में लाकर बिठाएंगे। एक दिन में कम-से-कम पांच लोगों को सामायिक कराएंगे।

यह काम हो सकता है? बोलो! क्या नहीं हो सकता? एक दिन 5 व्यक्तियों को प्रतिक्रमण में लाएंगे। कार सेवा में प्रतिक्रमण करवा दिया। कार सेवा में एक काम करवा दिया। हम सकारात्मक रहेंगे। सकारात्मक कार-सेवा का शिविर हो गया। अब क्या चालू होने वाला है? अब चालू होने वाला है– 'आदर्श श्रावक के बढ़ते कदम।' इसका अर्थ क्या होता है? गुलाब जी! आप बताओ आदर्श श्रावक के बढ़ते कदम का अर्थ क्या है? (गुलाब जी–

श्रावक की आदर्श क्रियाएँ) आप जो भी बोल रहे हो उसमें कॉन्फिडेंस रहना चाहिए। कॉन्फिडेंस से बोली हुई बात और आवाज अलग होती है। आप कहीं पर भी जाओ किसी शिविर या सम्मेलन में जाओ यदि आपको बोलने का मौका मिल जाए तो कॉन्फिडेंस से बोलो। आदर्श श्रावक के बढ़ते कदम का अर्थ है, पहले आदर्श की बात करें। आदर्श क्या? जो दूसरों के लिए प्रेरणादायी होता है। उसको कहते हैं– आदर्श।

दर्पण में मुंह देखते ही होंगे? दर्पण को भी आदर्श कहा जाता है। आदर्श वह, जिससे हमको प्रेरणा मिले। उसी प्रकार ऐसे श्रावक जिसकी क्रिया, जिसकी बोली, जिसका रहन-सहन, सारा-का-सारा हमको प्रेरणा प्रदान करने वाला होना चाहिए। ऐसे आदर्श श्रावक की दिशा में कदम कैसे बढ़ें? इसके लिए शिविर की बात कही गई है। आदर्श श्रावक कौन है? उपासक दशांग सूत्र में 10 श्रावक का वर्णन किया गया है। आनंद श्रावक, कामदेव श्रावक आदि आदर्श श्रावक रहे हैं। उनके विषय में बताया गया है कि वे मेढ़ीभूत थे, आधारभूत थे। अनेक लोग उन पर आश्रित थे। कोई भी काम है तो आनंद श्रावक से पूछ लो। आनंद श्रावक सही राय देंगे। कोई लाग-लपेट नहीं, कोई मेरापन और तेरापन की बात नहीं और तो और इतना विश्वास एक शत्रु को भी होना चाहिए। श्रावक पर इतना विश्वास एक शत्रु को भी होना चाहिए कि मैं जाकर उन श्रावक से कुछ भी पूछूं तो वह सही-सही ही बताएगा।

आप महाभारत की ओर देखो। महाभारत में दुर्योधन किससे जाकर पूछ रहे हैं कि कौरवों की विजय कैसे हो सकती है? किससे पूछा? धर्मराज से जाकर पूछता है। धर्मराज एक पार्टी है और दुर्योधन की एक पार्टी है। एक पक्ष है और एक विपक्ष है। धर्मराज से वह पूछता है कि कौरवों की जीत कैसे हो सकती है? कौरवों की विजय का मतलब? (प्रतिध्वनि– पाण्डवों की हार) आज कोई पूछे तो लोग क्या करेंगे? सोचेंगे कि उसको ऐसा झांसा दो कि यह याद करता रहे, जिंदगी-भर। लेकिन धर्मराज ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने सही बात ही बताई कि कौरव कैसे विजय पा सकते हैं। धर्मराज ने क्या बताया था? आप क्या बताओगे? कुवडा जी! आप अगर मंत्री पद पर होते और आपसे कोई बात पूछ ले तो आप बता सकते हो क्या? सही-सही बताने पर पोस्ट चली जाएगी। पोस्ट चली जाए जिस बात से, तो क्या उस बात को बता सकते हो? नहीं बतायेंगे ना! ध्यान रखें, पोस्ट आई है और चली जाएगी, किंतु श्रावक पद रहना बहुत जरूरी है। मंत्री, अध्यक्ष पद

आज है कल पता नहीं, रहेगा या नहीं। किंतु श्रावक आज हैं और आगे भी रहेंगे। इन पोस्टों के पीछे श्रावकत्व चला गया तो क्या वह वापस मिलेगा?

जो-जो रातें निकल गईं, 'जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियत्तई' उसके पीछे हम भागेंगे क्या? हमने श्रावकत्व खो दिया तो क्या मिलेगा हाथ में? क्या मिलेगा, क्या रहेगा? बहुत बार देखते हैं कि पदों के पीछे आदमी पागल हो रहा है। क्या मिलेगा? सब कुछ हाथ से निकलने पर हाथ में क्या रहेगा? केले के पेड़ पर से छिलके ही उतारते रहोगे, सारे छिलके उतार दिए तो क्या रहेगा? प्याज के छिलके उतारते जाओ, उतारते जाओ। जब सारे छिलके उतर जाएंगे तो क्या निकला? कुछ नहीं। आदमी को लगता है कि मेरी पोस्ट होनी चाहिए, मुझे पोस्ट मिलनी चाहिए।

क्या श्रावक से बढ़कर पोस्ट होती है कोई? उससे बढ़कर एक पोस्ट होती है। वो होती है 'मुनि की पोस्ट।' किसको चाहिए मुनि की पोस्ट?

हे प्रभु! मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊं अणगार।
छोड़ के सारे पाप अठार, मैं भी बन जाऊं अणगार॥

कैसे लगा बोलना? दिल की कली खुली या नहीं खुली? पूनमचंद जी बांठिया! कुछ रस की चासनी चढ़ी या नहीं चढ़ी। चासनी कितने तार की चढ़ी? चासनी के बिना क्या है? शक्कर को घोलकर पीने से क्या मतलब, चासनी होनी चाहिए। कितने तार की चासनी आई? एक बार फिर–

हे प्रभु! मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊं अणगार

सारे पापों को छोड़कर मैं अणगार बन जाऊं, आहा! एक पाप ही कितना भार दे देता है फिर सारे पाप छूट जाते हैं, तब तो बात ही कुछ अलग होती है।

जिस समय हम सुख में जी रहे होते होंगे, घड़ी तेज चलती है। यानी घड़ी में समय बहुत जल्दी बीतता है तो इसका मतलब है कि हम सुख में जी रहे हैं। सुख में समय जल्दी बीतेगा। दुःख में समय जल्दी नहीं बीतता है। दुःख के समय हम कहते हैं कि ओहो! आज की रात इतनी लंबी हो गई। पसीना-पसीना हो गया, गर्मी से नींद आयी। रात 14 घंटे या 16 घंटे की कितनी लंबी हो गई? नींद नहीं आती है तो बार-बार घड़ी देखते हैं। साढ़े बारह बज रहे हैं, थोड़े समय बाद फिर घड़ी देखी एक बजा है। दो बजा है। फिर बोलते हैं आज रात इतनी लंबी कैसे हो गई? घड़ी तो अपने समय से ही चलती है।

कुछ भी हो घड़ी आगे-पीछे हो सकती है, किंतु सूर्योदय अपने समय पर ही होता है। वह आगे-पीछे होता है क्या? वह किसी से घूस लेकर रुकता है क्या? ऐसा होता है क्या कि घूस मिल गई तो 2-4 घंटे बाद में उदित हो जाऊंगा। हम कुछ भी कर लें, किंतु सूर्य अपने समय पर ही उदय होगा और समय पर ही अस्त होगा।

अर्जुन ने एक शपथ ली थी। उसने एक प्रतिज्ञा की थी कि आज सूर्यास्त के पहले जयद्रथ का वध करूंगा, नहीं तो मैं चिता पर चढ़ जाऊंगा। उस समय कृष्ण वासुदेव ने अर्जुन से कहा, "यह देख सूर्यास्त हो रहा है।" यह सुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने से वह चिता पर चढ़ जाता है। तब वासुदेव अर्जुन से कहते हैं कि तुम अपना धनुष-बाण पीछे किसलिए छोड़कर जा रहे हो, इसको साथ लेकर जाओ। अर्जुन नीचे उतरकर धनुष-बाण साथ ले लेता है। इधर जैसे ही अग्नि जलने वाली होती है, जयद्रथ को कुछ लोग बताते हैं कि तुम्हारा दुश्मन अर्जुन चिता पर चढ़ रहा है और अग्नि लगने ही वाली है। तुम उसको मरते हुए तो देख लो कम-से-कम। जैसे ही जयद्रथ देखने के लिए जाता है अर्जुन चिता पर चढ़े हुए ही तीर चलाकर जयद्रथ का वध कर देता है। इस तरह सूर्यास्त से पहले ही अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। सूर्य अपने समय पर ही उदय-अस्त होता है। वैसे ही समय अपने वेग से चलता है किन्तु हमारा यह अनुभव होता है कि सुख में समय जल्दी बीतता है और दुःख का समय कठिनाइयों से और बहुत मुश्किल से बीतता है।

अभी चौमासे के कितने दिन बीत गए? मुझे क्या पता कितने दिन बीत गए? मैं तो अपनी साधना में हूं। हमें क्या करना कितने दिन बीत गए? अब यह देखना है कि अब कितने दिन बाकी रह गए हैं, बाकी रहे उनको देखो। जो बीत गया है वह अब वापस आने वाला नहीं है। जो समय रह गया है उसमें क्या करना है? जो रह गया है उसकी तरफ देखो। अगर उस ओर नहीं देखा और यह देखते रहे कि इतना समय बीत गया तो यह बचा समय भी बीत जाएगा। यह समय भी निकल जाएगा। चौमासे के 10 दिन निकल गए। दो दिन पहले यहां आए तो बारह दिन बीत गए।

क्षण-क्षण बीत रहा नर भव तो...।

जैसे चौमासा बीत रहा है, वैसे ही मनुष्य जीवन भी बीत रहा है। मनुष्य जीवन का अभी तक कितना समय निकल गया? अरे! कितना जीवन

निकल गया, यह तो बताओ? कितना मनुष्य जीवन बाकी रह गया है? जितना बाकी रह गया है, उतने में हम बहुत कुछ कर सकते हैं। या नहीं कर सकते हैं? जो जीवन बाकी रह गया है, उसका लाभ उठा सकते हैं या नहीं उठा सकते हैं? जो बीत गया उसका रोना रोते रहने से कुछ नहीं होगा। जो हाथ से चला गया है, उसके बारे में रोने से कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है। जितना समय बाकी रह गया उसमें हम बहुत कुछ कर सकते हैं। जो बीत गया है उस पर रोने से क्या होगा? रोने से क्या मतलब है?

'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय'

बीता हुए की नहीं आगे की सुध ले लो। जो बचा है, उसका लाभ क्या लेना है, उसका उपयोग क्या करना है! अनुभव में यह बात आती है कि सुख में समय जल्दी बीतता है।

अन्य बातों पर आगे विचार कर लेंगे किंतु आदर्श श्रावक पर अभी विचार कर लेते हैं। आदर्श श्रावक के भीतर ऐसा आदर्श आना चाहिए कि दूसरे लोग भी उनके पीछे चलने के लिए तैयार हों। उसकी देखा-देखी करने के लिए तैयार हों। हम सही मार्ग पर चलेंगे तो हमारा उद्धार होगा। एक आदमी गलत मार्ग को अपना लेता है तो उसके पीछे और लोग भी चलते जाते हैं। इसलिए श्रावक को एक भी कदम गलत रास्ते पर नहीं डालना चाहिए। एक भी कदम भगवान के विपरीत नहीं जाना चाहिए। जो श्रावक का नियम है, उस नियम के अनुसार हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिए।

लताएं सदा ऊपर की ओर उठती हैं। बीज अकुंरित होने के बाद पौधा हमेशा ऊपर की तरफ बढ़ता है। ऐसे ही श्रावकों का लक्ष्य रहता है कि सदा विकास यात्रा करते रहेंगे और विकास यात्रा में 5वें गुणस्थान से बढ़कर ऊपर का गुणस्थान प्राप्त करने की तैयारी करें। आदर्श श्रावक की ओर कदम बढ़ायेंगे तो अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

27 जुलाई, 2019

10

न सिया तोत्त-गवेसए

एक छोटा सा सूत्र है– 'न सिया तोत्त-गवेसए' बहुत छोटा-सा सूत्र है यह। इसमें कितने अक्षर आए हैं? नौ अक्षर आए। केवल नौ अक्षरों में कितनी गहरी बात भर दी कि किसी के दोषों को मत देखो। किसी की गलतियों को मत देखो।

यदि यह सूत्र जीवन का आधार बन जाए, इस एक सूत्र का भाव हमारे जीवन में आ जाए, जीवन में उतर जाए तो जीवन खुशहाल बनेगा या कष्टकारी बनेगा? (प्रतिध्वनि– खुशहाल) एक बात स्पष्ट है कि आदमी खुशहाल जीवन जीना चाहता है। वह सदाबहार जिंदगी जीना चाहता है किंतु यदि वैसा कार्य नहीं करता है तो फिर कैसे जीएगा? आदमी को पहले उसके अनुरूप कार्य तो करना पड़ेगा। भगवान की आज्ञा पर चलने से उसे सुख मिलेगा। यदि वह भगवान की आज्ञा के विपरीत चलेगा, अनाज्ञा में चलने लगेगा, फिर वह चाहे कि उसे सुख मिले तो सुख नहीं मिलेगा।

जेल में रहने वाला एक व्यक्ति यदि बहुत अच्छे आचरण में ढल जाता है तो उसको मिली हुई सजा में कटौती हो सकती है। यदि वहां रहकर भी वह बुरे कार्य करे तो क्या वह सोच सकता है कि मेरी सजा कम हो जाएगी? वैसे ही एक कैदी की भांति हम अपने कार्य पर विचार करें, ध्यान दें कि हम खुशहाल और आनन्द की जिंदगी जीना चाहते हैं। तो हमारे कार्य कैसे हैं, हम क्या कर रहे हैं? हम देखें कि दूसरों की गलतियों को देखने में हमारा ज्यादा समय जा रहा है या हम अपने दोषों को देखने में ज्यादा समय लगाते हैं? अपने दोषों को देखने वाला व्यक्ति कल्याण पथ पर आगे बढ़ेगा।

दूसरों के दोषों को देखकर कोई सिद्ध बनना चाहे तो नहीं बनेगा। कोई भगवान बनना चाहे तो भगवान नहीं बनेगा। "दूसरों के दोषों को तब देखते

हैं, जब आप स्वयं के अहंकार को जिंदा रखना चाहते हैं। जब व्यक्ति का अहंकार जिंदा रहना चाहता है तो उसे दूसरों के दोषों को देखना ही पड़ेगा।" नहीं तो उसका जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। क्रोध को, अहंकार को जिंदा रखना चाहेंगे तो दूसरों के दोषों को देखना ही पड़ेगा। बिना दूसरों के दोषों को देखे, हम अपने अहंकार को सजीव रख सकें, यह बहुत कठिन है।

छोटी-छोटी घटनाएं भी बहुत बड़ा बोध दे जाती हैं, यदि लेने वाला उससे बहुत ज्यादा बोध ले तो। एक छोटी-सी घटना इन्दौर में हुई। आचार्य पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास में वाचनी का समय चल रहा था। वाचनी के दौरान पानी पिलाने के लिए एक संत पात्रा लेकर आए। उन्होंने आचार्य देव के हाथों में उसे देने का प्रयत्न किया। आचार्य श्री ने भी हाथ बढ़ाया लेकिन पातरी तक उनका हाथ नहीं पहुंचा और उनके पकड़ने से पहले ही पातरी मुनि के हाथ से छूट गई। छूटी इसलिए कि गुरुदेव के हाथ में पातरी आई नहीं थी और मुनि को ऐसा लगा कि गुरुदेव ने पकड़ ली है। नीचे गिरने से वहां पानी फैल गया और नीचे पड़े कुछ कागज गीले हो गए। यह देख वे सकते में आ गये। मुनि के भीतर भय कहो या कुछ और, उनसे कुछ बोला नहीं जा सका। इतने में गुरुदेव फरमाते हैं कि मेरी गलती है। मैं पातरी को पकड़ नहीं पाया।

क्या फरमाया? यहां दूसरी बात भी कही जा सकती थी। इसका मौका था या नहीं था? अवसर था या नहीं था? दूसरी बात कही जा सकती है कि तुमने ध्यान नहीं रखा, कम-से-कम पकड़ने तो देते। दूसरे को दोष दिया जा सकता था। दोष देने की गुंजाइश थी या नहीं? किंतु जहां नीयत आत्मदर्शन की होती है, वहां पर दोष दर्शन गौण हो जाता है। वह दूसरों के दोषों को देख नहीं पाएगा। देखता ही नहीं है। आत्मदर्शन के क्षणों में दूसरों के दोष नहीं दिखने चाहिए। भले ही कितने दोष हों, नजर नहीं आएंगे। वह आत्मा में देख रहा है, तो दूसरों के दोष कैसे दिखेंगे। वह सामने की अलमारी में देख रहा है तो पीछे क्या हो रहा है, कैसे देख पाएगा! वह नहीं देख पाएगा क्योंकि उसके देखने का रूल अलग है। उसके देखने की दिशा अलग है। इसलिए आत्मदर्शन बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज है। इसके आने पर बहुत सारी चीजें अपने आप ही समाहित हो जाती हैं। बहुत सारी समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाता है।

आचार्य देव की वाणी गूंजते ही मुनि कुछ बोल नहीं पाया। वह समझ ही नहीं पा रहा है कि मैं क्या बोलूं। आचार्य देव ने उसको अभय कर दिया।

ये बात देखने-सुनने में छोटी-सी लग रही है, सामान्य लग रही है किंतु सामान्य-सी बात भी बहुत बड़ी है।

एक छोटी-सी घटना है। एक घर में प्लेट गिरने की आवाज आई। उस समय बेटा और बाप डाइनिंग टेबल पर बैठे चाय पी रहे होंगे। बैठे समय बिता रहे होंगे। पिताजी ने बेटे से कहा– लगता है कि कोई प्लेट गिरी। इस पर बेटा बोला कि मां के हाथ से गिरी होगी। बेटा क्या बोला? उसको कैसे मालूम पड़ गया कि मां के हाथ से छूटी है। पिता ने पूछा, तूने कैसे जाना? कैसे जाना बेटे ने? यदि आपको ही पिता को जवाब देना पड़े तो क्या दोगे? बहू के हाथ से प्लेट गिरी या फूटी होती तो (प्रतिध्वनि– एक आवाज और आती) सास के हाथ से गिरने-फूटने पर किसे अधिकार है कि वह बोले। सास समर्थ है। समर्थ से गलती हो जाए तो उसे कौन दोष दे? हो सकता है आज हालत बदल गए हों। बहू के हाथ से छूटने पर सास न बोल पाए क्योंकि रहना उसे उसी के साथ है। सास हो या बहू दोनों को समझना चाहिए कि छोटी-छोटी बातों को कभी तूल न दें। इसका मतलब यह नहीं है कि जो चले जैसा चले चलने दिया जाए। सुधार-संशोधन होना जरूरी है, पर सुधार प्रतिक्रिया से नहीं होगा। सोचें हम सुधारने का प्रयत्न करते हैं या जिससे गलती हुई है उसे टोंचने का, सुनाने का लक्ष्य रहता है। अधिकांशतः व्यक्ति को लगता है कि यह मौका है अभी सुनाना चाहिए। किंतु ध्यान रखिए वह समय प्रतिक्रिया करने का या सुनाने का नहीं है। वह समय सांत्वना का है। हमदर्दी का है। आप सुधारना चाहते हैं तो उस समय अपने किसी भी एक्शन से उसे ऐसा भावित न होने दें कि आप उस क्रिया से खिन्न या दुःखी हुए हैं।

जरा सोचें! प्लेट चाहे किसी के हाथ से फूटी, अब कुछ बोलने से फायदा क्या होगा? कुछ बोलने से क्या फायदा होने वाला है? प्लेट तो टूट गई, उसके पीछे कुछ बोलकर किसी के दिल को तोड़ने का प्रयत्न क्यों करना? प्लेट मूल्यवान है या दिल? प्लेट टूट गई तो कोई बात नहीं। किसी के दिल को मत तोड़ो।

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चिटकाय।
तोड़े से फिर जुड़े नहीं, जुड़े गांठ पड़ जाय॥

शिक्षा देना बुरा नहीं है। शिक्षा देना अच्छी बात है किंतु समय पर दी जानी चाहिए। कोई भी वस्तु, कोई भी चीज समय पर होती है तो उसका

महत्त्व होता है। वर्षा भी समय पर होती है तो कारगर होती है। समय पर होती है तो कुछ उत्पादन होता है। बहुत कुछ पैदावार हो जाती है। बेमौसम की वर्षा भी हानिकारक होती है। वह वर्षा हानि देने वाली हो जाती है। इसलिए समय पर जो काम होता है वह बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। शिक्षा देना बुरा नहीं है। माता-पिता, बुजुर्ग यदि शिक्षित नहीं करेंगे तो बच्चों में संस्कार आएंगे कहां से? गुरु यदि शिष्यों को संस्कार नहीं देंगे, शिक्षा नहीं देंगे तो संस्कार आएंगे कहां से? जन्म से ही उसमें संस्कार नहीं आया करते हैं। बहुत से संस्कार पिछले जन्म के भी आते हैं, किंतु उन संस्कार को फलने के लिए निमित्त की भी आवश्यकता होती है। यदि निमित्त नहीं मिला हो तो वे फलेंगे कैसे? निमित्त की जरूरत भी रहती है।

पानी बरसने के लिए क्या-क्या हेतु होने जरूरी होते हैं? यदि ठंडी हवा चलती रहेगी तो जल्दी से पानी नहीं बरसेगा और ऊमस होगी तो पानी बरसने में जल्दी सहायता मिलेगी। पानी बरसने से पहले ऊमस होती है। ऊमस होती है या नहीं? ऊमस होने का मतलब है कि पानी बरसेगा और ठंडी हवा चलेगी तो बादलों को बिखेर देगी। वह बरसने नहीं देगी। जैसे पानी बरसने के पहले होने वाली ऊमस बोध करा जाती है कि पानी बरसने वाला है, वैसे ही शिक्षा समय पर दी जानी चाहिए। कौन-सी शिक्षा कब देनी चाहिए और शिक्षा लेने वाला पात्र कैसा है? इसका भी ध्यान रखा जाता है।

अलग-अलग प्रकार के पात्र होते हैं। एक पीतल का पात्र होता है। उसमें यदि बढ़िया चक्की जैसा जमा हुआ दही भी रखा जाएगा तो वह दही थोड़ी देर के बाद खाने लायक नहीं रहेगा। बातें समझ में आ रही हैं या नहीं आ रही हैं? आजकल पीतल और कांसे के बरतन नहीं रहे होंगे? आजकल घरों में लोहे, स्टील के बरतन मिलते हैं। बाकी, दूसरे बरतन कम मिलते हैं। एक कटोरा आ जाता है कांसे का विवाह के समय दहेज में। किसी को दूध पिलाना है तो पहले कटोरे का इस्तेमाल किया जाता था। उसकी भी मात्रा बहुत कम हो गई। चाय बनाकर उसको कप में पीया जाता है। आजकल ज्यादातर बरतन स्टील आदि के हो गए हैं। न कांसे के बरतन हैं, न पीतल के। पीतल के बरतन में दही जैसी कोई चीज रह जाती है, तो वह विकृत हो जाता है। किसी और बरतन में रखने पर उसे बार-बार बदलना नहीं पड़ेगा। पीतल के बरतन में भी दही रखा जा सकता है किंतु उसे कली करना पड़ेगा। कली करके आप जितनी देर चाहें, दो घंटे नहीं, चार घंटे तक रख सकते हैं।

वह खराब नहीं होगा। वैसे ही किसी के दिल में हमको शिक्षा देना है तो पहले उसकी कली करो। क्या समझे? पहले उसकी कली करो ताकि उसमें शिक्षा रह सके।

"सुयं मे आउसं"

हे आयुष्मान्! पहले उसके कलेजे को ठंडा कर दो। फ्रीज कर दो। कलेजे को इतना कोमल बना दो कि वह आपकी शिक्षा को तहेदिल से स्वीकार करे। पहले उसको कोमल शब्दों का प्रयोग करके संबोधन करना चाहिए।

गुरुदेव हम लोगों को शिक्षा देते हुए यह फरमाया करते थे कि किसी को भी कुछ कहना है तो पहले उसकी अच्छाइयों को भी उसके सामने कहो। उससे कहो कि दूसरे साधुओं की अपेक्षा तुम्हारे में यतना का या अमुक गुण अच्छा है। तुम बहुत अच्छी तरह से, सावधानी रखते हो। अपनी अच्छाइयों की बात सुनकर हर किसी का दिल पुलकित हो जाता है। साथ ही उसको कहेंगे कि ये सारी चीजें अच्छी हैं किंतु तुम एक बात में सुधार करने का प्रयत्न करो। तुमको भी महसूस तो होता होगा कि सोने की थाल में तांबे की मेख अच्छी नहीं लगती। तुम्हारी उस शिक्षा को वह स्वीकार करेगा। स्वीकार करेगा या नहीं करेगा? गुरुदेव का शिक्षा देने का तरीका बड़ा महत्त्वपूर्ण था। व्यक्ति के दिल में बात उतार देने की कला थी उनके अंदर। यह कला दूसरों का दोष देखने से नहीं होगी। न ही किसी को सुनाने की विचारधारा से होगी। इस कला का विकास होता है गुणदर्शन से।

यदि गुरु, आचार्य समय पर शिष्यों को शिक्षित नहीं करेंगे, उनको समय पर नहीं सीखाएंगे, कर्तव्य का बोध–सारणा–वारणा नहीं होगी तो वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर पायेंगे। उनको वहां पर भी अपने दायित्व का निर्वाह करना होता है! पर वे देखते हैं कि कौन व्यक्ति किस प्रकार से समझने वाला है।

मारवाड़ में कहावत है, आप लोगों ने सुनी होगी कि 'गुड़ दिया माने वीनै जहर क्यों देणो', अर्थात् मीठी औषधि से काम चल जाए तो कड़वी औषधि देने की आवश्यकता नहीं है। मीठी औषधि से काम नहीं चलता है तो फिर कड़वी औषधि भी देने की जरूरत पड़ती है।

आगमकारों ने बताया है कि आचार्य कभी अनुकूल शब्द से शिक्षा देते हैं और कभी प्रतिलोम शब्दों से भी शिक्षा देते हैं। जो दिल को जोड़ने वाली

हो, दिल को भाने वाली होती है– ऐसी भाषा में, माधुर्य से, कोमलता से दी गई शिक्षा अनुकूल शिक्षा होती है और थोड़े रूखेपन, कड़ेपन से दी गई शिक्षा प्रतिलोम कहलाती है। किसको कौन-सी शिक्षा दी जानी चाहिए, इसका उस समय के द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव को देखकर ही अंतर किया जा सकता है।

जब मैं बृहत्कल्प भाष्य पढ़ रहा था तो एक बहुत महत्त्वपूर्ण, बड़ी मनोवैज्ञानिक घटना सामने आई कि एक मुनि गृहस्थ के घर से वस्त्र लेकर आए। किसी ने निवेदन किया कि भगवन! वस्त्र की जरूरत हो तो मेरे घर में स्वाभाविक उपलब्ध हैं। मुनि निवेदन स्वीकार करके वह वस्त्र लाया। मुनि की मर्यादा है कि वह वस्त्र आदि जो भी वस्तु ग्रहण करता है उसे गुरु के सान्निध्य में, आचार्य के चरणों में प्रस्तुत करे। वह गृहस्थ को कहकर लाए कि ये वस्त्र काम में आए तो लिए जाएंगे। यदि काम नहीं लगा तो आपका वस्त्र वापस आपको दे देंगे। वह लेकर आचार्य के पास गया और बताया कि अमुक भाई के घर में स्वाभाविक पड़ा था, मैं लेकर आ गया। आचार्य श्री ने किसी साधु के वस्त्र फटे देखकर मुनि से पूछा कि तुम्हें वस्त्र की जरूरत है क्या? क्या तुम्हें यह वस्त्र पहनना है? मुनि ने कहा कि गुरुदेव! जो आपकी आज्ञा, जैसा आप कहें। गुरु ने वह वस्त्र उन मुनि को दे दिया। जब वह वस्त्र लाने वाले मुनि को नहीं दिया गया तो उसके मन में थोड़ा आक्रोश हुआ। उसके मन में थोड़ी झुंझलाहट पैदा हो गई कि वस्त्र मैं लाया, मुझे वस्त्र की जरूरत भी थी और मेरे को पूछा भी नहीं। पूछते और मुझे वस्त्र रखने के लिए कहते तो मैं क्यों नहीं रखता! मेरी तो सारसंभाल गुरुदेव ने कभी भी ली नहीं। दूसरे पर ही दृष्टि रहती है। दूसरों पर दृष्टि बहुत जल्दी चली जाती है और वह क्लेश करने के लिए उतारू हो गया।

आप विचार कर रहे होंगे कि साधु जीवन में क्लेश? अभी सिद्ध नहीं बन गए हैं, अरिहंत नहीं बन गए हैं। अभी आपके घर से इतनी यात्रा ही तो की और किया क्या? अभी तो बहुत कुछ करना है। वह क्लेश नहीं जोड़े, वह क्लेश छूटे। उसी के लिए ये प्रयत्न चालू हैं। किंतु किसी-किसी संत-महात्मा के मन में भी कभी कोई बात घर कर जाए, मन में आ जाए तो मन विचलित हो जाता है। फिर उसके भीतर बवाल खड़ा हो जाता है। वह मुनि क्लेश करने लगा। उस विषय में आगे भाष्यकार भाष्य में कहते हैं कि आचार्य ने उस मुनि को वह वस्त्र दिलवा दिया एवं वस्त्र देकर उसे कहा– "महात्मा! इस प्रकार क्लेश उचित नहीं। अब तुम्हारा हमारे साथ निर्वाह होने वाला नहीं।" ऐसा

कहते हुए उसके साथ संबंध-विच्छेद कर दिया। उसको संघ से अलग कर दिया। ऐसा होने के बाद उसके मन में विचार आया कि यह तो बहुत बुरा हुआ। वह पुनः गुरुदेव के पास आता है और गुरु महाराज से क्षमा याचना करता है। कहता है, गुरुदेव! मेरे से गलती हो गई। उस समय गुरुदेव उसको कड़ेपन के साथ कठोर रूप में शिक्षा देते हैं कि मुनि! ये कपड़ा कोई महत्त्व की बात नहीं है। ये कितने समय तक चलेगा? 4 महीने, 6 महीने, 8 महीने, एक साल। एक कपड़ा कितने समय तक, कितने दिन चलेगा? किन्तु क्लेश जन्मों तक हमारी आत्मा को काला बनाएगा। जब तक उसकी आलोचना प्रतिक्रमण नहीं हो जाएगा, तब तक वह क्लेश हमारी आत्मा को सताता रहेगा।

गुरुदेव कहते हैं कि धन, वैभव, परिवार सब छोड़कर जब हम आए हैं, बहुत कुछ छोड़कर आये हैं फिर एक वस्त्र के पीछे यदि अपना ममत्व जुड़ जाएगा तो यह विचार करने की बात है। हमें जैसा वस्त्र मिल जाए उपयोग में लेना है। हमें अपने अंगों की रक्षा, अपनी लज्जा को ही ढकना है तो अच्छे वस्त्र लपेटें या मोटे वस्त्र लपेटें या पतले वस्त्र लपेटें। क्या शरीर पर अच्छा लग रहा है इसलिए पहनना है? या लज्जा ढकनी है? यदि साधु लज्जा पर विजय प्राप्त कर ले और वस्त्र के बिना भी रह सके तो वह विशिष्ट प्रतिज्ञा धारण करके विचरण कर सकता था। वह जिनकल्प आदिरूप प्रतिज्ञा होती है। यदि लज्जा पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता है तो एक चोल-पट्टा, एक ओघा, रजोहरण और मुंह-पत्ती तीन वस्त्र रख सकता है। यदि इतना समर्थ नहीं है तो पछेवड़ी भी रख सकता है। अनिवार्य नहीं है कि पछेवड़ी उनको रखना पड़े ही। स्थविरकल्पी मुनियों को लज्जा ढकने के लिए वस्त्र धारण करने की बात कही गई है। शोभा के लिए वस्त्र धारण करने की बात नहीं की। 'मैं यह चादर पहनता हूं, यह चादर शोभा दे रही है या नहीं?' ऐसा वह विचार नहीं करे क्योंकि शोभा के लिए साधु को वस्त्र धारण करना नहीं कल्पता है। शोभा के लिए साधु को कपड़े धोना, कपड़ों को चमकाना नहीं कल्पता है। शोभा के लिए कार्य करना नहीं कल्पता है। शरीर को सुंदर दिखाने के लिए वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

यहां तक बताया है कि साधु को आहार करने से पहले भी कलाई तक ही हाथ धोने चाहिए ताकि हाथ में कोई अशुचि पदार्थ लगा हो तो साफ हो जाए। उनको चमकाने का काम नहीं है। हमारी दृष्टि इस पर रहनी चाहिए कि मैं जो कार्य कर रहा हूं उसे दिखाने के लिए, शोभा के लिए नहीं कर रहा

हूं। शोभा और विभूषा के लिए मुनि को कहा गया, कि उसे दर्पण में मुंह भी नहीं देखना। अगर दर्पण में देखेगा और मुंह पर कुछ दाग वगैरह होंगे तो मुनि को लगेगा, अरे! शरीर पर या मुंह पर यह क्या हो गया है? इसको साफ कर लेता हूं। अगर मुनि मोह में लग गया तो शरीर के प्रति ममत्व पैदा हो सकता है। देखेगा तो मन उस ओर जाएगा। इसलिए देखना ही नहीं। कोई कहे कि क्या फर्क पड़ रहा है दर्पण में मुंह देख लिया तो? फर्क तो बहुत पड़ता है। वह अपने मूल ध्येय से हट जाएगा या दूर हो सकता है। इसलिए शोभा में मन को नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि शोभा का भाव जहां आ जाता है, वहां आत्मदर्शन गौण हो जाता है। दूसरों के दोष देखना और शरीर को सजाने का काम करना आत्मदर्शन में बाधक है। अतः शरीर को सजाने की बात नहीं होनी चाहिए। यह भी एक प्रकार का दोष है। इस दोष से भी बचकर रहना चाहिए। मैं बता रहा था कि आचार्य देव इस प्रकार से शिक्षा फरमाते और मुनि को ग्रहण भी करवा देते। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात और यह थी उसके दिल को चोट भी नहीं पहुंचती और वह शिक्षा ग्रहण कर लेता।

एक बार आचार्य देव ने शिक्षा देते हुए फरमाया कि माता चाहती है कि संतान को घी खिलाऊं। वह कहता है कि मैं नहीं खाता घी। वह घी नहीं खा पा रहा है। मां ने विचार किया और हलवा बना दिया। उसी घी का हलवा बना दिया। अब बच्चा खा लेगा या नहीं? घी उसके शरीर में पहुंचा या नहीं? उसके शरीर में पहुंचना था घी किंतु हलवे के साथ आटा और शक्कर के साथ घी भी पहुंच गया या नहीं? वैसे ही शिक्षा को इस प्रकार से हलवा बनाकर परोसो कि मनोज्ञ भाव से ग्रहण कर ले।

हमारा उद्देश्य सामने वाले को टोकने का है उसको सुधारने का? (प्रतिध्वनि– सुधारने का उद्देश्य है) यदि टोकने का है तो कहेंगे एक बार नहीं दो बार नहीं, तीन बार नहीं कितनी बार कह दिया, अक्ल ही नहीं है। बल्कि उसको कुछ-न-कुछ सुना दो, बोल दो। ऐसा करने पर जरूरी नहीं कि वह आपकी बात को स्वीकार कर ले। उसके भीतर विद्रोह की भावना भी पैदा हो सकती है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, वह बोलना शुरू कर देगा। इसलिए पहले ही सावधानी से बात करें। हमारा काम है सामने वाले के सुधार का, तो सुधार कैसे हो सकता है, इसको ध्यान रखते हुए उस तक बात को पहुंचाना है। पहुंचाने के कई तरीके हैं। हम सही ढंग से यदि बात पहुंचा सके तो उसमें सुधार की बात आएगी। हमें पहुँचाने का तरीका ढूंढ़ना है कि

वह ग्रहण हो सके। बताया जाता है कि कहानी में लपेट दो। कहानी से अच्छी तरह से ग्रहण हो जाएगा। चूंकि कहानी सुनने में अच्छी लगती है, इसलिए अच्छी तरह से ग्रहण हो जाती है।

साधु की क्रिया कैसी होनी चाहिए। इसे यदि किसी को समझाना है तो एक संत का जीवन दर्शन उनके समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। उससे दर्शाया जा सकता है कि मुनिचर्या कैसी होती है। कवि आनन्दघन जी के शब्दों में कहें तो 'किरिया संवर सार रे'। यानी संत की क्रिया संवर प्रधान होनी चाहिए। कर्म बंधाने वाली क्रिया नहीं होनी चाहिए। साधु भी खड़ा रहता है, उठता है, बैठता है, सोता है, खाता है, पीता है। दूसरे जीव इन क्रियाओं को करते हुए जहां कर्म बंध करते हैं, वहां मुनि कर्म बंध को रोकने वाला होता है।

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सुवे।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई॥

यतना से सारे कार्य करना। एक यतना से, सारा पासा पलट गया। यतना से सिस्टम सारा चेंज हो गया। चलना दो पैरों से ही है, लेकिन अब देखकर चलना है। वह अब पाप कर्म का बंध नहीं कर रहा है।

'आदर्श श्रावक के बढ़ते चरण' शिविर शुरू हो गया। कितने दिन का शिविर है? (प्रतिध्वनि–पांच दिन का) अभी दो दिन निकले हैं यानी अभी समय है हमारे पास। प्रश्न आप से किया गया था कि आदर्श श्रावक कैसा होना चाहिए? उसमें भी यतना की प्रमुखता होगी। क्यों प्रमुखता होगी? साधु के तो यतना होगी ही। श्रावक के क्रियाकलापों में भी यतना की प्रधानता क्यों होनी चाहिए? क्योंकि श्रावक का मन भी साधु बनने की तैयारी में रहता है। श्रावक का दूसरा मनोरथ है (सभा से प्रतिध्वनि–वह दिन धन्य होगा जब मैं पांच महाव्रत धारण कर अणगार जीवन स्वीकार करूंगा) बोल तो रहे हैं, पर कब? पता नहीं। आपकी चाह, आपकी राह किस दिशा में होनी चाहिए। बाजार में बहुत ही बढ़िया चीज आई है, सेल लगी है। बढ़िया-बढ़िया कपड़े डिस्काउंट पर मिल रहे हैं। लेने का मन होता है या नहीं? होता है। सस्ते में मिल रहा है, ले लो। लेने का तो मन है किंतु उसके लिए पास में पैसे अथवा पूंजी होनी चाहिए। पास में उतना पैसा नहीं हो तो क्या करेंगे? एक हजार रुपये की चीज सेल में आठ सौ रुपये में दे रहा है तो आठ सौ रुपये की पूंजी तो हमारे पास होनी चाहिए। उतनी पूंजी नहीं होगी तो कैसे कोई लेगा?

चाह तो है कि वह चीज खरीदें। वह चीज पसंद तो है किंतु उतनी पूंजी नहीं है, उतना पैसा नहीं है तो कैसे खरीदेंगे? हमारा यहां लक्ष्य तो यही है कि साधु बनें। हमारा लक्ष्य क्या है? कि साधु बनूं....।

वो दिन धन होसी, जद बणसूं मैं अणगार
वो दिन धन होसी....

यदि कहीं किसी कोने में भावना हो कि साधु बनना है तो बोलना। अगर भावना नहीं है तो नहीं बोलना है। सामायिक में दोष नहीं लगाना है।

वो दिन धन होसी, जद बणसूं मैं अणगार
वो दिन धन होसी....

आवाज तेज हो गई, पहले से फर्क पड़ गया। इसका मतलब है कि भावना कुलांचे भर रही है। वस्तुतः श्रावक की भावना यदि साधु बनने की नहीं है तो श्रावक का स्तर कमजोर है। श्रावक के मन में होना चाहिए आज का आज साधु बन जाऊं। मैं आज ही साधु बन जाऊं? क्या होना चाहिए? बस बनना ही है, आज नहीं अभी। कई लोग बोलते हैं मन तो है पर बन नहीं पा रहा हूं। ये मन की कमजोरी है। परिस्थितियों के कारण से निकल नहीं पा रहे हैं। किंतु मन करेगा कि निकलूं? मन क्या करेगा? (शब्दों पर जोर देते हुए) निकलूं। मन वैसा ही होना चाहिए। क्या ऐसा मन है हमारा? ऐसा मन तब होता है, जब जीवन में यतना हो। केवल सामायिक और पौषध में नहीं, आत्म प्रदेशों में भी यतना रहेगी तो उसकी यतना होगी या नहीं होगी? यतना का ध्यान रखेगा या नहीं रखेगा? खाली सामायिक और पौषध में ही यतना का ध्यान नहीं रहेगा। अन्य क्षणों में भी रहेगा।

एक आदमी की बात सुनी मैंने। हालांकि ये व्यावहारिकता से जुड़ती नहीं है। बात सुनी कि एक आदमी ने अपनी गाड़ी के पहियों के आगे दो पूंजनियां बांध दीं। उससे क्या होगा? उससे यतना होगी क्या? गाड़ी से यात्रा नहीं होगी, ये बहुत कम चांस हैं और गाड़ी से चलते हुए विराधना नहीं हो यह भी बहुत कम चांस है। अर्थ क्रिया करना श्रावक के लिए मना नहीं है। अर्थ-क्रिया प्रयोजन है। प्रयोजन के कारण वह कर रहा है। उसके लिए उसका हेतु है, प्रयोजन। किंतु निष्प्रयोजन नहीं। आमोद-प्रमोद हिंसा को बढ़ावा देता है।

संत दर्शन के लिए पांच अभिगम की बात आयी है– सचित्त का त्याग, अचित्त का विवेक, उत्तरासन धारण, दृष्टिवंदन और मन की एकाग्रता।

उपासना करने का यह रूप बताया है। यदि पहले के चार बिंदु का हम ध्यान रखते हैं तो पांचवां बिंदु, पर्युपासना को सही तरीके से संपन्न किया जा सकता है। मृगावती भगवान महावीर के चरणों में बैठी है। न तो भगवान महावीर कुछ बोल रहे हैं और न ही मृगावती कुछ बोल रही है। मृगावती भगवान महावीर में लीन हो गई। वैसी लवलीनता हमारी भी बन जानी चाहिए।

कौन आया, कौन गया, मुझे कोई मतलब नहीं है। बस, मैं तो संतों की पर्युपासना में बैठा हूं और पर्युपासना में इतना लीन होता है कि संत के पास बैठे हुए उनकी शांतता को, समाधि को पी रहे होते हैं। उन्हीं में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार लीन होकर की गई पर्युपासना, पर्युपासना होती है। हम संत सेवा में बैठते हैं और कहते हैं कि म.सा. उसने यह कर दिया, उसने वह कर दिया। यह कौन-सी पर्युपासना हुई? क्या हुई? पर्युपासना इसे नहीं कहा गया है। यह पर-वंचना हो सकती है।

हम लीन हो जाएं, मेरी कोई शिकायत नहीं है, मेरी कोई प्रतिक्रिया नहीं है। उससे आपके जीवन में कुछ-न-कुछ निखरेगा। कुछ-न-कुछ आएगा अन्यथा आए राम, गए राम होने से कुछ मिलने वाला नहीं है।

पांच अभिगमों का पालन करते हुए जंबू कुमार पहुंचे और उन्हें सुधर्मास्वामी के दर्शन हुए। देखा, उनके चेहरे से अमृत टपक रहा था, चेहरे से तेज टपक रहा था। इस प्रकार से दर्शन उन्होंने किए और उनमें लीन हो गए, बैठ गए। उपदेश चला, उपदेश को भी सुना।

आचार्य सुधर्मास्वामी के मुख से अमृत टपक रहा है, अमृत की वर्षा हो रही है। अमृत की वर्षा हो तो मनुष्य की क्या दशा होगी? जहां अमृत की वर्षा हो, वहां मनुष्य के भीतर क्या स्थिति होगी, हम समझ सकते हैं। वह किसी प्रकार के दुःख, तनाव, परेशानी, समस्या से ग्रसित नहीं होगा। आत्मभावों में रमण करने वाला और आत्मदर्शन में जीने वाला उस समय अपने आपमें इस प्रकार से आनन्द-प्रसन्नता का अनुभव करेगा, जिसकी हम कल्पना ही कर सकते हैं। बन्धुओ! सुधर्मास्वामी का उपदेश क्या था अमृत था। ऐसा शांत सुधारस कि सुनते रहो।

यह तब होता है जब पांच अभिगमों का अच्छे से पालन होता है। नहीं तो ऐसा होगा कि प्रवचन कब बंद होगा, यह कब रुकेगा और कब जाएं यहां

से हम! किन्तु जब अमृत बरसता है तो ऐसा लगता है कि गुरुदेव को बोलना बंद नहीं करना चाहिए। फिर समय कब निकल जाता है पता भी नहीं लगता है। वे बोलते जाएं, बोलते जाएं और हम सब सुनते जाएं, सुनते जाएं।

आप भी सुनने में लगे हुए हैं। आज जो-जो बातें कही गई हैं आप उन पर विचार करें। आत्म-दर्शन में जीएंगे, दृष्टि कर्तव्य पर रहेगी तो मुक्ति को समीप कर लेंगे। इसके विपरीत, दृष्टि दूसरों के दोषों को देखने की रहेगी तो मुक्ति के निकट होकर भी दूर हो जाएंगे। अतः आप स्वयं में अनुप्रेक्षा करें एवं 'जं सेयं तं समायरे।'

29 जुलाई, 2019

11

उट्ठिए नो पमायए

श्रीमद् आचारांग सूत्र में एक सूत्र आया है–

'उट्ठिए नो पमायए'

इसका अर्थ है– उठो! प्रमाद मत करो। इस सूत्र में आठ अक्षर हैं। कल के सूत्र में कितने अक्षर थे (प्रतिध्वनि– नौ) और आज कितने हो गए? कल नौ अक्षर थे, आज आठ हैं। बढ़िया है ना! रोज घटता जाए तो कम होते-होते ऐसे बिंदु पर आ जाएंगे, जहां सूत्रों की आवश्यकता नहीं रहेगी। हम उस बिंदु को ही प्राप्त करना चाहते हैं और वह बिंदु हमें प्राप्त हो जाएगा।

यह सूत्र भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आदमी नींद से जग जाता है, नींद खुल गई फिर भी उठकर खड़ा नहीं होता। सोचता है, उठ रहा हूं, उठ रहा हूं, उठ जाऊंगा। अभी जल्दी क्या है? बस, अब उठ ही तो रहा हूं। और उठते-उठते फिर वापस नींद आ जाएगी, हवा का झोंका आ जाएगा। सुबह-सुबह ठंडी हवा चल रही होती है। पागल हवा चल रही होती है जो आदमी को पगला देती है। वह वापस नींद की गोद में चला जाता है।

इसलिए भगवान कहते हैं कि नींद खुल गई तो उठकर खड़े हो जाओ। कोई भरोसा नहीं है कि कब वापस अज्ञान तुम्हें घेर ले। यदि तुम्हारा अज्ञान दूर हो गया, अज्ञान की नींद खुल गई है और सम्यक्त्वी बन गए हो तो, अब प्रमाद मत करो। यदि प्रमाद करोगे तो कब वापस अज्ञान आ जाए, कब वापस अज्ञान का आवरण घेर ले, कुछ कहा नहीं जा सकता। सावधानी, बहुत-सी दुर्घटनाओं को टालने वाली होती है। कहावत भी है कि सावधानी हटी, दुर्घटना घटी। यदि सावधानी हट जाती है तो दुर्घटना कहीं भी घट सकती है। जरूरी नहीं है कि वह रोड पर ही हो। जरूरी नहीं है कि ट्रेन के कारण हो। जरूरी नहीं है कि प्लेन आदि की दुर्घटना हो।

घर में भी कई बार व्यक्ति फिसल जाता है। गिर जाता है। चोट लग जाती है। इसका मतलब है कि वह सावधान नहीं है। यदि सावधान रहेगा तो जल्दी से एक्सीडेन्ट होना संभव नहीं होगा। बाहर का एक्सीडेन्ट तो थोड़ी देर के लिए चोट लगा देगा जो डॉक्टरों के सहयोग से हो सकता है थोड़े दिनों में ठीक हो जाए, किन्तु भीतर का एक्सीडेन्ट बड़ा घातक होता है।

भीतर हम क्या-क्या सोच रहे होते हैं? क्या-क्या कर रहे होते हैं? उस पर यदि विचार करेंगे तो हमें प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की कहानी सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हमने बहुत बार सुना है कि उनको बाहर की आवाज ने प्रभावित कर दिया। बाहर लोग विचार कर रहे थे, बात कर रहे हैं। एक ने कहा, कि देखो! ये कितने तपस्वी हैं, कितना तप करते हैं, तपस्या में लीन हैं। दूसरे ने कहा, अरे! तुम क्या जानते हो? मैं ऐसे किसी तपस्वी को तपस्वी नहीं मानता। इन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है। दायित्व का निर्वाह नहीं किया है। छोटे से बालक को मंत्रियों के हवाले कर दिया, मंत्रियों के भरोसे छोड़ दिया और ध्यान करने लगे। इनको मालूम नहीं है, इनके लड़के का क्या हाल है। उस पर जो बीत रही है, उसे केवल वह लड़का ही जानता है।

आज दुनिया में चारों तरफ सत्ता और संपत्ति के लिए दौड़ लगी हुई है। मंत्री भी उसमें पीछे नहीं हैं। जिन मंत्रियों पर इन्होंने विश्वास किया, वे ही मंत्री अब मिलकर उसकी घात की ताक में और राज्य को हड़पने के लिए सत्ता पर कब्जा करने के लिए तत्पर बने हुए हैं।

यह बात किसने सुनी?
किसने सुनी यह बात?

प्रसन्नचंद राजर्षि ने सुनी यह बात। फिर उनके भीतर क्या चालू हो गया? भीतर कैसी विचारधारा चालू हो गई? लेश्याएँ कैसे चालू हो गईं?

जो कहानी बताई गई है, उसके अनुसार यह सब सुनकर उनको क्रोध आया। आवेग आया। आवेग में सोचने लगे कि मेरे रहते हुए मंत्री क्या कोई भी मेरे राजकुमार की हत्या नहीं कर सकता है। मुझे और मेरे बेटे को कोई पदच्युत नहीं कर सकता है। अभी तो मैं जिंदा हूं। साधु जिन्दा है या मुर्दा? एक जगह बताया गया है कि साधु मुर्दा होना चाहिए और वह मुर्दा होता है। मुर्दा होने का मतलब है उसके भीतर उत्कर्ष नहीं होना। अभिमान नहीं

होना। अहंकार नहीं होना। वह अहंकार रहित होता है और अहंकार रहित होना चाहिए। साधु अभिमान रहित होना चाहिए।

क्यों अभिमान रहित हो और क्यों हो अहंकार रहित?

वह तो मांगकर, भिक्षा लेकर भोजन लाता है, मांगकर वस्त्र लाता है फिर उसके अंदर अहंकार कैसा? तुम यदि धन कमाने वाले हो, धन की पैदाइश करने वाले हो तब तुम्हारे भीतर अहंकार पैदा हो तो समझ में आता है किन्तु तुम दूसरों पर निर्भर हो, दूसरों से याचना करके वस्त्र लाते हो, पात्र आदि भी याचना करके लाना होता है, फिर भी तुम्हारे भीतर उत्कर्ष की भावनाएं होती हैं, अहंकार की भावनाएं होती हैं, अभिमान की भावनाएं होती हैं तो यह कोई सही चीज नहीं है। किन्तु ऐसा हो जाता है।

एक बार दो मुनि गोचरी लेकर आए। एक मुनि सूखी गोचरी लेकर आया और दूसरे मुनि को रसदार भोजन मिला तो उसके भीतर गर्व आता है कि मैं जहां गोचरी के लिए जाता हूं वहां लोगों की भावनाएं देखो। वे मेरा आदर करते हैं और रसदार गोचरी बहराते हैं। सामने वाले को देख लो, इसका चेहरा ही ऐसा है, कौन इसे रसदार गोचरी बहरायेगा? कई लोग चेहरा भी देखते होंगे? ये देखते हैं कि कौन महाराज आए हैं? आप लोग देखते हो क्या कि महाराज या कौन-से मुनि गोचरी के लिए आए हैं, फिर उसके अनुरूप गोचरी बहराते हो? महाराज, महाराज में फर्क नहीं करते है क्या? लोग यह भी देखते होंगे कि गोचरी के लिए संत आएं हैं या सतियां। संत और सतियां एक समान हैं क्या? अगर सब एक समान हैं तो फिर हर चौमासे में पंडाल नहीं लगा होगा, मेरे खयाल से।

क्योंकि इतने लोग ही नहीं आते। आप लोगों ने फर्क तो कर लिया ना! अगर फर्क नहीं करते हैं तो बहुत अच्छी बात है। भावना हमारी यही रहनी चाहिए कि कोई भी साधु-महात्मा गोचरी के लिए पधारें और मेरे हाथ से दान लगे। कण लगे, चाहे मण, इसकी कोई चिंता नहीं है, लगा तो सही। लाभ मिल रहा है आपको तो, क्या फर्क पड़ता है कि कण लगे या मण लगे। भावना, श्रावक की होनी चाहिए और वह भावना निरन्तर बनी रहनी चाहिए। एक बार यदि कोई संत भिक्षा करके चले गए तो यह नहीं सोचना चाहिए कि एक बार भिक्षा दे दी, अब कोई संत नहीं आएंगे।

देवकी के वहां पर कितनी बार संतों की गोचरी हुई थी? एक-दो बार नहीं, तीसरी बार साधु गोचरी के लिए आए थे किन्तु उसने गोचरी बहराने में

कोई कमी नहीं रखी। उसके मन में यह नहीं आया कि महाराज तीन बार क्यों आ गए। हां, उसके मन में एक नई चिंता जरूर पैदा हो गई कि क्या बात है? द्वारिका में लोगों की भावना मंद तो नहीं पड़ रही है? यदि पूरे नगर में भावना मंद पड़ रही है और संतों को भिक्षा नहीं मिले तो यह बहुत ही असह्य बात है। ऐसी बात नहीं होनी चाहिए। सबकी भावना बढ़ती रहनी चाहिए।

होने को तो एक देवकी महारानी के घर में भी सारे संतों की भिक्षा-गोचरी हो सकती थी, किन्तु भावनाएँ सबके भीतर में बनी रहनी चाहिए। संत के पात्र में बहराने की भावना बनी रहनी चाहिए। कहीं पर भी वह सूखनी नहीं चाहिए। निरंतर प्रवर्द्ध होनी चाहिए। यह नहीं कि घर के पास स्थानक बन गया है इसलिए साधु, साध्वी, मुनि अमूमन आते रहेंगे। कुछ भी हुआ नहीं कि घर में चले आएंगे। मैं तो यहां से छोड़कर बाहर कॉलोनी में चला जाता हूं। यहां पर तो साधुओं से परेशान हो गया हूं।

भावना यह होनी चाहिए कि निरन्तर, निरन्तर, निरंतर मुझे लाभ मिलता रहे और मिलना चाहिए। यह कभी विचार नहीं करना चाहिए कि इससे क्या होगा? जो होना है वह ज्ञानियों ने देखा है। जो होना है वह टलने वाला नहीं है और हमारी भावना कभी मंद नहीं पड़नी चाहिए। जिर्ण सेठ के लिए कहते हैं कि भावना भाते-भाते केवलज्ञान के निकट आ गया। थोड़ी देर और चलती है तो केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है। भावना से भी बहुत बड़ा लाभ होता है।

मैं बता रहा था कि देवकी के घर तीन सिंघाड़े आ गए। तीन बार मुनि आए और उसकी भावना कम नहीं हुई, लेकिन उसका जो विचार बना, उसने अपने विचारों को छुपाया या नहीं। यह नहीं कि मन-ही-मन में घोटती रहती। घोटने से ऊहापोह चालू हो जाती है।

प्रसन्नचंद्र राजर्षि के मन में ऊहापोह शुरू हो गई। ऊहापोह तो चालू होनी ही है। यह कब, कहां ले जाए कोई पता नहीं पड़ता। वही बात मैंने बताई थी कि आदमी नींद से जगने के बाद उठने की सोचता है। उठता हूं, उठता हूं सोचता रहा और वापस नींद आ गई। वापस वही बात यहां आ जाती है। एक बार यह जागरण हुआ, हमको ज्ञान पैदा हुआ किन्तु हमारे विचार पुनः अज्ञान के विचारों की ओर चले जाते हैं और हमारे पर आवरण बना देते हैं। फिर आदमी अज्ञान में चला जाता है। हम अज्ञान में नहीं जाएं और जागृत रहें, सावधान रहें। यह हमारा कर्तव्य होता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी महाराज साहब सजग और सावधान थे। जीवन में भी सावधान रहे, सजग रहे और अंतिम समय में भी उनकी एक भावना निरन्तर बनी रही। संथारा, संथारा, संथारा...। सजगता बनी हुई थी। बाकी दूसरे कार्यों में उन्होंने ध्यान दिया या नहीं दिया, कोई मतलब नहीं है किन्तु एक तरफ उनका ध्यान बराबर लगा हुआ था।

एक बार की घटना है। मेवाड़ क्षेत्र के कानोड़ में महासती भूराकंवर जी महाराज साहब संथारा लेकर चल रही थीं। संलेखना में चल रही थीं। पता नहीं किस समय प्राण छूट जाए, कब संथारा सीझ जाए। आचार्य भगवन् को बड़ी सादड़ी में ज्ञात हुआ कि महासती जी की दर्शन की इच्छा है और वे संथारे पर चल रही हैं। आचार्य श्री बड़ी सादड़ी से विहार कर बिना रुके कानोड की दिशा में चलते रहे। संतों ने निवेदन किया कि गोचरी-पानी से निवृत्त होकर आगे की दिशा में विहार कर लें, किंतु आचार्य श्री उसके लिए तैयार नहीं हुए। डूंगला क्षेत्र में भी नहीं रुके और निरन्तर चलते रहे और सीधे महासती जी को दर्शन देने कानोड पधारे। सहवर्ती साध्वियों ने उन्हें बताया कि 'गुरुदेव' पधारे हैं। महासती जी ने अपने योगों को संग्रहित किया। ताकत संग्रहित करके नेत्र खोले। नेत्र खोलकर दर्शन किए, हाथ जोड़े और मांगलिक सुना। बताया जाता है कि मांगलिक सुनने के साथ ही महासती जी का संथारा सीझ गया।

यदि उस समय मार्ग में आहार-पानी के लिए रुक जाते तो घंटा भर लगना सामान्य बात है। घंटा भर तो सामान्य बात है, क्योंकि गोचरी लानी होगी, आहार करना फिर पात्र की साफ-सफाई करनी होगी। आचार्य श्री ने उस समय यह देखा कि पहले क्या करना चाहिए? पहले कर्तव्य क्या है? मुझे पहली क्रिया क्या करनी चाहिए?

कई बार लोग पूछते हैं कि एक, दो, तीन, पांच, सात काम एक साथ आ जाएं फिर आदमी क्या करे? उसको सोचना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, निर्णय करना पड़ेगा कि प्राथमिकता किसको दी जाए? उनमें से जो काम पहले जरूरी हो पहले उसको निपटाना होता है। इस संबंध में शास्त्रों की व्याख्याओं पर विचार करते हैं तो जिस शब्द पर, जिस सूत्र पर कम व्याख्या है, जिस पर कम अनुप्रेक्षा करनी है, उन्हें पहले रखा गया है और जो व्याख्याएं अथवा श्लोक लंबे हैं, उनको बाद में उठाया है।

जैसे कोई छोटा सूत्र है। इसकी व्याख्या थोड़ी है, इसलिए पहले इसको उठा लिया और जिसकी व्याख्या लंबी होगी, उसको उन्होंने बाद में उठाने का प्रयत्न किया है। यहां एक बात हमारे सामने आती है कि जो कार्य थोड़े समय का होता है, उसको पहले कर लिया जाए। जिस कार्य से जल्दी निवृत्त हो सकता है उसे पहले कर लिया जाये और जिस कार्य में समय ज्यादा लगाना पड़ेगा उसको थोड़ा बाद में भी किया जा सकता है। लेकिन हमें यह भी देखना है कि जरूरी कौन-सा है? जो जरूरी है उसको पहले करना होगा।

बादल मंडरा रहे हैं और महाराज का कल्प पूरा हो गया। एक मुनि का कल्प पूरा हो गया और अब विहार करना है। पहले वर्षा हो रही थी। थोड़ी देर वर्षा रुकी। अब साधु को पहले क्या करना चाहिए? विहार करना चाहिए या गोचरी-पानी करना चाहिए? उसे विहार करना चाहिए क्योंकि कल्प पूरा हो गया है। वहां पर यदि रुकेंगे तो बरसात के कारण बाद में निकल नहीं पाएंगे। इसलिए वहां से विहार करने की प्राथमिकता रहेगी। चाहे गोचरी सुबह से नहीं की हो, चाहे भूख लगी हो। वहां पर आहार-पानी के लिए रुके और वापस वर्षा हो गई तो कल्प टूटेगा। इसलिए पहले विहार का सोचना पड़ेगा। गोचरी-पानी हो या नहीं, कल्प पूरा हो गया तो पहले वहां से विहार करने का सोचे। भले ही आधा-एक घण्टा लगे, जहां पर जाना है वहां आगे यदि मौसम खुला रहता है तो गोचरी, पानी आदि का अवसर देखना चाहिए। सोचना है कि हमें प्राथमिकता किसको देनी चाहिए। पहल, किसकी होनी चाहिए? हमारे लिए पहला कार्य क्या है। यदि सामर्थ्य है तो व्यक्ति सही दिशा में कदम बढ़ाएगा।

उस समय आचार्य देव ने उस कार्य को महत्त्व दिया, प्राथमिकता दी। यदि उस समय यह विचार किया गया होता कि डूंगला क्षेत्र आ गया, एक रात यहां रुककर गोचरी, पानी करके आगे बढ़ा जाए तो शायद महासती जी को दर्शन लाभ नहीं हो पाता। काल का समय, मृत्यु का समय पहले से निश्चित है। उसको आगे-पीछे नहीं किया जा सकता है। कोई सोच सकता है कि वह गुरुदेव का इंतजार ही कर रही थीं। भले ही इंतजार कर रही होंगी लेकिन मौत किसी का इंतजार नहीं करती है। मौत इंतजार नहीं करती कि गुरुदेव आएंगे फिर इनको मौत देंगे। ऐसा कुछ नहीं होता है। मौत किसी का इंतजार नहीं करती है।

जैसे मृत्यु किसी का इंतजार नहीं करती, वैसे ही समय किसी का इंतजार नहीं करता। समय निरन्तर बढ़ रहा है। एक क्षण के लिए भी समय

रुकता नहीं है। "जो समय को साध लेता है, वह साधना करने वाला बन जाता है और जो अवसर को चूक जाता है वह भटकता रहता है।" इसलिए समय की बड़ी महिमा बताई गई है। समय को साधने का मतलब है कि मुझे प्राथमिकता किसको देना है। पहले मुझे क्या कार्य करना है? जो मुझे पहले करना है, उसको प्राथमिकता देते हुए, उसको देखते हुए, उसे साधने का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार साधक समय को साधता है, तो साधक ही नहीं, कोई भी अपने आप को साधक बना सकता है।

मुनि, धर्मदेशना देता है। वह भी एक साधना है। मुनि की धर्मदेशना क्या होगी?

धर्मदेशना शब्द बताता है कि धर्म की तरफ अभिमुख करने वाला। धर्मदेशना शब्द का अर्थ क्या होता है? धर्मदेशना शब्द का अर्थ होता है– श्रोताओं को धर्म के अभिमुख करने वाली देशना। श्रोताओं को संसार के अभिमुख करने वाली नहीं। श्रोता को धन-दौलत बढ़ाने की कला सिखाने वाली देशना नहीं। श्रोता को पैसा कमाने के गुर सिखाने वाली देशना नहीं। धर्मदेशना कौन-सी होती है? जिससे चतुर्गति संसार से जीव परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं। कैसे चार गति के भ्रमण को रोका जाए? इस प्रकार की देशना को कहते हैं धर्मदेशना। अनादि काल से ये जीव संसार में भटक रहा है। अज्ञान के निमित्त से, अज्ञान के कारण से वह भटक रहा है। अज्ञान के कारण अब तक वह अपनी चेतना को जान नहीं सका।

मैं कौन हूं? इसका भी उसको ज्ञान नहीं हुआ। आज हमारा सौभाग्य है कि हम इतना जान रहे हैं कि मैं कौन हूं? किन्तु यह तो आप व्याख्यान सुनने से, किताबें पढ़ने से जान रहे हो, मान रहे हो कि आत्मा अलग है और शरीर अलग है। आत्मा और शरीर को एक ही मान रहे हो या अलग-अलग मान रहे हो? हमने यदि अनुभव किया तो जान सकते हैं कि शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं। किंतु ज्ञानी पुरुषों के वचन सुने हैं, उनके वचनों पर श्रद्धा, विश्वास करते हैं और मानते हैं कि आत्मा अलग है और शरीर अलग। किन्तु जब अज्ञान के अंधेरे में हमारी आत्मा रहती है या जब भी रही है, तब उसने यह नहीं जाना है कि मैं शरीर से अलग हूं। आज भी अनंत आत्माएं अज्ञान में पड़ी हुई हैं। वे नहीं जान पाती हैं कि मैं कौन हूं? वह अपने चैतन्य स्वरूप से अनभिज्ञ बनी हुई हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय,

वनस्पतिकाय में भी चेतना है किंतु वह यह नहीं देख पा रही हैं। उनको यह बोध नहीं कि मैं चेतना हूं। मैं चैतन्य हूं, इसका उन्हें ज्ञान नहीं है। हम भी एक-दो बार नहीं, अनन्त बार उस दशा में गए हैं। हमारी चेतना ने भी उस अज्ञान में अपने आप को भुला दिया था कि, मैं कौन हूं?

इस पृथ्वी पर एक भी ऐसा जीव नहीं होगा जिसने नरक के भयंकर कष्टों का, दुःखों का भोग नहीं किया हो। फिर भी आत्मा कौन-सी क्रिया करता जा रहा है? कौन-सी प्रवृत्ति करता जा रहा है। हमने रात्रि में देखा होगा। अभी इस मौसम में देखा होगा। रात्रि में लाइट जल रही होती है, तब उसके पास अनेक जीव जम्प करके आते हैं और उस लाइट की गर्मी की वजह से नीचे गिरकर बेहोश हो जाते हैं। थोड़ी देर में जब होश आता है तो फिर जम्प करके उस लाइट के लैम्प के पास जाते हैं। फिर उस लैम्प की गर्मी से बेहोश होकर गिर जाते हैं।

वे गिरते हैं, उठते हैं। हम उनको देखकर यही कहेंगे कि इनमें ज्ञान नहीं। बेचारे समझ नहीं रहे हैं कि, गर्मी से वे झुलसेंगे। जैसे वे जीव लाइट पर झंपापात करते रहते हैं, वैसे ही हम अज्ञान में झंपापात करते आ रहे हैं। आदमी धन पर झंपापात करता है। लेकिन ये सारी क्रियाएं उसके अज्ञान की हैं। ज्ञान का नेत्र खुलने पर व्यक्ति सावधान हो जाता है। वह चाहता तो है साधु बन जाऊं लेकिन हिम्मत नहीं कर पाता है। अंतराय कर्म का क्षय नहीं हुआ है तो साधु, मुनि नहीं बन पाता है। फिर भी उसकी तमन्ना होती है किस दिन मैं भी साधु जीवन स्वीकार करके इस झमेले से दूर होकर आत्मा को शुद्ध करूंगा। आत्मा शुद्ध बने इसके लिए प्रयत्नशील बनूंगा।

किंतु हाय रे अज्ञान! तेरे वश हो यह जीव, यह चेतना, भोगी भ्रमर, पतंगों की तरह, अनेक बार नरक में गई है। वहां अनेक कष्ट भोगे हैं किन्तु अभी भी व्यक्ति नहीं संभल रहा है।

'खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा' भोग पर शास्त्रकार कहते हैं वासना क्षण भर का सुख देने वाली होती है। क्षण भर प्रमोद देने वाली होगी किन्तु उसके दुष्परिणाम भयंकर होते हैं। कई बार तो व्यक्ति भोग नहीं पाता है। केवल मन की दुराशा मात्र से कर्मों का बंध करता रहता है। एक व्यक्ति मिठाई को जानता है, मिठाई की अभिलाषा है, अभी न खायी, न खाने को मिली किन्तु कर्मों का बंध करते हुए चला गया।

एक आदमी को शुगर की बीमारी हो गई है। वह जान रहा है कि मुझे शुगर वाली, मीठी चीजें नहीं खानी हैं। उसके खाने से तबीयत खराब हो जाएगी फिर भी वह तरसता रहता है। उस पर उसकी आसक्ति बनी हुई है। ऐसे में नहीं खाते हुए भी वह कर्मों का बंध कर रहा है। वह जानता है कि वह मिठाई नहीं खा सकता है फिर भी कर्मों का बंध कर रहा है। कहते हैं कि जैसे-जैसे मनुष्य की उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे आशा और तृष्णा बढ़ती जाती है। यद्यपि उसका शरीर क्षीण होता जाता है, कमजोर होता जाता है। पांच इन्द्रियों के विषय का सेवन करने में समर्थ नहीं हो पाता है। कुछ भी खाता है तो पचता नहीं है। शरीर में टिकता भी नहीं है फिर भी उसकी तृष्णा कम नहीं होती है। उसके भीतर व्याप्त आसक्ति के परिणाम छूटते नहीं हैं। उन आसक्ति के परिणामों से वह घोर कर्मों का उपार्जन कर रहा है, जिससे आने वाले समय में वे उसके दुःख के जनक होंगे।

कभी-कभी मनुष्य पुण्य योग को प्राप्त करता है और शुभ कार्य में अपना योग लगाता है तो साधु बनता है, श्रावक बनता है। धर्म की आराधना करता है। धर्म क्रिया करता है। धर्म की आराधना की बदौलत, उसके आधार पर देवगति को प्राप्त हो जाता है। देवगति के सुख का अनुभव करता है। फिर वहां से देवभव, आयु और स्थिति के क्षय होने पर काल धर्म को प्राप्त करके वह वापस मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है।

वहां पर उसे दस बोलों की जोगवाई मिलती है। जिसको अच्छे मित्र मिलते हैं, परिवार का योग मिलता है, सारी सुख सुविधाएं मिलती हैं। यह सभी पुण्य के योग से मिलते हैं। पूर्व जन्म के पुण्य योग से इस जन्म में हमें इस प्रकार का सुख प्राप्त होता है। आज पुण्य योग से हमें सुख-सुविधाएं मिली हैं। इसके साथ ही पांचों इन्द्रियां परिपूर्ण, बड़ा परिवार, सारा कुछ प्राप्त हुआ है। सुख प्राप्त हुआ है। बताया गया है कि दस बोल कठिनाई से मिलते हैं।

चेतन चेतो रे 10 बोल जगत में, मुश्किल मिलिया रे, चेतन चेतो रे!

बताया है कि जैसे गेंद उछलती-कूदती है, वैसे ही जीव चार गतियों में घूमते रहते हैं। इतना समझ लिया, अब हमें सौभाग्य मिला है, तो हमें क्या करना चाहिए? चार गति में ही रूलना है, भटकना है या किनारे पर आना है। चार गति के किनारे आना या पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं। बार-बार जन्म-

मरण का सामना करना है। ज्ञानी बार-बार के जन्म-मरण में नहीं रहना चाहता। वह कभी नहीं चाहेगा कि मैं जन्म-मरण में गोते खाता रहूं।

आज जिस प्रकार से अपने आप की क्षमता को देख रहे हैं, विचार कर लो थोड़ा-सा। कभी डॉक्टर की स्क्रीन पर देखा कि मां की कुक्षि में किस प्रकार आए। वहां पर आपको क्या प्राप्त हुआ? क्या खाने को मिला? क्या कुछ प्राप्त हुआ? माता के रज और पिता के वीर्य से सम्मिश्रण से यह शरीर बना। यह शरीर किससे बना है? अशौच पदार्थों से यह शरीर बना है। माता का रज और पिता का वीर्य अशुचि है। इस शरीर का निर्माण उस अशुचि से हुआ है। इसमें गर्व करने लायक कुछ भी नहीं है। इस शरीर पर अभिमान करो ऐसा भी कुछ नहीं है। यह जितना भी दिखने वाला रूप है यह सारा अशुचि है। हो सकता है हमने शरीर को धो लिया हो। वह गंदगी धुल गई हो, मिट गई हो किन्तु इतना करने मात्र में अशौच पदार्थ शुचि नहीं बन गया। ऊपर का मैल धुल जाता होगा, पर जो अशौच है वह शौच कैसे होगा।

किसी ने मनुष्य के मल में चन्दन का पाउडर मिलाकर आंगन लीप दिया। मनुष्य का अशौच पदार्थ चंदन के मिलने से शौच हो जाएगा? किसी शुचि पदार्थ के खा लेने से अशुचि शुचि नहीं हो जाएगी। इसी प्रकार इस शरीर का निर्माण अशुचि से होता है। इसलिए इसमें अहंकार करने की बात नहीं है। ज्ञानी कह रहे हैं– ' उट्ठिए नो पमायए' यदि सावधान नहीं हुए, नहीं चेते, उठकर भी प्रमाद से नहीं हटे, प्रमाद करते रह गए! इसी में आसक्त बन गए तो वापस मर कर इसी में जन्म लेते रहेंगे।

विचार कीजिए। यदि पंचेन्द्रिय में भी गए तो फिर से वही माता का रज और पिता का वीर्य खाकर शरीर बनाने की यात्रा चालू हो जाएगी। हमें ऐसा करना चाहिए क्या कि फिर से जन्म-मरण का योग बनता ही रहे, बनता ही रहे। ऐसे अशौच पदार्थों को ग्रहण करते रहें, ऐसी मनोकामना करेंगे क्या?

बन्धुओ! बड़े पुण्य योग से यह जीवन मिला है। पूर्व जन्म में संयम का तप आराधन किया होगा, पुण्यवाणी के योग से तुम्हें मित्र मिले, परिवार मिला। कुटुम्ब, कबीला मिला। ये सारे पुण्य से मिले हैं। ये चीजें बार-बार प्राप्त नहीं होती हैं। भगवान ऋषभदेव ने पूरे 83 लाख पूर्व तक गृहस्थ जीवन में सुख भोग किया। एक लाख पूर्व शेष रहा और विचार किया ये पुत्र, परिवार, मित्र, रिश्ते-नाते, कुटुम्ब-कबीला अनेक बार प्राप्त हुए किन्तु काम

कोई नहीं आया। इस चैतन्य की यात्रा में क्या कोई सहयोगी बन पाया? नहीं। कोई काम नहीं आया। कौन बचाने वाला है?

बन्धुओ! विचार कीजिए। ऋषभदेव भगवान कह रहे हैं कि कोई काम आने वाला नहीं है। हमारी अन्तर्दृष्टि खुलनी चाहिए। अन्तर ज्योति प्रकट होनी चाहिए। हम गहराई से विचार कर, तथ्य को बहुत गहराई से देखने पर उसके भीतर की अवस्था को जान पाएंगे। हम केवल ऊपर-ऊपर देख लेते हैं। गहराई तक जाने का प्रयत्न नहीं करते हैं। गहराई में गए बिना तल की वस्तु हमें हस्तगत नहीं हो पाती है।

साथियो! चैतन्य के शुद्ध स्वरूप की पहचान करो और शरीर को आसक्ति से दूर करो। इस प्रकार का उपदेश भगवान महावीर का है। सुधर्मा स्वामी आदि आचार्यों एवं मुनियों का है। ऐसा उपदेश सुन किसी-किसी की सुप्त चेतना जागृत हो जाती है। फिर वह बोल उठता है– मतलब आपने जो कहा एक-एक वचन सत्य है। एक वचन में भी विचार करने की बात नहीं है। एक वचन भी ऐसा नहीं है जिसकी सत्यता की समीक्षा करनी पड़े।

इस प्रकार जो जागृत हो जाता है वह कहता है– भगवन्! मेरा मन हो रहा है कि अब आप से दूर नहीं रहूं। मैं साधु जीवन को स्वीकार करना चाहता हूं। इसके लिए मुझे क्या करना होगा? क्या करना होता है? इसके लिए सबसे पहले अभिभावकों की अनुज्ञा लेनी होगी। वह कहता है– अभी घर जाकर आज्ञा लेकर आता हूँ। स्वामी जी आपने मेरी आंखें खोल दी हैं। मुझे मेरा रास्ता एकदम नजर आ रहा है। जिसमें मेरेपन का भाव नहीं रहता, ममत्व बुद्धि नहीं रहती, वही मोक्ष मार्ग को देखने में समर्थ होता है।

जिसका ममत्व हटा। उनको मोक्ष का मार्ग एकदम स्पष्ट दिखने लगा। इस घटना से यह पता चलता है कि व्याख्यान में बैठने वाले, सुनने वाले बहुत होते हैं, किन्तु सुनकर अपना स्विच ऑन करने वाले लोग बहुत कम होते हैं। आज भी श्रोता तो बहुत होते हैं, किन्तु स्विच ऑन करने वाले कितने? किसका स्विच ऑन हो गया है? अब तो स्विच ऑन करने की भी जरूरत नहीं, आज तो ढेर सारा काम रिमोट से होता है। अभी आपका रिमोट आप हाथ में लेकर बैठे हैं। यदि वह रिमोट मेरे हाथ में दे दो? वह रिमोट मेरे हाथ में आता तो फिर क्या होता? किंतु जब तक भावना बनेगी नहीं रिमोट का प्रयोग कर भी लूं तो होगा क्या? कब रिमोट का स्विच ऑन करने का विचार है, सोच लेना।

जब तक स्विच ऑन नहीं करेंगे सुनते जाएंगे, सुनते जाएंगे। केवल सुनने से कुछ नहीं होगा। गहरी दृष्टि प्रकट होनी चाहिए। अन्तर ज्योति प्रकट होनी चाहिए। हम निरन्तर अनुप्रेक्षा करते रहें, समीक्षा करते रहें। यदि ऐसा करते रहेंगे तो एक दिन हो सकता है कि कोई ऐसा झटका लगे कि हमारे अन्तर के भाव जागृत हो जाएं। इस प्रकार से हम भी उठ कर खड़े हो जाएं। हमारे जीवन में भी भगवान महावीर का उपदेश साकार हो जाएगा।

30 जुलाई, 2019

12

तोसिया परिसा सव्व

धर्म भावों को प्रवर्धमान कैसे बनाया जाए? धर्म भावों को कैसे बढ़ाया जाए? धर्म भावों को कैसे विकसित किया जाए? बुराई बहुत जल्दी पनपती है, लेकिन अच्छाई को पनपने में देर लगती है। बबूल का पेड़ बहुत जल्दी पनप जाता है जबकि आम को फलने में लगभग 12 वर्ष का समय लग जाता है।

गुणों का संवर्धन करने, उसका विकास करने, महल बनाने, मकान बनाने में समय लगता है। पतन के लिए ज्यादा कुछ नहीं चाहिए। पांव फिसला कि आदमी गिर जाएगा। ऊपर चढ़ने में पुरुषार्थ करना होता है, किंतु गिरने में पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती है। थोड़ा-सा पैर फिसला नहीं कि धड़ाम से गिर जाता है। एक बार पांव फिसलेगा, आदमी गिर जाएगा।

क्या गिरने में देर लगती है?

नहीं, गिरने में देर नहीं लगती।

धर्म भावों को प्रवर्धमान बनाए रखना, धर्म भावों को बढ़ाते रहना बहुत जरूरी होता है, किंतु प्रश्न खड़ा होता है कि, उसे कैसे बढ़ावें? उसे बढ़ाने का उपाय क्या है? किस आधार से हम धर्म भावों को प्रवर्धमान बना सकते हैं? धर्म भावों को बढ़ा सकते हैं?

इसे बढ़ाने के बहुत सारे उपाय हैं। बहुत सारे उपाय बताए जा सकते हैं। ऐसा नहीं है कि उपाय नहीं है। उपाय बहुत हैं। हम किन-किन उपायों को अमल में लेते हैं और वे उपाय कितने कारगर हो पाते हैं, ये अमल में लेने के बाद ही अनुभव कर पाएंगे। किंतु यह निश्चित है कि धर्म की भावनाओं को निरन्तर बढ़ाते हुए रखा जा सकता है। उसके ऊपर ध्यान देना होगा। यदि उस पर ध्यान नहीं देंगे तो कब दीमक लग जाएगी और कब भाव कहां जाएंगे,

कहा नहीं जा सकता। घर में रखे पदार्थों की सार-संभाल की जाती है तो वे सही रहते हैं। यदि उनकी सार-संभाल नहीं की जाए तो उनमें भी कीड़े पड़ जाएंगे। उनमें भी फूलन आ जाएगी। हानि होने जैसी स्थिति बन जाएगी। अर्थात् वे कहीं-न-कहीं दोष वाले बन जाएंगे।

अनाज, वस्त्र, आभूषण कोई भी चीज, यत्न करके, देखकर रखी जाती रहे, बार-बार सार-संभाल होती रहे तो वह सुरक्षित रहती है। वैसे ही हमें अपने धर्म भावों की देख-रेख करते हुए यह समीक्षा करते रहना चाहिए कि मेरे धर्म भावों में वृद्धि हो रही है कि नहीं? हो रही है, तो कितनी? कहीं भाव, घट तो नहीं रहे हैं! हमारी इस समीक्षा का एक विभाग होगा, यह ध्यान रखना कि भाव घट तो नहीं रहे हैं।

समीक्षा का दूसरा विभाग है, उसे बढ़ाने का उपाय। बढ़ाने का उपाय है कि 'स्वाध्याय' किया जाए। यदि हम पढ़ नहीं पाते हैं, तो सुना जाए। 'सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।' सुनकर धर्म मार्ग और अधर्म मार्ग को जाना जाता है। उसके बाद निर्णय हमको करना होता है कि किस मार्ग को स्वीकार किया जाए और किस मार्ग को छोड़ दिया जाए। हमको अच्छाई की ओर बढ़ने के लिए श्रेय मार्ग को ही स्वीकार करना चाहिए। उसके लिए हमें स्वाध्याय करना चाहिए। व्याख्यान सुनना भी स्वाध्याय है। उसमें जो बात सुनाई गई है, उसका मनन करें। उसका बार-बार वाचन करें। उस पर रिविजन करें। यदि कहीं कोई बात अटकती हो तो जिज्ञासा रखें और उसका समाधान लें।

जिज्ञासा और समाधान बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। इससे हमारे दिल खुल जाते हैं। हमारे दिल में तत्त्व को ग्रहण करने की क्षमता विकसित होती है। पहले आदमी संकोच करता रहता है कि कैसे पूछें, क्या पूछें? वह पूछने में हिचकिचाता है। जिज्ञासा बहुतों के मन में होती है, किंतु पूछने का साहस हर कोई नहीं जुटा पाता है। दूसरे के पूछने से कभी समाधान हो जाता है तो कहते हैं, कि चलो मेरा भी समाधान हो गया। जब समाधान होता है तो व्यक्ति को संतुष्टि की अनुभूति होती है। समाधान मिलता है तो उसके विचार उर्वरित होते हैं और पूछने का मन करता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव उदयरामसर चातुर्मास हेतु विराज रहे थे। देशनोक के श्री डालचंद जी भूरा उपस्थिति हुए। वाचनी के दौरान उन्होंने कहा कि

गुरुदेव! ये बहिनें दौड़-दौड़कर आती हैं, कि गुरुदेव की सेवा करें। दोपहर के समय दौड़ी-दौड़ी आती हैं, घर के काम छोड़कर गुरु की सेवा में टाइम बिताना चाहती हैं और यह सेवा करती हैं। मेरा सवाल है कि इनकी सेवा क्या होती है, कैसे होती है?

आचार्य देव ने बड़ा ही सुंदर समाधान दिया कि क्या आप कभी बगीचे में घूमे हैं? बगीचे में जाते होंगे। उन्होंने कहा– 'हाँ, कई बार काम पड़ता है।' गुरुदेव ने कहा– 'बगीचे में आदमी जाता है। एक, दो, पांच, दस राउंड लगाता है और वहां कुर्सी या बेंच जो कुछ होती है, उस पर बैठ जाता है। पंद्रह मिनट, आधा घंटा, एक घंटा बैठा और लौटकर आ जाता है। बगीचे से उसने क्या लिया? एक भी फूल तोड़ा नहीं, एक भी पत्ती तोड़ी नहीं, किसी से कोई बात की नहीं। किंतु बगीचे से लौटते और बगीचे में जाने के समय में फर्क आया क्या? क्या उसे कुछ फर्क लगता है?' बगीचे में घूमने के बाद, बैठने के बाद जब बाहर आता है तो उसे तरो ताजगी महसूस होती है। ताजगी कहां से आई? वहां पर हमें शुद्ध हवा, शुद्ध ऑक्सीजन मिला। उस ऑक्सीजन से हमारे भीतर ताजगी आ गई। हमारे भीतर ऊर्जा व्याप्त हो गई। यूं देखें तो वहां से हमने कुछ ग्रहण नहीं किया। हम तो केवल स्वाभाविक ही घूमने गए थे। उसके बावजूद हमारे में ऊर्जा संग्रहित होती है और हमें अनुभूति होती है कि हमारे भीतर ऊर्जा बढ़ गई। ताजगी का अनुभव होता है। स्फूर्ति अनुभूत होने लगती है।

गुरुदेव ने कहा कि जैसे बगीचे में जाने से स्फूर्ति बढ़ती है, ताजगी बढ़ती है, अच्छा अनुभव होता है, वैसे ही संतों का सान्निध्य प्राप्त करने से उसको आत्मा में अच्छा महसूस होता है। उसकी आत्मा में अच्छा लगता है। उसकी आत्मा में ऊर्जा का संग्रहण होता है। उसको ताजगी लगती है। क्या हुआ, कैसे हुआ, यह वह भले ही नहीं जान रहा होगा फिर भी उसको स्फूर्ति की अनुभूति होती है। इसलिए वे बहिनें संतों की सेवा करने के लिए उत्सुक होती हैं।

हकीकत है कि संतों का सान्निध्य व्यक्ति सच्चे दिल से स्वीकार करता है तो वह कभी निराश नहीं होता, निष्फल नहीं होता। उसको लाभ मिलता है। निश्चित ही मिलता है।

सत्संगत से सुख मिलता है, जीवन का कण-कण खिलता है।।
सत्संगत से सुख मिलता है....

बात आ ही गई सत्संगत की। सत्संगत का क्या अर्थ है? सामान्यतः हम इसका अर्थ सोच लेते हैं संतों की संगत। जबकि सत्संगत का अर्थ है– सत्य की संगत करना। चूंकि संत सत्य में जीते हैं, वे सत्य की प्रतिमूर्ति हैं, इसलिए हम उनमें सत्य का अनुभव करते हैं। उनमें जब सत्य का अनुभव करते हैं तो उनकी संगत हमारे जीवन के कण-कण को खिलाने वाली बन जाती है। गीत की कड़ी में स्पष्ट कहा गया है कि 'जीवन का कण-कण खिलता है।' वही सेवा का लाभ है। वही सेवा का फल है। बाकी और सेवा जरूरी नहीं है। संतों की सेवा का मतलब है, संतों का सान्निध्य प्राप्त करना और अपनी आत्मा को ऊर्जावान् बनाना। अपनी आत्मा में स्फूर्ति पैदा करना। यह सत्संगत का लाभ है।

श्रीमद् भगवती सूत्र में कहा गया है कि तथारूप श्रमण माहण का नाम श्रवण करना महान हितकारक है। यह हमारी निर्जरा का हेतु होता है। फिर उनके सामने जाने, उनके दर्शन करने, उनकी वाणी सुनने और उनसे ज्ञान चर्चा करने के लाभ का तो कहना ही क्या? क्योंकि वाणी सुनने के बाद, उनसे चर्चा करने से हमारे दिल में रही हुई बहुत सारी ग्रंथियां खुल जाती हैं। अन्यथा गांठें भीतर बंधी रहती हैं। उनका विमोचन नहीं हो पाता। ऐसा हो सकता है कि व्याख्यान सुनने के बाद कइयों की गांठों का समाधान हो जाए। किंतु कई बातों का समाधान नहीं होने से यदि जिज्ञासा बनी रहती है और नहीं पूछते हैं तो धीरे-धीरे हमारे भीतर कुंठा व्याप्त हो जाती है। वह जिज्ञासा, कुंठा बन जाती है। फिर उसका दिल जल्दी से खुल नहीं पाता है और वह प्रश्न नहीं कर पाता। समाधान हो नहीं पाता है। इसलिए जिज्ञासा बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है।

पूरा भगवती सूत्र गौतम स्वामी के प्रश्नोत्तर से भरा हुआ है। पूरा नहीं भी कहें किंतु अधिकांश है। उसमें जयंतीबाई के प्रश्न भी हैं। दूसरे प्रश्न भी हैं किंतु अधिकांश प्रश्न गौतम स्वामी के रहे हैं और उनका समाधान मिला है। पूछने वाला एक होता है और सुनने वाले अनेक होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के पूछे जाने पर अनेक को समाधान मिल जाता है। अभी हम दोपहर में थोड़ा समय पूछने और समाधान के लिए रखते हैं। दोपहर में थोड़ा समय देते हैं। उस समय कोई व्यक्ति पूछना चालू करता है और प्रवाह चालू हो जाता है तो फिर समय का अतिक्रमण भी होने लग जाता है।

रतलाम की एक घटना मुझे याद आ रही है। आचार्य पूज्य गुरुदेव का रतलाम में चातुर्मास संपन्न हो रहा था। एक भाई बड़ा सज-धज कर आया। आप लोग सोच रहे हैं कि कैसे सजा होगा? कौन-से कपड़े पहनकर आया होगा? कपड़े की बात नहीं है। वह दिमाग में तर्क भर कर आया था। तर्क से मस्तिष्क पूरा भर कर लाया था कि यह पूछूंगा, वह पूछूंगा। ये तर्क होगा, वो तर्क होगा। उसको ऐसा लग रहा था कि मेरे प्रश्न सटीक हैं। आदमी को इतना विश्वास होना भी चाहिए कि मेरा प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्रश्न महत्त्वपूर्ण तब और हो जाता है जब उसका समाधान मिलता है।

उसने प्रश्न किया कि गुरुदेव आपके चातुर्मास में खर्च कितना होता है। क्या प्रश्न किया? खर्च कितना होता है। बाह्य वातावरण से लोग प्रभावित होते हैं और बाह्य हवाएं उनको प्रभावित करने वाली होती हैं। जोधपुर वालों से यदि पूछ लो कि संतों के चातुर्मास में कितना खर्च हुआ संतों के लिए? क्या यह पंडाल संत के लिए बना? (प्रतिध्वनि– नहीं) संतों के आवास, उनके ठहरने के लिए किराये पर जगह लेने की जरूरत पड़ी क्या? (प्रतिध्वनि– नहीं) संतों के लिए भोजनशाला चलानी पड़ी क्या? (प्रतिध्वनि– नहीं) फिर संतों के लिए क्या खर्च हुआ? हकीकत में विचार करेंगे तो संतों के लिए कोई खर्च नहीं है। संत, भिक्षा आपके घरों से लाते हैं। वह भी एक घर से करने की बात नहीं होती है। थोड़ी-थोड़ी करके अनेक घरों से ली जाती है। थोड़ी-थोड़ी भिक्षा लेने से देने वाले के घर में अभाव की स्थिति नहीं बनेगी। उनको दुबारा नहीं बनाना पड़ेगा। बल्कि इससे, उनको भी स्वस्थ रहने का गुर मिलता है। रोज भर पेट खाता है, यदि एक दिन उनोदरी (भूख से कम खाना) करता है तो वह रोग मिटाने का कारण होता है। किसी व्यक्ति ने कहा था कि तुम स्वस्थ रहना चाहते हो तो छह दिन तक लिमिट में भोजन करो और एक दिन मनचाहा भोजन करो। सात दिन होते हैं, एक सप्ताह में। सोमवार से रविवार तक के सात वारों से अलग दिन है क्या? इन सात वारों से अलग कोई दिन नहीं है तो छह वार या छह दिन तुम थोड़ा-थोड़ा खाओ और सातवें दिन या सप्ताह में एक दिन मनचाहा भोजन, अच्छी तरह भोजन करो।

यदि ऐसा करते हो तो, करो। यदि नहीं कर सकते हो तो छह दिन बहुत मजे से खाओ और एक दिन उपवास करो। चाहते हो एक दिन उपवास करना तो साधु जिस दिन आपके घर भिक्षा करते हैं, उस दिन उपवास या उनोदरी

तप हो सकता है। घर में चार लोग जीमने वाले हैं और साधु को दो रोटी दे दी तो सभी सदस्यों के खाने में आधी-आधी रोटी कम आएगी। इससे कोई ज्यादा फर्क पड़ने वाला नहीं है। अगर चार लोग चार-चार रोटी खाते हैं और दो-तीन रोटी कम कर दी तो फर्क नहीं पड़ेगा और थोड़ी भूख रह सकती है। आधी रोटी कम खाने से काम चल जाता है। कोई असुविधा नहीं होती, बल्कि उसे हलकापन लगेगा। इस तरह से साधु आपके यहां से गोचरी लेता है तो आपके भीतर भी जीने का, स्वस्थ रहने का तरीका अपने आप आ जाता है। इससे हानि नहीं होती है, लाभ ही होता है।

साधुओं का किसी प्रकार का खर्च नहीं होता। बीमार होने पर भी जहां तक हो सकता है साधु निरवद्य चिकित्सा कराने का विचार करता है, जिसमें किसी प्रकार का कोई खर्च नहीं हो। यदि डॉक्टर के पास भी जाना पड़े तो डॉक्टर से बात करेगा। समझदार डॉक्टर सोच लेता है कि इतने लोगों का मैंने पैसे से इलाज किया है, यदि एक रोगी के इलाज की फीस, पैसा नहीं भी लूंगा तो कोई खास बात नहीं है। ऐसे बहुत सारे डॉक्टर होते हैं जो गरीब व्यक्ति को देखकर मुफ्त में इलाज करते हैं तो साधु-संतों की तो बात ही क्या है। हां, कभी-कभी कोई ऐसा डॉक्टर भी होता है जो कहता है कि मेरा बाप भी आ जाए तो टेबल पर पैसे रखे बिना इलाज नहीं करूंगा। ऐसी बात नहीं है कि सब ऐसे हैं। कुछ हैं जो कहते हैं कि मेरे पिता आएं या मेरी मां आ जाए, मेरे यहां पर फीस जमा होगी, उसके बाद ही इलाज करूंगा। वैसे हम मान भी लें कि साधु डॉक्टर से इलाज कराएंगे तो भी वह कभी-कभार का खर्च होगा।

गुरुदेव उस व्यक्ति की बात समझ गए कि उसके पूछने का भाव क्या है? वह क्यों पूछ रहा है? बाहर लोगों में चर्चा होती है। लोगों की चर्चा का कोई अंत नहीं है। कहते हैं कि 'जितने मुंह, उतनी बातें'। 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' हर व्यक्ति की अपनी मति होती है, अपना सोच होता है, अपनी समझ होती है। आचार्य देव ने उसके प्रश्न का इस प्रकार का समाधान दिया कि 'भाई! हमारे लिए किसी प्रकार का कोई खर्च नहीं होता, खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हम भिक्षा लेते हैं, वस्त्र लेते हैं घरों से गवेषणा करके। उन घरों से लेते हैं जिसमें उनको कष्ट नहीं हो। उनको उस चीज को देने के लिए भार नहीं पड़े। इस प्रकार की भावना हमारी रहती है।'

वह भाई कितने ही प्रश्न एवं तर्क मन में लेकर पूछने के लिए आया होगा, किंतु गुरुदेव के संक्षेप और सारगर्भित उत्तर को सुनकर वह संतुष्ट हो गया। शास्त्रकार कहते हैं कि ऐसा समाधान देना जिससे परिषद् समाहित हो जाए। परिषद् को संतोष हो जाए कि मेरे प्रश्न का उत्तर, सही समाधान मिल गया। समाधान मिलने पर उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है और पुनः उसके मन में कोई जिज्ञासा पैदा होती है तो पूछने का मन होता है।

आगमों में गौतम स्वामी के लिए बताया गया है कि वे ध्यान कोष्ठक में जाते। ध्यान कोष्ठक का मतलब अनुप्रेक्षा में जाते, किसी बात की अनुप्रेक्षा करते। ध्यान कोष्ठक का मतलब किसी रूम या कमरे में जाकर ध्यान करना नहीं, बल्कि कहीं भी बैठे-बैठे अपने आपको ध्यानस्थ कर लेना है। अनुप्रेक्षा करते-करते उनके दिल में कोई समस्या, नया भाव पैदा हुआ और उनका विचार हुआ कि ये बात कैसे? तत्काल उनके मन को एक आश्वासन मिलता कि इस जिज्ञासा का समाधान भगवान महावीर के पास मिलेगा। फिर वे भगवान महावीर के पास पहुंचते और तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं...। वे भगवान को नमस्कार कर बड़े सरल भाव से अपनी जिज्ञासा भगवान महावीर के चरणों में प्रस्तुत करते कि भगवन्! इस प्रकार का विचार, भाव मुझे आया है, क्या यह सही है? भगवान महावीर सही होने पर बताते कि सही है, नहीं तो उसका समाधान देते। जिसे सुनकर गौतम स्वामी तृप्त हो जाते हैं। उन्हें तृप्ति की अनुभूति होती।

खाने से ही तृप्ति नहीं होती है। वैचारिक तृप्ति, विचारों के समाधान से मिलती है। भगवान महावीर से समाधान मिले और श्रद्धावान् गौतम स्वामी को तृप्ति नहीं हो, ऐसी बात हो ही नहीं सकती। हम श्रद्धा से पूछते हैं, तो तृप्ति मिलती है। श्रद्धा नहीं है और खाली तर्क करना है तो ऐसे व्यक्ति कभी-कभी तर्क के जाल में अपने आपको ऐसा उलझा लेते हैं कि फिर जल्दी सुलझा नहीं पाते। उनके विचार, उनके तर्क उलझते चले जाते हैं। 'समाधान, श्रद्धा से मिलता है।' यदि विजिगीषु भाव है कि मैं जीतूंगा और सामने वाले को जीतने नहीं दूंगा। तर्कों में उलझा दूंगा। ऐसी स्थिति में समाधान की भावना, समाधान की चाह है ही नहीं तो वह मिलेगा कहां से? कोई व्यक्ति किसी दुकान पर केवल चीज 'देखने' के लिए आया है तो उसको वस्तु कैसे मिल सकती है। जो ग्राहक बनकर आता है, वह पाता है।

श्रद्धा से जिसका मन समाहित हो जाता है, उसके भीतर कई बार संवेग के भाव तरंगित होने लगते हैं।

जैसे जंबू कुमार की भावना आर्य सुधर्मास्वामी के उनके उपदेश को सुनकर, उनकी देशना को सुनकर तरंगित होने लगी। उनका हृदय इतना विकसित हो गया, भावनाएं इतनी प्रखर हो गईं कि बस जल्दी से जल्दी मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है।

उसी तरह किसी में भी जिस समय वैराग्य और संवेग का भाव लहराता है, उस समय एक क्षण का विलंब भी बड़ा दुरूह लगता है, बड़ा अटपटा लगता है। वह एक क्षण भी गंवाना नहीं चाहता। वह अपने अभिभावक से जब कहता है कि पूज्य पिताजी! मैं संयम जीवन स्वीकार करना चाहता हूं। तो वे कहते हैं कि 'इतनी जल्दी क्या है?' वो क्या जवाब देते हैं? जल्दी नहीं करना है तो कितनी देर करनी चाहिए? (प्रतिध्वनि– क्षण भर भी नहीं) किसके लिए अपने लिए या दीक्षार्थी के लिए? घर में कोई दीक्षा के लिए तैयार हो जाए तो कहने के साथ ही तैयार हो जाएंगे? यदि घर में किसी को वैराग्य जग गया और उसने आपको कहा कि पापा! मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। तो आप क्या कहोगे कि चल, अभी तुरंत दीक्षा ले ले। चलो, अभी गुरुदेव के पास पच्चक्खाण करा देता हूं।

है कोई? है कोई ऐसा? (प्रतिध्वनि–परीक्षा लेनी पड़ेगी) परीक्षा की जब बात आ ही गई तो चलो थोड़ी बात कर ही लेते हैं। आओ, दो-दो हाथ कर लें। परीक्षक कौन होता है? परीक्षक वह होता है जो परीक्षा लेता है? एक बी.ए. का विद्यार्थी है। पहली कक्षा में पढ़ने वाला उससे कहता है कि मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा। क्या यह सही होगा? आप संवेग में गए कब, वैराग्य में गए कब? जो कभी वैराग्य में गया ही नहीं है, वह क्या वैराग्य की परीक्षा लेगा? क्या वह एक वैरागी की परीक्षा ले सकता है? वैराग्य की परीक्षा वैरागी लेगा या रागी लेगा? जो वैराग्य में गया ही नहीं, वैराग्य क्या चीज होती है, उसको पता ही नहीं, उसको वैराग्य की ए बी सी डी, वैराग्य का अ आ इ ई नहीं पता वह परीक्षा क्या लेगा? (शब्दों पर जोर देते हुए) परीक्षा लेगा कौन? यह तो बताओ। दूसरा कुछ भी हो हम धन्ना, शालिभद्र के समान हैं क्या? शालिभद्र के शरीर से आपका शरीर कोमल है क्या? नहीं है। शालिभद्र की परीक्षा किसने ली?

वैराग्य पक्का है या नहीं? क्या हजार किलोमीटर विहार कराके देख लिया? दीक्षा के पहले हजार किलोमीटर विहार कराया क्या शालिभद्र को? धन्ना जी ने कितना विहार किया था और भगवान महावीर ने कितना विहार किया था? अनाथी मुनि ने कितना विहार किया? क्या! परीक्षा लेंगे आप। बताओ? आपने हजार किलोमीटर विहार करा भी लिया। कोई तकलीफ नहीं आयी और दीक्षा के बाद आ गई फिर क्या करोगे? जिंदगी में तकलीफें तो आती रहती है। जिंदगी में तकलीफें, कठिनाइयां नहीं आएं तो वह जिंदगी, जिंदगी है क्या? जिन्हें कठिनाइयां नहीं चाहिए, वे संसार में ही रहते हैं। उनके लिए घर में रहना संसार में रहना ही अच्छा लगता है। "ध्यान रहे, जब तक हम देह के स्तर पर हैं, शरीर के स्तर पर हैं, तब तक कठिनाई है। हर जगह कठिनाई है। किंतु जैसे ही आत्मा के स्तर पर आते हैं, सारी कठिनाइयां समाप्त हो जाती हैं।" परीक्षा करनी है, तो सिर पर अंगारे रख घर में परीक्षा करो, ऐसे परीक्षा हो जाएगी क्या? हिम्मत है किसी की? खंधक जी की तरह खाल उतार कर देखो कि वह चमड़ी उतारने पर आवाज करता है या नहीं? आज तक किसी वैरागी की ऐसी परीक्षा हुई कि चमड़ी उतारकर देखें कि शरीर पर मोह कितना है? फिर भला क्या परीक्षा लेंगे?

घर में लड़की 20 साल की हो गई है, बड़ी हो गई तो परीक्षा कौन लेता है? जो शादी करने के लिए आया है, वह परीक्षा लेता है कि लड़की कैसी है? उसके ससुराल वाले और उसका पति परीक्षा लेता है। उसकी परीक्षा उसके सास-ससुर लेते हैं। उस लड़की की परीक्षा कौन लेगा? जो शादी करेगा वो लेगा? और दीक्षार्थी की परीक्षा कौन करेगा? जिनके पास दीक्षा ले रहे हैं वो परीक्षा करेंगे या जो दीक्षा दे रहे हैं वे परीक्षा करेंगे? परीक्षा कौन करेगा, देने वाला करेगा या लेने वाला? अब कभी बोलना मत कि परीक्षा लेनी है।

जब वैराग्य-संवेग जाग्रत हो जाता है तब उसको एक-एक क्षण भारी लगता है? एक क्षण का विलंब उसे असह्य लगता है। एक क्षण भी उसके लिए भारी पड़ता है। फिर वह एक दिन, एक महीना कैसे निकालता है, उस का जी जानता है। थोड़ी बात और करूं मैं। लैला और मजनू की बात सुनी होगी आपने। लैला और मजनू को थोड़ी देर के लिए, थोड़ा-सा अलग रहना होता तो जी टूटता। ऐसी प्रीत लगी हुई थी कि दोनों एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे। वैसे ही धर्म से प्रीत, आत्मा से प्रीत होती है तो वह बस उसी में मग्न होना चाहता है।

मृगावती से पूछो कि भगवान महावीर से क्या मिला? क्या बताएगी वह! कबीर जी कहते हैं कि 'गूंगे का गुड़'। गूंगे आदमी को गुड़ खिलाया और पूछा, कैसा लगा? तो वह बताएगा कैसे? बेचारा बोल नहीं पाता है। वह तो बोल नहीं पाता है। बस ऊं ऊं करेगा। वह अपने मुंह से बोलकर बता नहीं सकता।

रमेश जी! आपने घी खाया है कभी? गाय का घी खाया या भैंस का घी खाया? (प्रतिध्वनि– दोनों का खाया) स्वाद कैसा लगा? घी का स्वाद कैसा है? अनुभव हुआ। घी खाने वाला अनुभव कर सकता है किंतु स्वाद बता सकता है क्या? खट्टा है या मीठा है? कड़वा है या कसैला है? कैसा स्वाद है! बता सकते हैं क्या?

नहीं बता सकते हैं।

जैसे घी का स्वाद नहीं बताया जा सकता, वैसे ही वैराग्य का भाव नहीं बताया जा सकता। उसे जीने वाला ही जानता है। बाहर वाला भले ही अनुमान लगा ले किंतु जिसके भीतर में जो घटना घटती है उसे वही अनुभव कर सकता है।

वैरागी के लिए असंयम जीवन पैर में कांटा चुभने के समान है। वह सोचता है कि कब असंयम जीवन से निकलूं और साधु बनूं। आपको कांटा चुभ गया तो आप हाथोंहाथ निकालना चाहोगे। कोई यदि निकालने का तरीका नहीं जान रहा है तो वह किसी के पास पहुंचने तक का इंतजार करेगा और वहां पहुंचते ही जल्दी से निकालने को कहेगा। यदि उसमें क्षमता है तो वह कांटा तत्काल निकालेगा। कांटा रखना नहीं चाहेगा। वैसे ही विरक्त को असंयमी जीवन कांटे के समान चुभता है।

जिसको मारणान्तिक कष्ट आया, उसे अनुभव हो गया कि मौत क्या होती है. वह कहता है मौत मेरे सामने खड़ी थी। मैं मौत से बच गया। पुण्य योग था जो मैं बच गया।

बच गया तो अब क्या करना चाहिए? संसार में और पाप करने में जीवन लगाना या धर्म करने में लगाना। एक आदमी आया मेरे पास और बोला, गुरुदेव! मेरी गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया। एक्सीडेंट बड़ा भयंकर था। गाड़ी की दशा को देखकर हर कोई कह सकता है कि इसमें बैठा आदमी बच नहीं सकता, किंतु आपकी कृपा रही कि मुझे खरोंच भी नहीं आई।

आपकी वजह से मैं आज बच गया हूं। एक्सीडेंट में मेरी वजह से बच गए तो मेरी कृपा का परिणाम दो, फल दो। मेरी कृपा का फल दो। अब बताओ क्या करना है? किसकी कृपा से बचे? (प्रतिध्वनि– आपकी कृपा से) तो अब तुम्हारा जीवन, तुम्हारा रहा या मेरा रहा? निर्णय एक समान करना चाहिए, न्याय एक समान होना चाहिए। खाली दूसरों के लिए कहें तो, आपका और हमारे साथ घटना हो जाए तो वह हमारा हो गया। उस समय हमारा न्याय बदल जाएगा। हम न्याय के पत्थर को एक समान नहीं तोलते हैं। मेरी कृपा से जिंदगी बची है तो अब वह जिंदगी मेरी है। धर्म के प्रताप से बची है। बची जिंदगी को धर्म का प्रताप मान रहे हैं तो धर्म में जिंदगी जानी चाहिए। अधर्म में जिंदगी नहीं जानी चाहिए। अधर्म का आसेवन उस जिंदगी में नहीं करना चाहिए। जो करना है, भगवान की आज्ञा के अनुसार। भगवान की धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार मुझे जीवन चलाना है। जीवन जीना है। साधु बन सके तो अच्छी बात है। जरूरी नहीं है कि साधु बनना ही है। अगर बने तो अच्छी बात है। उससे बढ़कर कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं। पर यदि साधु नहीं बन सकते हैं तो श्रावक बन करके आरंभ-परिग्रह का त्याग कर धर्म स्थान में रहकर धर्म की आराधना करनी चाहिए।

आनंद श्रावक ने धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार किया और धर्म स्थान में रहकर वहीं पर श्रावक व्रतों की आराधना की। श्री हुलास मल जी सेठिया ने लगभग 20 वर्षों तक धर्म स्थान में रहकर धर्म की आराधना की थी। मांगीलाल जी बाघमार केवल भोजन करने के लिए घर पर जाते थे बाकी अधिकांश समय धर्म आराधना में धर्म स्थान पर ही रहते थे। आज कितने धर्म स्थान ऐसे होंगे, कितने स्थान खुले मिलेंगे, जहां 24 घण्टे धर्म आराधना करते हुए कोई मिल रहा है। कितने धर्म स्थान मिलेंगे? आज धर्म स्थान बनाने की होड़ लगी हुई है। एक बना, उसके बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, तीसरे के बाद चौथा। धर्म स्थान बनते जा रहे हैं किंतु धर्म की आराधना करने वाले कितने मिलेंगे? वहां पर धर्म की आराधना करने वाला कोई नहीं मिलेगा। वहां पर कबूतर और चिड़िया को जगह जरूर मिल जाती है, घोंसला बनाने के लिए। उनको मौका मिल जाता है, क्योंकि सूने घर में वे अपना घोंसला आसानी से बना सकते हैं। वहां अपना घर बनाकर आसानी से रह सकते हैं।

भले ही आज हमने इतने स्थान बना लिए किंतु हम धर्म स्थान का उपयोग क्या कर रहे हैं। जितना पैसा लगाया उसका ब्याज भी उठा पा रहे हैं या नहीं उठा पा रहे हैं? फिर क्या होगा? कैसे होगा कल्याण?

कैसे हो कल्याण करणी काली है
नहीं होगा भुगतान हुंडी जाली है....

आप भी बोलते तो हो, ये जीवन क्षणभंगुर है इसका अनुभव मैंने कर लिया। पता नहीं किस समय मौत आ जाए। वह विचार करता है– मैं खाली हाथ नहीं जाना चाहता। मैं साधु जब बनूंगा, तब बनूंगा किंतु अभी 12 व्रतों को तो स्वीकार कर ही लूं। यह मेरी मानसिकता है।

समझने वाला पंच महाव्रत या श्रावक के 12 व्रतों को समझकर स्वीकार कर लेता है किंतु हम तो एक-दो व्रत स्वीकार करने में भी आगे-पीछे होते हैं। हम सोचते हैं कि व्रतों को स्वीकार कर लिया तो कभी कोई दोष नहीं लग जाए? स्वीकार भी करते हैं तो पक्के नहीं। जितना मन होता है, उतना खुला रख दिया, जितने जंचे उतने ले लिए। 12 व्रत की जगह 5 व्रत ही लिए। आज 5 महाव्रत धारण करने वाले मिल जाएंगे। लेकिन आज पक्के 12 व्रतधारी कितने मिल जाएंगे?

हम धर्म की आराधना और प्रभावना कैसे करना चाहते हैं? हम व्याख्यान के बाद लड्डू, पेड़े, कचौरी और समोसा बांटकर सोचते हैं कि धर्म की प्रभावना कर रहे हैं। उस जीवन में धर्म की प्रभावना, धर्म की खुशबू कैसे आएगी। चंदन का बाग होगा, चंदन का वृक्ष होगा तो चंदन की खुशबू आएगी। चंदन की लकड़ी है ही नहीं तो खुशबू कहां से आएगी? वैसे ही जीवन में धर्म है ही नहीं तो लड्डू-पेड़ा बांट देने से धर्म की खुशबू कहां से आएगी? कई बार लड्डू बांटते समय लड्डू के कण गिर जाते हैं और वहां पर चींटियां आ जाती हैं जिससे उन चींटियों की विराधना हो जाती है। धर्म की प्रभावना करना है, तो सच्चे दिल से करो। दिल में धर्म आएगा तो धर्म प्रभावना अपने आप हो जाएगी। खाली लड्डू बांटने से प्रभावना नहीं होगी। कोई 5-10 रुपये की प्रभावना करता है। किसी ने उस 5-10 रुपये से चाट-पकौड़ी खा ली तो वे रुपये हाथ से निकल गए, क्या मिला? क्या मिला सोचो? प्रभावना सच्ची वह होगी जो जीवन में जीये। हम अनुभव करें हमारे लगाव की क्या स्थिति है? हमारा लगाव किससे है।

जब किसी से ज्यादा अटैचमेंट होता है, वह कहीं गया हो, उसके आने के समय में ही विलम्ब हो जाए, तो दिमाग में तरह-तरह के विचार आते हैं या दिमाग शांत रहता है? अधिकांश प्रसंगों पर दिमाग में निगेटिव चीजें ज्यादा आती हैं। बुरी कल्पना जल्दी आती है। सोचता है कि उसका एक्सीडेंट तो नहीं हो गया। बुरी कल्पना इसलिए जल्दी आती है क्योंकि मोह का बोलबाला है। मोह बुरी बात ही सोचेगा। मोह में अच्छी बात को जगह ही नहीं है। वह बुरी बात ही सोचेगा कि कहीं एक्सीडेंट तो नहीं हो गया! बीमार तो नहीं हो गया। उसका अपहरण तो नहीं कर लिया गया। अच्छी बातें सोचो कि कहीं साधु तो नहीं बन गया। कहीं गोचरी की दलाली में तो नहीं रुक गया। अभी जो जाते हैं वे तो पहले ही बता देते होंगे कि मैं म.सा. के साथ गोचरी में जाऊंगा।

समय पर न आए देर हो जाए मोबाइल, व्हाटस्-एप आदि क्या-क्या चल जाएंगे? वह कहां पर है, सुरक्षित है या नहीं? एक मिसकॉल होता तो पता चल जाता कि वहां पर मोबाइल उठाने वाला नहीं है, अब क्या होगा? फिर उसको देखते हैं कि कौन-से स्थान पर है? उनका लोकेशन देखते हैं। कौन-सी लोकेशन है मोबाइल की? घंटी तो जा रही है लेकिन उठा नहीं रहा है तो देखते हैं कि कौन-सी लोकेशन पर है? क्या हो रहा है? खुद खबर करते हैं या मोबाइल वाले से कहते हैं? मोबाइल वालों ने क्या-क्या धंधे चालू कर दिए हैं।

जंबू कुमार की कहानी में बताया है कि सुधर्मास्वामी के पास से जब उन्हें आने में विलम्ब हो गया तो माता अनेक विध चिन्ताओं से घिर गई। यह केवल उस मां की बात नहीं है। बात है मोह की, ममत्व की। कहानी में यह भी बताया है कि जंबू जब दीक्षा ग्रहण की बात कहते हैं तो माता धड़ाम से गिर जाती है।

रमेश जी! विकास श्री जी ने दीक्षा ली तो उनकी माता नीचे गिरी क्या? उनकी माता बेहोश हुई क्या? क्या परीक्षा लेंगे अब? जंबू कुमार की माता बेहोश हो गई, नीचे गिर गई, फिर भी जंबू कुमार माता को होश में लाने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। वहां खड़े हैं चुपचाप। उनके चेहरे पर कोई ऐसा हाव-भाव ही नहीं है, जिससे लगे कि कुछ हुआ हो। घर के बाकी लोगों ने उनको उठाया और होश में लाने का प्रयत्न किया। यह हो गई, 'जंबू कुमार

की परीक्षा।' अब न किसी से मोह है, न लगाव है और न ही किसी से कोई अटैचमेंट रहा। अब कोई अटैचमेंट नहीं है। जान लिया कि कौन किसका है? कोई किसी का नहीं है।

'जहां देह अपनी नहीं, वहां न अपना कोय'

जब मेरा शरीर भी मेरा अपना नहीं है तो है कौन मेरा? जंबू कुमार की पहली परीक्षा हो गई। जंबू कुमार ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। माता होश में आई तो रोने लगी किंतु फिर भी जंबू कुमार के चेहरे पर कोई भी परिवर्तन नहीं है, कोई बदलाव नहीं है। वे यह नहीं सोच रहे हैं कि अरे! माँ दुःखी हो रही है, क्या होगा? कैसे होगा? यह सब वैराग्य का अधकचरापन है। ऐसा हो रहा है तो समझ लो वैराग्य में अभी वो ज्योति नहीं है। रोशनी नहीं है। वैराग्य पक्का है फिर कुछ भी हो जाए कोई परिवर्तन नहीं होने वाला।

वह तो बेहोश ही हुई थी, यदि किसी की माता मर भी जाए, तो कुछ नहीं होगा। क्योंकि कोई किसी के लिए मरता नहीं है। अपनी मौत से आदमी मरता है। अपनी मौत आने से पहले बेमौत कौन मरेगा? निमित्त कोई भी आ जाए, कोई भी कारण हो किंतु व्यक्ति मरता है अपनी मौत से। ऐसे समय में भी वैरागी का मन अलग होता है। क्योंकि ये संयोग और वियोग झूठे होते हैं। चाहे कोई भी हो, उसे झूठा माना है।

मैं कल ही पढ़ रहा था कि एक भाई को आतंकी के शक में 22 साल जेल में रख दिया और कोर्ट में केस चलता रहा। 22 साल बाद कोर्ट का निर्णय आया कि वह निर्दोष है, इसका कोई अपराध नहीं है और उसे बरी कर दिया गया। बेचारे की जिंदगी खराब हो गई। संशय में ही उसकी जिंदगी के दिन चले गए। लोग मानते भी हैं कि ऐसा सरल आदमी था, कैसे इसको जेल में डाल दिया। 22 साल जेल में रहा। 22 साल के बाद निर्दोष पाया गया। हो सकता है पूर्व जन्म का कुछ रहा हो। जवानी का बुढ़ापा आ गया। अब बुढ़ापे में करे, क्या? बुढ़ापे में अब सहारा कौन देगा? कानून में अभी ऐसी व्यवस्था नहीं है कि निरपराध को पकड़ा गया तो उसका मुआवजा दिया जाएगा। उसको कौन देगा मुआवजा? भारत में ऐसी व्यवस्था है क्या? ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि जेल में किसी बेगुनाह को रखते हैं तो पुलिस से मुआवजा वसूल किया जाए। ऐसा होगा तो पुलिस को सोच-समझ कर कार्य करना पड़ेगा। इसी का नाम संसार है, जहां कई बार गुनहगार बच जाता है

और बे-गुनाह व्यक्ति पकड़ा जाता है। यहां कोई भले ही बच जाए कर्म से कोई नहीं बच सकता। उसका न्याय बराबर है। राजा हो या रंक उसके दरबार में सब समान हैं।

बन्धुओ! विषय चला था धर्म-भावों को कैसे प्रवर्धमान करें। धर्म-भावों के प्रवर्धमान हेतु हमें समत्व-दर्शी बनना होगा। न काहू से दोस्ती ना काहू से वैर। न किसी से लगाव और न ही किसी से द्वेष। ऐसा संवेग-निर्वेद भाव आएगा तो धर्म-भाव प्रवर्धमान बन पाएगा। समत्व भाव से तत्त्व पर समीक्षा-अनुप्रेक्षा करें। सत्य मिलेगा। धन्य बनेंगे।

31 जुलाई, 2019

13

जिब्भिंदियनिग्गहेणं किं जणयइ

जिब्भिंदियनिग्गहेणं मुणुन्नामणुण्णेसु रसेसु राग-दोसनिग्गहं जणयइ....

एक जगह चार व्यक्ति बैठे हुए हैं। उन व्यक्तियों के बारे में हमें निर्णय करना हो कि कौन धर्मात्मा है और कौन धर्मात्मा नहीं है तो हमारे पास परीक्षण का कौन-सा सूत्र है? हमारे पास कौन-सा थर्मामीटर है, जिससे हम जान सकें कि यह व्यक्ति धर्मात्मा है और यह व्यक्ति धर्मात्मा नहीं है? अमुक व्यक्ति धर्म क्रियाएं कर रहा है, किन्तु धर्म का स्पर्श नहीं कर पाया है, किसके आधार पर जान पाएंगे? क्या है, हमारे पास जानने के लिए? पहले समीक्षा करो।

कौन-सा थर्मामीटर लगावें जिससे मालूम पड़ जाए कि कौन धर्मात्मा है और कौन नहीं। जैसे बुखार आने पर थर्मामीटर लगाकर चेक करने से मालूम पड़ जाता है कि बुखार है, वैसे ही एक ऐसा थर्मामीटर हो, जिससे हमें मालूम पड़ जाए कि कौन धर्मात्मा है और कौन नहीं है।

सूत्र के रूप में एक ऐसा थर्मामीटर है जिससे हम जान सकते हैं कि कौन धर्मी है और कौन केवल धर्म क्रिया कर रहा है? कौन धर्म का ड्रामा कर रहा है और कौन असली पात्र है? हरिश्चंद्र का ड्रामा हो रहा है, रामायण का मंचन हो रहा है, रामलीला हो रही है। राम अब नहीं रहे। रावण अब रहा नहीं किन्तु कोई राम बन जाता है और किसी को रावण बनाया जाता है। यह औपचारिक है। कौन औपचारिक धर्म की आराधना करने वाला है और कौन सच्चे धर्म को समझ पाया है, इसकी बहुत सुंदर व्याख्या हमें आगम पाठ देते हैं। जिस सूत्र की मैं बात कर रहा हूं, वह है–

"सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ"

प्रश्न पूछा गया, धर्म के प्रति श्रद्धावान कौन है? धर्म श्रद्धा व्याप्त होने, प्रकट होने का लक्षण क्या है? उसकी पहचान क्या है? कैसे पहचानें कि

किसी के भीतर धर्म श्रद्धा प्रादुर्भूत हो गई। भगवान ने यह नहीं बताया कि 11 सामायिक करने वाला धर्मात्मा है या पौषध-प्रतिक्रमण करने वाला। यह भी नहीं बताया कि साधु की पोशाक पहनने वाला धर्मात्मा है या नग्न रहने वाला। भगवान ने गहराई से उस बात को पकड़ने के लिए, सही निर्णय कर सकने के लिए कहा– 'साया सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ' पांच इंद्रियों के विषय में अब तक जो मतवाला बना हुआ था धर्म श्रद्धा प्रकट होते ही, उसे उससे विरक्ति हो जाती है। अब पांच इंद्रियों के विषय उसे गुमराह नहीं कर सकते।

अंधेरे में बिजली का स्विच ऑन करने पर अंधेरा भाग जाएगा और प्रकाश हो जाएगा। यह हमें समझना होता है कि स्विच ऑन करने से बदलाव आया या नहीं आया। स्विच ऑन हुआ तो परिणाम आया या नहीं? बदलाव आया। अंधेरे की जगह प्रकाश आ गया।

यह हम अनुभव कर रहे हैं। यह अनुभव हमें धर्म के क्षेत्र में भी होना चाहिए। एकदम स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह धर्म में जी रहा है। इसके भीतर धर्म की ज्योति, धर्म की श्रद्धा प्रकट हो गई है। भगवान ने बताया कि 'सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ'।

बच्चों को क्या प्रिय होता है? बच्चों को खिलौना प्रिय होता है। बच्चे को खिलौना दे दो, वह उसमें मग्न हो जाएगा। लेकिन वही खिलौना 20 वर्ष की उम्र के बाद देंगे तो क्या होगा? यह बताया गया है कि यदि उसमें गहरी समझ नहीं आई है तो उसकी उन खिलौनों में रुचि होगी, वह उन खिलौनों से राजी होगा किन्तु जिसे समझ आ गई है, वह उनसे राजी नहीं होगा।

जिनकी समझ परिपक्व नहीं बनी है, वह तो राजी हो सकता है किन्तु जिसमें समझ आ गई है, वह उन खिलौनों में ही खेलेगा या और आगे बढ़ने की सोचेगा? बताओ क्या करेगा? आपके विचार में क्या होना चाहिए? खिलौनों में खेलता रहे या आगे बढ़कर, कुछ करे? हमारी समझ अभी खिलौनों में हैं या किसमें है? मित्रो! हम किसमें राजी हो रहे हैं? अभी सुन रहे थे, संयोग की बात, हम बाहर के संयोग में राजी हो रहे हैं। बाहर के संयोग से हम खुश हो रहे हैं या तटस्थ बने हुए हैं? यह बताओ कि जोधपुर में जो भी बाहर के लोग आए हैं, बाहर से जो भी दर्शनार्थी आए हैं, उनको यहां अप-टू-डेट रहने की सुविधाएं मिल रही हैं, रहने के लिए बढ़िया आवास मिल रहा है तो वे खुश हुए

या खुश नहीं हुए? यदि ऐसे स्थान पर ठहरा दिया जहां पर सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, तो आपके मन की प्रतिक्रिया क्या होगी? क्या प्रतिक्रिया होगी? (प्रतिध्वनि– अलग-अलग प्रतिक्रियाएं होंगी) किन्तु क्या होगी वह बताओ? आप कह रहे हो कि जहां रोके वह बढ़िया ही है। मान लो ऐसी जगह आप रुके, जहां पानी की बालटी भरकर बाहर से लानी पड़े, तो क्या कहोगे? मेरे खयाल से तो बाहर निकलते ही आप यही कहोगे कि, चातुर्मास करा लेते हैं, व्यवस्था का कोई अता-पता नहीं है। बोलो, क्या प्रतिक्रिया होगी आपकी? यही होगी न कि चातुर्मास करवा लेते हैं, आने वाले लोगों के लिए व्यवस्थाएं हैं ही नहीं। कोई सार-संभाल नहीं है। कोई खयाल ही नहीं है।

आपकी व्यवस्था के लिए, आपकी सार-संभाल के लिए, कई स्थानीय लोग व्याख्यान नहीं सुन पाते। कितने लोगों को धर्म-ध्यान छोड़ देना पड़ता है। कितने लोगों की सामायिक, स्वाध्याय और ज्ञान-ध्यान में बाधा पहुंचती है। अप-टू-डेट व्यवस्थाएं मिलने के बाद, धर्म-ध्यान कितने करते होंगे? व्यवस्था मिलने के बाद कितना अंतर आएगा? क्यों यहां रोज-रोज महेश जी को बोलना पड़ता है कि बाहर से आने वाले कम-से-कम पांच सामायिक करेंगे। क्या केवल पांच सामायिक ही होगी? पांच सामायिक करने में एक दिन में कितना समय लगता है? पांच सामायिक करने में चार घण्टे लगते हैं। एक दिन क्या चार घंटे का ही होता है? दिन चार घंटे का ही होता है क्या? पांच सामायिक के चार घंटे हो गए। बाहर से आए हुए कहेंगे कि हमने छह बजे से 10 बजे तक सामायिक कर ली क्योंकि महेश जी ने कहा था कि कम-से-कम पांच सामायिक करो। पांच सामायिक कर ली अब दिनभर चाहे जो करो। दिनभर बाहर घूमने निकल जाओ तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसे ही करोगे क्या? यदि नैतिकता की बात करें तो हमारे कारण दूसरों को नुकसान पहुंचता है। दूसरों को व्यवधान हुआ, हमारी व्यवस्था करने के लिए दूसरों को व्यस्त होना पड़ा है तो हम पूरा समय धर्म ध्यान में लगाएंगे। इधर-उधर देखने में हमें टाइम बर्बाद नहीं करना चाहिए। हम देखें कि व्याख्यान में जितने लोग आते हैं, उतने वांचनी में हैं या नहीं हैं? क्या हमने वांचनी का लाभ लिया। रात्रि प्रश्नोत्तर में उपस्थित थे या नहीं? हम यहां आए हैं तो हमने कुछ लाभ उठाया या नहीं?

जो बाहर घूमने के लिए, देखने के लिए जाते हैं इसमें उनका आना सार्थक हुआ क्या? हम यहां मेला देखने के लिए आए हैं या कुछ करने के

लिए? हमें सोचना पड़ेगा, हमें विचार करना पड़ेगा। हमें देखना है कि हमारे भीतर धर्म का बोध पैदा हुआ है या नहीं? हमारे भीतर धर्मश्रद्धा प्रकट हुई है या नहीं? धर्मश्रद्धा ऐसी होनी चाहिए कि हमारे सामने बैंड-बाजा, ढोल-ढमाका बजता रहे, लोग गीत गाते हुए चले जाएं तो भी उसको देखने के लिए उठें नहीं। हमारी दृष्टि उसको देखने के प्रति नहीं जाए।

किसी की बरात जा रही है। किसी की मृत्यु या शादी का जुलूस निकल रहा है तो भी हमारा ध्यान भंग नहीं होना चाहिए। महाराज साहब! दीक्षा का जुलूस तो देख सकते हैं? क्यों देख सकते हैं? यदि दीक्षार्थी जुलूस को देखता है कि पीछे कितने लोग हैं तो क्या होगा? अब धर्म का रंग लग गया है, अब बाहर से नाता टूट गया है। जब तक उसका बाहर का सम्पर्क, मोह बना हुआ था, तब तक भीतर का, धर्म का रस उसको नहीं मिला। तब बाहर के रस से कोई मतलब नहीं रहता जब धर्म के रस का लाभ हमें मिल गया।

पहले हमें खिलौना मिला तो हम राजी हुए। समय बीतने के बाद यदि हम खिलौनों से खेलेंगे तो लोग बोलेंगे कि 20 साल का है और अभी तक बच्चों का खेल खेलता है। अब तो हमारी धर्म-ध्यान करने की उम्र हो गई। 20 साल के हो गए होंगे, 40 साल के हो गए होंगे पर अभी तक हम बच्चों का खेल खेल रहे हैं? अभी तक खिलौनों से खेलते हैं क्या? अभी कौन-सा खेल खेला जा रहा है? अभी भी घर में रसोई में ऊंचा-नीचा हो गया, खाने में ऊंचा-नीचा हो गया, खाना थोड़ा खराब बन गया तो हम मन में लगा लेंगे, मन ऊंचा-नीचा होने लग जाएगा। (सभा में– हंसी) हंसना मत अब। यह हंसने की बात नहीं है, सोचने की बात है। खाने में नमक कम हो गया, हलवे में शक्कर की जगह नमक डल गया तो गुस्सा तो नहीं आएगा ना। आ जाएगा या नहीं आएगा? नमक भी खाते हो या नहीं खाते हो? नमक को हलवे में डाल दिया शक्कर की जगह, तो समझ लो कि हलवा नहीं उपमा हो गया। ठीक है कि उपमा चावल से या किसी और दूसरे पदार्थ से बनता होगा किन्तु आज आटे का या गेहूं का बन गया तो कोई उसे खाएगा या नहीं खाएगा? कोई-ना-कोई खाने की ही चीज बनी है ना। हमें तो जीने के लिए खाना है। खाने के लिए थोड़ी खाना है।

पीरदान जी बोथरा को देखो। वे यहां से ज्यादा दूर के रहने वाले नहीं थे। जोधपुर के पास ही तिवरी के रहने वाले थे। जब वे भोजन के लिए बैठे तो उनकी मां ने गलती से उनको खिचड़े की जगह बांटा (पशुओं के खाने

के लिए बना) परोस दिया। वे उसको ही खाकर चले गए। उन्होंने कोई विचार मन में नहीं किया? कोई भी विचार नहीं आया। उनका एक ही विचार था कि भोजन करना है, पेट भरना है। यह धर्म की श्रद्धा का रंग है। हम कह सकते हैं कि वे धर्मात्मा थे। धर्म का रंग उनको लग गया था। कोई भी भोजन मिले, कोई टीका टिप्पणी, कोई ऊहापोह नहीं।

बाद में जब मां को मालूम पड़ा कि मैंने खिचड़े के स्थान पर बांटा परोस दिया तो उसे दुःख हुआ। उसने उनसे कहा कि बेटा तुमने बताया नहीं, मैंने क्या परोस दिया था। तब उत्तर दिया मां पेट ही भरना था, वह भर गया। स्वाद की ओर ध्यान नहीं है। जब हम कोई दवाई या गोली जीभ के पिछले भाग पर रखकर खाते हैं तो स्वाद का पता नहीं चलता। अगर जीभ के अग्र भाग पर रखते हैं तो उसके स्वाद का पता चल जाता है। यह छोटी-सी जीभ है उसमें भी इतना फर्क आ जाता है। बीच के एक इंच के स्थान में ही हम स्वाद का पता लगा सकते हैं। हमारे शरीर का इतना छोटा-सा भाग, हमारे मन में तूफान लाने वाला बन जाता है।

भगवान महावीर से पूछा गया जिब्भिंदिय-निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ? जिब्भिंदय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु राग-दोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से जीव को किस फल की प्राप्त होती है। मनोज्ञ, अमनोज्ञ, के प्रति राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करता है। ये मनोज्ञ है, ये बुरा है। इस प्रकार मनोज्ञ पर राग, अमनोज्ञ पर द्वेष की प्रतिक्रिया से बच जाएगा और राग-द्वेष से जिन कर्मों का उपार्जन करने वाला होता है, उन कर्मों का उपार्जन नहीं करेगा और पहले के बंधे हुए कर्मों की निर्जरा करने वाला बनेगा।

एक तीर से कितने निशाने हो गए? आप विचार कीजिए। ये केवल आपको सुनाना नहीं है, हमें स्वयं को भी यह सुनना है कि हमारे मन में भी कम नमक, कम मिर्च, कम मसाले में और बदरूप में, स्वाद-बेस्वाद वाले व्यंजनों में हमारा मन भी क्या बोलता है? हमारा मन भी यदि वैसा ही बोल रहा है तो हम भी बचपन के खिलौनों से ऊपर नहीं उठ पाए हैं। अभी तक हम भी उन खिलौनों से खेल रहे हैं।

यह तो मन की बात है, जो स्वयं जान सकता है। इसे और कोई नहीं जान सकता है। हमारा पड़ोसी नहीं जान सकता है। आजकल सेल्फी लेते हैं

ना। व्यक्ति अपनी फोटो स्वयं लेता है। स्वयं की फोटो स्वयं लेना सेल्फी है। हम अपनी सेल्फी लेते हैं। अपने चेहरे की सेल्फी लेते हैं। अपनी पोशाकों की सेल्फी लेते हैं। कभी अपने मन की सेल्फी ले लो कि मेरा मन क्या बोल रहा है? हम भोजन करने के लिए गए। किसी ने हमको निमंत्रण दिया। हमने मना किया। उसने बहुत आग्रह किया। बार-बार आग्रह किया तो हम चले गए। संसार में हैं तो एक-दूसरे का मान रखना पड़ता है इसलिए चले गये। खाने पर गए। वहां आपके पास एक और व्यक्ति के लिए भी भोजन की थाली लगाई गयी है। आपके पास में जो बैठे हैं उसको बादाम की कतली परोसी गई है और आपको मक्की की घाट परोसी गयी। ऐसा होने पर मन में कोई फर्क तो नहीं आएगा? (प्रतिध्वनि– आएगा।) क्या मक्की की घाट से पेट नहीं भरता है? आप अभी मन में गुनमुन करोगे तो मुझे मालूम कैसे पड़ेगा? दूसरे की थाली में मन चला जाएगा। वैसे ही दूसरों की थाली में मन जाता ही है। इसी पर कहावत बन गई कि पराई थाली में घी घणों दिखे।

यदि हमारा मन नहीं जाता, हमारी आंखें नहीं जाती तो यह कहावत बनती ही नहीं। पराई थाली में घी घणों दिखता है। हमें अपना नहीं दिखता। हम दूसरे का देखते हैं। पराये का देखना चाहते हैं। दूसरों की थाली में देखना चाहते हैं। जो दूसरों की थाली में देखता है, वह सुखी नहीं होता है। वह हमेशा दुःखी ही होता है। भले ही उसको कितना भी अच्छा भोजन परोसा गया है, उसको यही लगेगा कि दूसरे की थाली में ज्यादा ही है।

मान लो दोनों की थाली में फुलका परोसा गया। परोसते समय दूसरे व्यक्ति की थाली में फुलके से घी की एक बूंद नीचे गिर गई। इससे दूसरे को यह लगा कि मेरे फुलके पर घी कम डाला गया है। उसके फुलके में घी ज्यादा डाला गया है। इसी कारण से मारवाड़ी में कहावत बन गई कि 'पराई थाली में घी घणों दिखे'। पराई थाली में घी ज्यादा नजर आता है क्योंकि हम तृप्त नहीं हैं। हमें अपने प्रति संतुष्टि नहीं है। इसलिए हमें दूसरी चीज ज्यादा दिखाई देती है, किन्तु यह चीज हमें सुखी बनाने वाली नहीं है। हमारा पड़ोसी क्या खाता है इससे कोई मतलब नहीं रखकर मुझे किससे पेट भरना चाहिए, मुझे उसी में अपना ध्यान रखना है।

शालिभद्र के पूर्व जीवन में संगम नाम का बच्चा, क्या खा रहा था? (प्रतिध्वनि– खीर) वह तो एक दिन मिली, रोज लूखी, सूखी रोटी खा रहा था। सब्जी का भी पता नहीं था। आज भी भारत में ऐसे लोग हैं या नहीं हैं?

लूखी रोटी जीमने वाले हैं या नहीं हैं? हमने एक व्यक्ति की रोटी पर चार जनों की रोटी पर डालने वाला घी डाल दिया तो कितने लोग लूखा खाएंगे? चार लोगों का घी आप खा रहे हैं तो उन चार लोगों को लूखी रोटी खानी पड़ेगी ना। हमको एक लीटर दूध पीना है तो कितने लोगों को बिना दूध के रहना पड़ेगा? कुछ लोगों को दूध के बिना रहना पड़ेगा या नहीं? दूध का उत्पादन गांवों में होता है और गांव के बच्चों को दूध नहीं मिल पाता है? सारा दूध शहरों में आ जाता है।

सरकार कहती है कि शहर के लोग गायें नहीं रखेंगे। गायें तुम पाल नहीं सकते। गायों को तुम नहीं रख सकते हो तो दूध कैसे पीओगे? अगर गाय का दूध शहर में आना बंद हो जाये तो क्या होगा? जीवन चलेगा या नहीं चल पाएगा? जीवन चल जाएगा क्या? जीवन आराम से चले, यह जरूरी नहीं है। दूध हमको चाहिए, घी हमको चाहिए पर हम गाय रखने के लिए तैयार नहीं हैं। गायों की देखरेख करने के लिए तैयार नहीं हैं। कहते हैं कि अरे! बापजी खर्च बहुत हो जाता है। खर्च तो पड़ता है, लेकिन ये खर्च किसके लिए है?

आनंद श्रावक 40 हजार गायों का पालन कर रहा था। कामदेव श्रावक 60 हजार गायों को लेकर चल रहा था। वह एक नहीं अनेक गोशालाओं की देखरेख कर रहा था। क्या उसका खर्च नहीं हो रहा था? आपको एक या दो गाय के लिए खर्च हो रहा है, उतना भी करने को तैयार नहीं तो फिर गायों के दूध, घी, मक्खन, दही, छाछ के लिए मन क्यों ललचा रहे हो? विचार कर लो कि हम दूध नहीं पीयेंगे। छाछ, दही कुछ भी नहीं लेंगे। ऐसा नहीं होता है तो फिर कैसे होना चाहिए? खाने-पीने की हमें बढ़िया से बढ़िया चीज चाहिए। हमारी जीभ को स्वाद देने वाला चाहिए। चाहे मेरे शरीर को हानि पहुंचा दे किंतु जीभ को स्वाद लेना है। किसी को सुगर हो गया, फिर भी वह बिना मीठा खाए नहीं रह सकता। उसको मीठा चाहिए तो वह सैकरीन की गोली मिलाकर खाएगा। सैकरीन की गोली नुकसान करती है फिर भी यह सोचते हैं कि हो जाएगा तो हो जाएगा नुकसान। अभी तो अच्छी तरह से जी लेते हैं। एक दिन आयम्बिल करना उसके लिए भारी पड़ता है। सफेद नमक नहीं तो काला नमक सही, लाल मिर्च नहीं तो काली मिर्च ही सही। क्यों? लाल मिर्च ने क्या बिगाड़ा तुम्हारा? धोला नहीं तो काला नमक सही। नाम से और दाम से कोई मतलब नहीं है। मतलब

है स्वाद लेने से और स्वाद लेने के लिए हम कुछ भी कर सकते हैं। फिर आयम्बिल हम करते ही क्यों हैं?

आचार्य पूज्य गुरुदेव संत मंडली में विराज रहे थे कि गोचरी आ गई। किसी पातरी में फटा हुआ दूध आ गया या दूध फट गया। अब इसे कौन ले? समुद्र मथने पर बहुत सारे रत्न निकले। सभी अलग-अलग रत्न लेकर जा रहे थे। अमृत, देव ले गए। जहर निकला तो कौन लेगा? (प्रतिध्वनि– महादेव) महादेव लेंगे पर ये बताओ कि महादेव कौन हैं? अमृत ले जाने वाले देव और जहर ले जाने वाले महादेव बन गए। देव, महादेव नहीं बन सके। अमृत का पिटारा देवता ले गए किन्तु वे देव ही बने रह गए और जिसने जहर पी लिया वह महादेव बना। महादेव ने कहा कि तुम लोग जो चाहे ले जाओ। जो बचेगा वह मेरा। बचा जहर। जहर किसने पीया? महादेव शंकर ने जहर पीया।

शंकर का अर्थ क्या होता है? महादेव का अर्थ क्या होता है? जिसके भीतर दिव्य शक्ति होती है, जो देवों के देव होते हैं, उसको महादेव कहते हैं। जो सम कर दे, कल्याण करे, आनन्द दे, वह होता है, 'शंकर'। जिसने सारी दुःख-दुविधाओं को स्वयं झेला और दुनिया को सुख दिया, जहर स्वयं पीया, वह होता है 'शंकर'।

हम शंकर बनना चाहते हैं या महादेव बनना चाहते हैं? हम देव बनना चाहते हैं या दानव बनना चाहते हैं? क्या बनना चाहते हैं? देव या दानव? देव बनना चाहते हैं तो कैसे बनें? देव कैसे बनें? देव बनने का तरीका होता है। कहने मात्र से देव नहीं बन जाएंगे। अपने भीतर हमको दिव्यता पैदा करनी पड़ेगी। दिव्यता पैदा करेंगे तो अपने आप भीतर देव पैदा हो जाएगा।

संत विचार ही कर रहे थे कि फटा हुआ दूध कौन पीयेगा इतने में आचार्य श्री ने पातरी उठाई और फटा हुआ दूध पी लिया। क्या कोई नुकसान पहुंच रहा है? हम छेना खाते हैं, छेने का निकाला हुआ पानी पीते हैं जो पेट के लिए बड़ा फायदेमंद होता है। वह फायदा जब होगा तब होगा, अभी तो हमको दिख रहा है कि फटा हुआ दूध है। वे पी जाते हैं।

श्री गणेशाचार्य के समय की घटना है। एक बार पात्र में घी आया। उसमें सर्प का बच्चा निकल गया। संत कहने लगे कि इसको परठना पड़ेगा किन्तु आचार्य देव ने वह सर्प का बच्चा उस घी में से बाहर निकाला और घी

पी लिया। क्या होगा? एक कहावत है ना कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' कहते हैं कि मीरा को जहर का कटोरा दो बार पिलाया गया, लेकिन कुछ भी नहीं बिगड़ा उनका। हमारा मन भक्ति रंग में, धर्म रंग में रंगा हुआ है तो हमारा क्या बिगड़ेगा? मेरा कोई क्या बुरा कर सकेगा? किन्तु हमारे मन में अगर थोड़ी भी खोट आएगी तो उसका असर हो जाएगा।

हमने यह कहानी बहुत बार सुनी है कि भगवान महावीर को चंडकौशिक ने डंक लगा दिया था। भगवान महावीर को विष भरी आंखों से देखा भी किन्तु कोई भी फर्क नहीं पड़ा। भगवान ने कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं की तो चंडकौशिक सोचने लगा कि यह कैसा आदमी है जिसे मेरे काटने के बावजूद कुछ फर्क नहीं पड़ रहा है। चंडकौशिक का गुस्सा और बढ़ गया। वह सोच रहा है कि कौन-सा लौह पुरुष है जो निर्भयता से खड़ा है। उसने फिर जोर से डंक लगाया। गुस्से से डंक लगाया। क्या भगवान महावीर बेहोश होकर गिर गए थे? (प्रतिध्वनि– नहीं) उस जहर के बदले भगवान महावीर ने क्या दिया था, चंडकौशिक को? भगवान महावीर ने कहा, चंडकौशिक 'संबुज्झह' बोध को, संबोध को प्राप्त कर, तुम भी किसी युग में साधु थे। तुम भी किसी जीवन में संत थे। क्रोध के कारण तुम चंडकौशिक के रूप में बने हो। भगवान महावीर ने बोध कराया तो चंडकौशिक ने आभार व्यक्त करते हुए क्षमा याचना की। वह विचार करता है, अब मेरे कारण से किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुंचे। वह सोचता है कि मेरी आंखें खुली रहेंगी तो किसी को जहर लग जाएगा। अब किसी को जहर नहीं लगना चाहिए। चंडकौशिक ने अपना मुंह बिल में डाल दिया। धर्म पैदा हुआ या नहीं?

कोई हमको एक गाली देता है तो सामने वाले को कितनी गाली देते हैं। 4 सुनाते हैं या 14 सुनाते हैं? नहीं सुनाते हैं तो भी मन में फर्क आता है या नहीं आता है।

धर्म जिनेश्वर, गाऊं रंग सूं ....

मेरे सामने घड़ी लगाई गयी है। इसमें कल भी 8:05 बज रहे थे और आज भी 8:05 बज रहे हैं। यह घड़ी शांत है, इसको कोई फर्क नहीं पड़ रहा है कि बाहर क्या हो रहा है। ठीक ऐसे ही आप लोगों का पूरा ध्यान धर्म में लगा होना चाहिए। बाहर क्या हो रहा है, कुछ मतलब नहीं हो। तभी हम सुन पाएंगे, ध्यान से। जैसे घड़ी शांत है, वैसे ही दिमाग को भी शांत रखकर सुनें। यदि घड़ी की तरह शांत हो जाते हैं तो हमारा दिमाग भी शांत हो जाता है।

क्यों हम जंबू कुमार को हजारों बार नमस्कार कर रहे हैं? क्यों ले रहे हैं उनका नाम? क्या खासीयत है उनमें?

उन्होंने साता-सुख को छोड़ा, वे उससे विरक्त हो गए। माता-पिता ने प्यार जताया तो उन्होंने कहा यह आप सब का प्रेम है। यह प्रेम पाकर मैं अपने आप को धन्य मान रहा हूं फिर भी मेरे मन में चैन नहीं है। मेरे मन में संतुष्टि नहीं है। आज मैंने सुधर्मास्वामी की बात सुनकर यह जाना है कि संयोग निश्चित रूप से वियोग में बदलता है। संयोग, गिरगिट के रंग जैसा वियोग में बदल जाता है। एक भी ऐसा संयोग नहीं है जिसका वियोग नहीं हुआ हो।

जंबू कुमार बोल रहा है कि जितने भी संयोग हैं, उनका वियोग निश्चित है। संतान पैदा होने पर उसको पिता का संयोग मिलता है। यह भी एक दिन वियोग में बदलेगा। हमारा शरीर एक संयोग है। इसका वियोग होगा या नहीं होगा? एक भी ऐसी चीज बता दो जिसका संयोग हुआ है और वियोग नहीं हुआ है। हर संयोग का अंत वियोग में हुआ है। मेरा आपका जो भी संयोग है, जो भी आप लोगों का मेरे प्रति प्रेम है, उसका वियोग होना निश्चित है। वह भी वियोग में बदलने वाला है।

हम कितनी भी बातें समझ लें, समझा दें, किन्तु सही तो सही है। सत्य तो सत्य है, यथार्थ तो यथार्थ है। उसे कभी झुठलाया नहीं जा सकता है। उसको कभी बदला नहीं जा सकता है। दुनिया बदल सकती है, किन्तु सत्य कभी बदल नहीं सकता है। क्या सत्य का रूप बदल सकता है? भगवान महावीर के समय के सत्य का रूप-रंग कुछ और था? हमारे जमाने में सत्य का रूप-रंग कुछ और हो गया है? आने वाले छठे आरे में सत्य का रूप कुछ और हो जाएगा? सत्य बदल नहीं सकता है। आदमी के विचार बदलते हैं आदमी बदलता है, किन्तु सत्य कभी नहीं बदलता है।

भगवान महावीर के युग में, ऋषभदेव भगवान के युग में सत्य का रूप जैसा था, वैसा ही आज के जमाने में है और आने वाले समय में भी उसका वही रूप रहेगा। सत्य में कोई बदलाव नहीं आ सकता है। अहिंसा, सत्य में बदलाव नहीं हो सकता है। सत्य की पालना में, अहिंसा की पालना में फर्क हो सकता है। कोई अहिंसा की पालना बीस बिस्वा कोई 16 बिस्वा पालता है तो कोई दो तो कोई एक बिस्वा पालता है। किन्तु अहिंसा तो अहिंसा ही है, उसका रूप वही रहता है।

सोना 24 कैरेट का होता है। कोई उस सोने का आभूषण बनाता है तो 22 कैरेट का, कोई 20 कैरेट का आभूषण बनाता है तो कोई 18 कैरेट और कोई 16 कैरेट के बना लेता है। यह उस पर निर्भर है कि कितना खार मिलाया किन्तु शुद्ध सोना की बात करें तो 24 कैरेट का सोना शुद्ध सोना होगा। वैसे ही सत्य 24 कैरेट का रहता है। यह हमारे पर निर्भर है कि हम कितना हासिल कर पाते हैं।

जंबू कुमार कहते हैं पिता जी! हम सत्य को झुठला नहीं सकते। क्योंकि संयोग, वियोग में बदलता ही है। बेटा मर जाता है और बाप देखता है। कहीं बाप के सामने बेटे की लाश पड़ी रहती है। वह उसको जला देता है। यह किसी एक घर की कहानी नहीं है। यह घर-घर की कहानी है। एक भी घर ऐसा बचा हुआ नहीं है, जहां किसी की मृत्यु नहीं हुई है। एक भी ऐसा ठिकाना है क्या, जहां मौत नहीं हुई है? सूई की नोक रखने जैसी जगह भी है क्या, जहां से मृत्यु नहीं हुई है?

एक पुरानी घटना याद आती है। मृत्यु शय्या पर दानवीर कर्ण पड़े हुए थे तब पाण्डवों ने बोला तुम्हारे मन की मुराद क्या है? तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है? दानवीर कर्ण ने कहा कि ऐसी जगह पर मेरा दाह संस्कार हो जहां पर कभी दाह संस्कार नहीं हुआ हो। कहते हैं कि पाण्डव घूमते रहे, लोगों से पूछते रहे। एक जगह से दूसरी जगह पर चलते रहे किंतु ऐसा स्थान नहीं मिला। बहुत घूमने के बाद पाण्डवों ने सोचा पर्वत की चोटी पर चलते हैं। वहां ऐसी जगह होगी। पाण्डव, कर्ण के शव को लेकर पर्वत की ऊंची चोटी पर जाते हैं। कहते हैं चोटी का बहुत छोटा-सा स्थान था, चोटी का, सर्वोच्च छोटा-सा स्थान था वहां पर दाह संस्कार के लिए तैयार होते हैं। दाह संस्कार करने वाले होते ही हैं कि तत्काल जोरदार बिजली की चमक के साथ आकाशवाणी होती है। वह एक देव वाणी थी। क्या देव वाणी हुई?

अत्र द्रौणशतं दग्धं, पाण्डवानां शतत्रयम्।
दुर्योधनसहस्राणि, कर्णसङ्ख्या न विद्यते॥

यहां पर द्रोणाचार्य नाम के 100 आचार्यों का दाह संस्कार हो चुका है और 300 पाण्डवों व हजारों कौरवों को यहां पर जला दिया गया है और कर्ण नाम के व्यक्तियों की संख्या की तो गिनती ही नहीं है। पाण्डवों ने विचार किया अब जलाने के लिए कोई जगह नहीं है जहां पर कोई मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है।

संयोग कभी स्थिर नहीं है। लाड़-प्यार भी सदा नहीं रहने वाला है। मेरा और आपका संयोग सदा रहने वाला नहीं है। पंडाल सदा रहने वाला नहीं है। आप ऐसे ही व्याख्यान सुनते रहेंगे? (प्रतिध्वनि– नहीं) यह एक निश्चित समय तक ही रहेगा। इसका भी वियोग होगा। कहते हैं श्री कृष्ण ने गुरु से वरदान मांगा था कि मुझे माता के हाथों से भोजन मिले और वर्षों तक मिला। मोह के कारण हम लाड़-प्यार लड़ाते हैं। किंतु वही संयोग, वियोग में बदलता है तो वह पीड़ा देने वाला हो जाएगा।

एक माता कहते हुए मिलती है कि शादी के दो साल बाद ही छोरा बदल गया। मतलब तुम्हारा जादू नहीं चला। 25 साल माता के साथ रहा। वह मां उसको बदल नहीं पाई और शादी होते ही दो साल में बदल गया तो जादू किसका चला? इसका मतलब पावरफुल कौन हुआ? पावरफुल बहू हुई या माता? बहू पावरफुल हो गई ना।

बेटा बदला या नहीं बदला पर मां की आंख जरूर बदल गई। आंख बदली तो सोच बदल गई, समझ बदल गई। क्योंकि माता ने वैसा ही देखना शुरू कर दिया कि यह तो बहू की बात मान रहा है! यह जरूरी नहीं है कि वह बहू की बात मान रहा है, लेकिन वह वैसा देखने लग जाती है। वह उस नजरिये से देखने लगती है कि वह बहू की ही बात मानता है। यहां पर यदि मैंने चश्मा रंगीन लगाया होता तो ये धोली चादरें मुझे धोली नहीं दिखाई देती। रंगीन चश्मा पहनते हैं तो रंगीन चादर दिखेगी। काले कलर का चश्मा पहनते हैं तो चादर काले कलर की दिखेगी। हम जैसा चश्मा लगाते हैं, वैसा ही रंग दिखता है। हमारे मन में फर्क आ जाए तो हमें आदमी में फर्क दिखने लग जाता है।

एक जगह चमकने वाली चीज पड़ी है और दूसरी जगह पर दर्पण लगा हुआ है। उस पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो रिफ्लेक्शन होता है। वैसा ही हमारा मन है। विचारों में परिवर्तन की स्थिति बड़ी कठिन होती है। मन की किरणें जहां पड़ती हैं, अपना असर डाल देती हैं फिर यह फर्क आत्मा में उतर जाता है। फर्क मन में आता है फिर उसके वही फर्क आत्मा में और जीवन में पड़ेगा। वह भले ही जान नहीं पाएगा किंतु उठते-बैठते उसको एक चिंता रहती है कि फर्क पड़ गया, फर्क पड़ गया। फर्क पड़ गया तो क्या करना? मुझे कितने दिन जीना है?

माता यदि सोच ले कि बेटे का दायित्व मेरे प्रति है तो बहू के प्रति भी है। उसके प्रति दायित्व का निर्वाह नहीं करता तो वह अपने दायित्व से गिरता है। कुछ माताएं कहती हैं कि मुझे तो पहले ही लगता था कि यह बदल जाएगा। जब पता ही था, तो फिर बेटे को जहर क्यों दिया? माता कहती है कि मुझे तो पड़ोस में देखकर पता लग गया था कि बहू आने के बाद बेटा बदल जाता है, छोरा बदल जाता है। जब पता था तो शादी क्यों की? जान-बूझकर जहर क्यों दिया? जान-बूझकर बेटे के हाथ में अंगारा क्यों डाला? आपने सब कुछ देखकर किया। बहू को आपने देखा। बेटे ने नहीं देखा। बहू देखकर आपने ही शादी की तैयारी की। बेटे ने कभी ऐसे नहीं बोला कि मेरी शादी करनी है। आजकल तो कहते ही नहीं हैं। सीधे शादी करके ही घर पर आते हैं। आप सोचते रह जाते हो, इंतजार करते रह जाते हो और बेटा बहू लाकर खड़ी कर देता है। पहले मुंह से शादी करने के लिए बोलते तक नहीं थे कि मेरी शादी कब करोगे?

किसी बेटे ने बोला क्या कि मेरी शादी कब करेंगे? मां चिंता करती है। शादी खुद मां ने कराई है। आपने जो लड़की देखी है उससे शादी की। फिर भी मां कहती है कि बेटा बदल गया। आपने जब सब देखकर किया तो लड़की का दोष या लड़के का दोष ही क्या है इसमें? यह सब आपने देखकर, सोच-समझकर किया। फिर ऐसा जहर क्यों ढूंढ़ा जो लड़के को बदल दे। वस्तुतः हमारी दृष्टि में फर्क आ जाता है। जैसे ही हमारी दृष्टि में फर्क आता है हमारे देखने का तरीका बदल जाता है।

किसने बोला, आपको महल खड़े करने का? बिना सोचे समझे क्यों महल खड़े कर लिए। किसने बोला सपने देखने का? हालांकि यह सब चीजें जंबू कुमार ने नहीं बोली थी किन्तु हकीकत यही है। मां दुःखी हो जाती है कि मैंने क्या सोचा था और क्या हो गया है? यह क्या हो गया जम्बू तुम्हें? हमने तुमसे बहुत सारी उम्मीदें की हैं, उन उम्मीदों का क्या होगा? हमारी उम्मीदें उलटी पड़ गई हैं। ऋषभदत्त जी कहते हैं बेटा तुम्हें माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। पिता जी कहते हैं हालांकि हमारे कर्मों का भोग हमको भोगना है लेकिन हम इस वियोग को कैसे सह पाएंगे? वे कहते हैं हमने इतना धन इकट्ठा किया है उसका क्या होगा? इस धन का भोग कौन करेगा? ऋषभदत्त जी जम्बू कुमार से कह रहे हैं कि इस धनराशि को ठुकराना क्या ठीक होगा? तुम सोचोगे कि व्यापार करूंगा तो हिंसा होती है। ऐसा-

वैसा होता है। अगर तुम बैठे-बैठे खाओगे तो भी यह धन खत्म नहीं होगा। बैठे-बैठे तुम और तुम्हारी सात पीढ़ियां खाएंगी तो भी कम नहीं होगा। तुम्हें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। इस प्रकार से सेठ ऋषभदत्त जी जंबू कुमार को समझाने की बात कर रहे हैं।

लगे हाथ एक बात और कह देता हूँ– कम्यूनिकेशन का सिद्धांत है कि पहले कहने वाले की बात को सुनो। सुनने के बाद आप जवाब दो। हम लोग क्या करते हैं। सामने वाले को पूरा बोलने ही नहीं देते। उसको रोककर अपनी बात को सुनाना चाहते हैं। पहले सुन लो, फिर उसका जवाब देना। अगर जरूरत लगे तो जवाब में पड़ना। अगर जवाब-तलब की आवश्यकता नहीं है, तो पहले सुन लेना ठीक है। सुनकर उचित लगे तो जवाब देना। उचित नहीं लगे तो जवाब मत देना और चुपचाप आगे बढ़ जाना। बोलने से शक्ति का ह्रास होता है और मौन रहने से शक्ति संग्रहित होती है। इसलिए हमें ज्यादा नहीं बोलना पड़े ऐसा लक्ष्य रखना चाहिए। दो शब्दों में कैसे जवाब दिया जा सकता है उन शब्दों का चयन करें। ऐसा करने वाला व्यक्ति समर्थ बनता है। शक्ति का संग्रह करने वाला बनता है। ऐसा व्यक्ति शक्ति का क्षरण करने वाला नहीं बनेगा। परिवार के सदस्य हों या समाज के, सबको पहले सुनें। नजरिया साफ रखें तो आप भी सुखी रहेंगे और परिवार, समाज के सदस्य भी सुख का अनुभव करेंगे।

मूल विषय पर लौटते हैं। धर्मी की पहचान कैसे करें? जंबू कुमार को क्यों याद किया जा रहा है। जंबू कुमार बाह्य वैभव में आनन्द ले रहे थे। पांच इन्द्रियों का विषय भोग रहे थे किन्तु सुधर्मास्वामी की वाणी, देशना सुनते ही उनका मन बदल गया। पासा पलट गया।

पांच इन्द्रियों के विषय तो ठीक हैं किन्तु हम सिर्फ भोजन की बात करें तो स्वाद लेकर खाना जरूरी नहीं है। ऐसा हम विचार करें कि खाने के लिए नहीं जीना है। जीने के लिए खाना खाएंगे। खाने के लिए खाना नहीं खाएंगे। खाना सिर्फ, जीने के लिए खाएंगे। खाते समय हमारे भीतर राग-द्वेष का भाव पैदा नहीं हो ताकि उससे जो कर्म बंध होने वाला है वह नहीं हो। जैसे पोटा (गाय का गोबर) रेत पर गिरता है तो उसके रेत लग जाती है। पोटा अगर कंकरी पर गिर जाए तो उस पर कंकरी लग जाएगी। वैसे ही हमारे भीतर जैसे परिणाम होंगे राग-द्वेष के, उसके अनुसार कर्म का बंध होगा। यदि राग-द्वेष नहीं होगा तो कर्म बंध भी नहीं होगा। दूसरा लाभ यह

होगा कि जो पहले से कर्म बंधे हुए हैं उनकी निर्जरा होगी। हम अपने आप में ऐसा विचार करें कि कोई भी चीज थाली में परोस दी जाए हम उसमें फर्क अनुभव नहीं करेंगे। हमारी थाली में थूली परोस दे और पास वाले की थाली में यदि बादाम कतली और दूसरी अच्छी-अच्छी मिठाइयां परोस दे तो भी हमको ऊंचे-नीचे का विचार नहीं लाना है। हम जीने के लिए खा रहे हैं। जीने के लिए खाना चाहिए। खाने के लिए खाना नहीं खाना चाहिए। हम जीने के लिए खाएंगे और यह विचार नहीं करेंगे कि दूसरे की थाली में क्या परोसा है। विचार में उथल-पुथल पैदा नहीं करेंगे। ऐसा हम लक्ष्य रखेंगे तो निश्चित रूप में धर्म का अनुभव करेंगे। ऐसा करेंगे तो तनाव से मुक्त हो जाएंगे। ऐसा हम लक्ष्य रखेंगे और हम अपने जीवन को धन्य बनाएंगे।

01 अगस्त, 2019

14

तस्सेस मग्गो गुरु– विद्धसेवा

शांति की चाह आदमी क्यों करता है? क्योंकि वह आदमी अशांत है। अशांत क्यों है और क्यों चाहता कि मैं शांति को वर लूं। शांति के स्वरूप को उसने क्या जाना है? वह उसकी क्या परिभाषा करता है और उसने क्या जाना है? वह शांति मिलेगी कहां पर?

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि 'तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा' यानी शांति का मार्ग, समाधि का मार्ग गुरुजनों की उपासना से प्राप्त होता है। उपासना से शांति का लाभ प्राप्त होता है। उपासना और पर्युपासना की चर्चा एक बार पहले भी चली थी। पर्युपासना का स्वरूप क्या है और पर्युपासना कैसे की जाए?

सेवा और पर्युपासना में कुछ फर्क है। पर्युपासना हम गुरु के निकट बैठकर करते हैं और सेवा कार्य उनके निर्देश व उनकी आज्ञा के अनुसार होता है। सेवा कार्य के लिए कहीं बाहर भी जाना पड़ता है। हालांकि पर्युपासना और सेवा दोनों का लक्ष्य एक ही होता है। दोनों का लक्ष्य है, शांति के मार्ग को प्राप्त करना। शांति के स्वरूप को प्राप्त करना। पर्युपासना मन-वचन और काया की एकाकारता से होती है। मन, वचन, काया तीनों एक हो जाने चाहिए। तीनों को एक ही रूप में ढालना होता है। जिसका मन अलग है, वचन कुछ और है, काया कुछ हो रही है वह पर्युपासना नहीं साध पाएगा। तीनों एक होते हैं तो पर्युपासना होती है और वह बड़ी अनमोल होती है। लाभकारी होती है। उसके लाभ तत्काल हमको मिलेंगे।

पूज्य गुरुदेव फरमाते थे कि धर्म रोकड़िया धंधा है। वह उधारी का धंधा नहीं है। धर्म तुम आज करोगे, अगले जन्म में इसका लाभ मिलेगा, ऐसा नहीं है। परलोक में जो मिलेगा वह मिलेगा, उसकी चर्चा नहीं है। वर्तमान

जीवन सुखमय बनेगा। यदि हम सच्चे दिल से धर्म की आराधना करेंगे, सच्चे दिल से धर्म को साधेंगे तो कोई कारण नहीं है कि वर्तमान में हमें सुख नहीं मिले। व्यक्ति भविष्य के लिए जितनी बात नहीं सोचता, वर्तमान की बात सोचता है। यदि हम कहें कि तुम्हें भविष्य में लाभ मिलेगा, परलोक में लाभ मिलेगा, तो उसके लिए अभी दुःख भोगते रहेंगे क्या? परलोक में सुख मिलेगा, इसलिए अभी दुःख भोगें यह तो कोई बात नहीं होगी और पहले से उसकी बात कौन करे? पहले वर्तमान जीवन को हम सुख से जी लें। पहले वर्तमान को सुधारें। वर्तमान सुखमय बनेगा तो भविष्य अपने आप सुखमय बन जाएगा। हमारा वर्तमान यदि सुख से बीत रहा है तो भविष्य में सुख योग का प्रावधान होगा। वर्तमान में शुभ योगों की प्रवृत्ति हो रही है तो वह भविष्य के लिए लाभकारी होगी ही और वर्तमान जीवन को भी भव्य बनाने वाली होगी। यह अवश्य है कि उसके लिए हमें कुछ विचार करना होगा।

हमारे चित्त का प्रवाह शुभ और अशुभ दोनों ओर चलता रहता है। जिस प्रकार से हमारे चित्त के प्रवाह की स्थिति बनेगी, उसी प्रकार से हमारे कर्मों का बंध होगा या उसी प्रकार से हमें उसका लाभ मिलेगा।

एक आदमी किसी को दुःख दे कर सुख मानता है और एक सुख देकर सुख मानता है। किसी को दुःखी देखकर सुख मनाने वाले बहुत लोग होते हैं। उनको बड़ा मजा आता है, आनन्द आता है कि यह बहुत दुःखी हो रहा है। इसको बहुत दुःख हो रहा है। किंतु उससे उसे क्या फायदा होगा? इससे उसको क्या मिला? यदि उसको दुःख दिया तो आपको सुख तो मिला नहीं, कुछ भी नहीं मिला, बल्कि आपने अशुभ कर्मों का उपार्जन और कर लिया। अशुभ कर्मों का बंध कर लिया। उसमें लाभ कमाने की जगह हानि कर ली। एक दूसरा व्यक्ति दूसरे को सुखी देखकर सुखी होता है। वह देखता है कि दूसरे को सुख मिलना चाहिए। दूसरे को आनन्द मिलना चाहिए। मेरे निमित्त से किसी को पीड़ा नहीं होनी चाहिए। अपने जीवन में, अपने विचारों में, अपने दिल में ऐसा भाव लेकर चलता है, तो निश्चित रूप से उसका वर्तमान जीवन सुखी बनेगा।

धर्म हमें त्याग करना सिखाता है। वह कहता है कि तुम त्याग करो। तुम जितना त्याग करोगे, उतना तुम्हें सुख मिलेगा। सवाल है कि हम क्या त्याग करें? किसका त्याग करे? कितना त्याग करें? ऐसी कौन-कौन-सी चीजें हैं, जिसका हम त्याग कर सकते हैं? त्याग करने वाली जो भी चीजें हैं हम

उनकी एक लिस्ट बनाएं। क्या-क्या त्याग हो सकता है? बताओ तो सही?

मेघरथ राजा का नाम सुना होगा, उन्होंने क्या किया था? मेघरथ राजा एक कबूतर के बदले अपने शरीर का मांस काट-काटकर तराजू पर रखने लगे। कबूतर का पलड़ा भारी का भारी रहा। वह सारा दृश्य देवकृत था। देव की माया थी। देव परीक्षा लेने के लिए उपस्थित था कि, शरणागति की रक्षा के लिए वे क्या कर सकते हैं? उन्होंने जब देखा कि इतना मांस काटने के बाद भी पलड़ा ऊपर नहीं उठ रहा है तो तराजू के पलड़े पर स्वयं ही बैठ गए। देखते ही देखते क्या हो गया? कबूतर का पलड़ा ऊपर हो गया। यह कहानी हमने बहुत बार पढ़ी होगी। उनको अपना शरीर काटना पड़ गया, कितना बुरा हुआ होगा? किंतु उनको दुःख हुआ या सुख हुआ? उनके अंतर्मन में सुख हुआ। हर्ष हुआ। आनन्द की अनुभूति हुई।

दानवीर कर्ण मृत्यु शय्या पर पड़े हुए हैं। उस समय एक देवता ब्राह्मण का रूप बनाकर आता है और कहता है कि कहां है दानवीर कर्ण? कर्ण के कानों में आवाज आई तो उन्होंने कहा कि, ब्राह्मण देवता मैं इधर हूं। ब्राह्मण उनको देखकर बोले कि "अरे! अरे! आपकी यह हालत है? मैं अब कहां जाऊं? मेरी तो जीवन नैया डूबने वाली है। अब क्या करूं? राजन्! मैं बड़ी उम्मीद लेकर आया था, किंतु आप इस दशा में हो तो अब अपनी बात क्या बताऊं? कर्ण बोले कि बताओ तो सही। उसने कहा कि मुझे अपनी लड़की की शादी के लिए कुछ धन की आवश्यकता है।

यह सुनकर पहले तो कर्ण थोड़े विचलित हुए, फिर एकदम से ध्यान आया कि उनका एक दांत सोने का है। वे कहते हैं– ब्राह्मण देवता! वह पत्थर मेरे हाथ में नहीं आ रहा है आप पत्थर उठाकर दीजिए। वे सोने के दांत को तोड़कर देने के लिए तैयार हो गए।

आप विचार करो कि हमारे पास क्या-क्या देने की चीजें हैं? यदि कोई विचार करे कि मैं गरीब हूं, मेरे पास देने के लिए कुछ है ही नहीं, मेरे पास त्याग करने को है ही नहीं, तो यह सही नहीं है? हमारे पास त्याग करने की बहुत-सी चीजें हैं। हम अपने मान का त्याग कर सकते हैं। अपने अहंकार का त्याग कर सकते हैं। अपने बड़प्पन का त्याग कर सकते हैं। ईर्ष्या-क्रोध का त्याग कर सकते हैं। कंचन त्यागना सहज है।

कंचन तजना सहज है, सहज तिरिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, तुलसी दुर्लभ एह॥

तिरिया यानी स्त्री का त्याग भी आसान है किंतु मान, सम्मान, ईर्ष्या का त्याग करना बहुत ही दुर्लभ है। कंचन-धन का त्याग करना भी बहुत आसान है। उसमें ज्यादा जोर नहीं लगता बल्कि लोग उनके लिए जय-जयकार करते हैं कि अरे! कितना महान् है, जो अपना धन-वैभव छोड़ रहा है।

दानवीरों की कमी नहीं है। बहुत लोग हैं, धन का दान करने वाले। कहते हैं, बिल गेट्स ने अपनी संपत्ति का पचास प्रतिशत दान कर दिया। भामाशाह के दान की भी चर्चाएं होती हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व, यह कहते हुए महाराणा प्रताप के सामने रख दिया कि अभी ये काम नहीं आएगा तो फिर कब काम आएगा?

झगडूशाह के बारे में भी बताया जाता है कि अकाल के समय में सम्राट ने उनको बुलाया और कहा कि झगडूशाह! हमने सुना है कि आपके पास अनाज के गोदाम भरे हुए हैं। उस समय आज की तरह नहीं होता था कि सरकार ने छापा मारा और सारा धन, अनाज ले लिया। वे नीतिवान थे, सम्मान से कहते हैं कि आपको जो कीमत लेनी है, ले लीजिये और अपना अनाज सरकार को दे दीजिए। झगडूशाह ने कहा कि मेरे पास अनाज, है ही नहीं। सम्राट ने कहा, मैंने सुना है कि आपके गोदाम के गोदाम भरे हैं। उन्होंने कहा कि आप चाहें तो चेक करवा लीजिए। जांच करवा लीजिए। सम्राट ने जाकर देखा तो सभी गोदामों पर लिखा हुआ था कि 'यह सब मेरे गरीब भाइयों के लिए है। यह जरूरतमंदों के लिए है।' सभी गोदामों पर यह स्लिप चिपकी हुई थी। ऐसे समय के लिए ही यह अनाज सुरक्षित रखे गये थे। यह देखकर राजा झगडूशाह से अति प्रभावित हुआ।

मान मांगने से मिलेगा या कार्यों से अपने आप ही मिलेगा? झगडूशाह के प्रति सम्राट का मान बढ़ा या नहीं बढ़ा? मन में सम्मान की भावना बनी या नहीं बनी? उनके प्रति वह मान सच्चे मन से था।

"मंच पर मान देना एक बात है और मन में सम्मान होना दूसरी बात है।"

एक बार मेरा कुचेरा जाने का प्रसंग बना और वहां मेरा रुकना हुआ। वहां के मंत्री ने व्याख्यान समापन के बाद कहा कि गुरुदेव! क्षमा करना, हम

बैनर नहीं लगा सके। आपके नाम की जय के बैनर नहीं लगा सके। मैंने कहा कि अगर तुम वह बैनर लगा भी देते तो वह कुछ घंटों के लिए होता। एक दिन, दो दिन, चार दिन। फिर आप उसको उतारकर हटा देते। 'दीवारों पर लगने वाले बैनर लंबे समय तक चलने वाले नहीं होते। किंतु आपके दिल में जो सम्मान है, वह लंबे समय तक रहने वाला है।' दिल में सम्मान की भावना व्यक्ति के कार्यों से आती है, व्यक्ति के कर्तव्य पालन से आती है।

हम किसी के दिल में सम्मानित होना चाहते हैं तो पहले हमें अपने कर्तव्य का भान होना चाहिए। हमें अपने कार्यों की समीक्षा करनी चाहिए। हमने दूसरों के सुख के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया तो लोगों के दिल में हमारे प्रति सम्मान की भावनाएं जग जाएंगी। सम्मान आपके रूप-रंग, आकृति को देखकर नहीं होगा। वह आपके कार्यों को देखकर होगा।

हरिश्चंद्र राजा की आज हम जय-जयकार करते हैं। उन्हें याद करते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का हम स्मरण करते हैं। 'जय श्री राम' के नारों से हम उनका सम्मान करते हैं। जैसे हम 'जय जिनेन्द्र' बोलते हैं वैसे ही वैदिक लोग 'जय श्री राम' भी बोलते हैं। आज 'जय श्री राम' के पीछे जिस प्रकार का वाकया घटित हो रहा है, क्या उनसे मान और सम्मान मिल जाएगा? सुनने में आ रहा है कि कुछ लोग किसी को बोलते हैं कि बोलो 'जय श्री राम' और नहीं बोले तो उन्हें बांधो, पीटो। ऐसे निकल जाएगा क्या 'जय श्री राम'? ऐसे 'जय श्री राम' के प्रति मन में सम्मान के भाव जग जाएंगे? किसी के दिल में प्रेम और मोहब्बत से आप प्रवेश कर सकते हो। श्रद्धा और समर्पण से किसी के दिल में प्रवेश कर सकते हो।

उस समय की एक घटना है जब भारत और पाकिस्तान के बीच कुछ बुरी स्थितियां चल रही थीं। एक भाई, लूट-खसोट करने आया होगा पाकिस्तान से। घर आकर रूम खोला तो उसमें एक स्त्री को बंधक पाया। उसने पूछा कि बहन! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? वह घबराई हुई थी। उसने कहा, "तुमने मुझे बहन कहा है, इसलिए मैं कुछ कहने की हिम्मत कर रही हूं। हिंदू और मुस्लिमों के दंगे चल रहे हैं। दंगे में मेरे भाई और पिता का पता नहीं चल रहा है। कुछ लोगों ने मुझे बंधक बनाकर यहां पैसों के लिए बेच दिया। जिसको बेचा गया है वह मुझसे शादी करना चाहता है, किंतु मैं अपने पिता और भाई से राय के बिना अपने जीवन में ऐसा कोई धब्बा लगाना नहीं चाहती। मैंने उससे कहा कि शरीर को पैसों से खरीदा जा सकता है, किंतु

इसमें रहे हुए दिल को कभी भी पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। जब ये बात मैंने कही तो मुझे कमरे में बंधक बनाकर रखा गया है।"

उस युवक के मन में बड़ी पीड़ा हुई। बंधक बनाने वाला उस युवक का भाई ही था। उसने कहा कि मुझे भाई से वैर मोल नहीं लेना है फिर भी मैं तुम्हें यहां से छुड़ा दूंगा। उसने उस स्त्री को छुड़ाया और उसके घर पहुंचाकर आया। उस कन्या के भाई ने महात्मा गांधी के पास आ कर ये सारा वाकया बताया। इस बात को सुनकर महात्मा गांधी ने कहा कि मैं उस युवक से मिलूंगा। अब आप विचार करो, महात्मा गांधी स्वयं उस युवक से मिलने का विचार कर रहे हैं। यह किस की बदौलत? सत्कर्म, अच्छा कर्म, सही कार्य की बदौलत। ऐसे समय में जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करता है, आपत्ति को झेलता है, दूसरे को विपत्ति से मुक्त करता है, लोगों के मन में उसके प्रति सम्मान की भावना पैदा हो जाती है।

मान की याचना कभी नहीं करो, बल्कि अपने आप को 'नमा' लो। 'मान' का उलटा होगा 'नमा'। मान को उलटा कर लो। किसी की चाल उलटी होती है। एक उलटी चाल का घोड़ा होता है। सामान्यतः जैसे ही घोड़े की लगाम खींचते हैं वह रुक जाता है और लगाम को ढीला छोड़ते हैं तो वह दौड़ता है। किंतु जो उलटी चाल का घोड़ा होता है, उसकी लगाम खींचो तो वह और तेज दौड़ता है। ढीला कर दो तो वह रुक जाएगा। उसे जैसा सिखाया जाता है, वह वैसा ही करता है।

एक सम्राट के लिए एक अश्व व्यापारी घोड़ा लाया। घोड़े की परीक्षा के लिए सम्राट उस पर बैठकर सवारी करने लगा। कुछ देर बाद सम्राट ने घोड़ा रोकने के लिए उसकी लगाम खींची तो वह रुकने के बजाय और तेजी से भागने लगा। सम्राट जितनी लगाम खींचते, वह उतना ही तेज दौड़ता। घोड़े ने लंबी दूरी तय कर ली। राजा हैरान हो गया। वह थक गया। आखिर उसने लगाम में ढील दे दी। ढील पाते ही घोड़ा रुक गया। तब उसको समझ आया कि यह वक्र शिक्षित है। कुछ को वक्र शिक्षा भी दी जाती है। वैसे ही मान को यदि उलटा करते हैं तो जीवन सज जाता है, संवर जाता है। जैसे ही वह उलटा होता है लोगों के दिल में समा जाता है। जब तक वह सीधा चलता रहता है तब तक लोग उसकी उपेक्षा करेंगे।

दूध में शक्कर भी मिलाई जाती है और केसर भी। इलायची भी मिलाई जाती है और घी भी। केसर को यदि रगड़ करके उसमें डाला तो वह दूध

को अपने रंग में रंग देगा। इलायची दूध में डाली तो वह अपनी सुगन्ध दूध में भर देगा। शक्कर दूध को मीठा बना देगी पर घी ऊपर आ जाएगा। वह ऊपर-ऊपर तैरेगा। उसकी तासीर है कि वह ऊपर ही रहना चाहेगा। हमने कभी घोटकर मिला दिया, एक बार मिल गया किंतु जैसे ही उसको रखेंगे वह पुनः गिलास में दूध के ऊपर आ जाएगा।

इसकी तुलना की गई है भक्तों से, श्रद्धा से, सामाजिक कार्यकर्ता से। कुछ भक्त लोग या कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं की नीयत होती है कि समाज उनको, 'हां सा, हां सा' करे। जब तक ऐसा होगा तब तक उनके पैरों में गति रहती है। तब तक उनके भीतर उमंग रहती है, उत्साह रहता है। वह दौड़ता है। जैसे ही 'हां सा, हां सा,' बंद हुई कि उसके हाथ-पांव थम जाएंगे। दिमाग पलट जाएगा। मन की उमंग और उत्साह ठंडा हो जाएगा। किंतु कुछ भक्त कहते हैं कि हां सा, हां सा अपने को नहीं चाहिए, बस काम होना चाहिए।

हकीकत में सही भक्ति और सही कर्तव्य का पालन होना चाहिए न कि व्यक्ति की 'हां सा, हां सा' होनी चाहिए। 'हां सा, हां सा' वाला व्यक्ति निष्काम भाव से सेवा नहीं कर पाएगा। वस्तुतः सेवा भावना से, निष्काम भावना से कार्य करना चाहिए। अपने मन में किसी प्रकार की चाह नहीं होनी चाहिए कि लोग मुझे सम्मानित करें। लोग मेरी जय-जयकार करें। मुनि श्री नानालाल जी म.सा. संवत 1996 में दीक्षित हुए। पहला चातुर्मास फलौदी में हुआ युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के साथ। दूसरा चातुर्मास बीकानेर में संपन्न हुआ और 1999 के चातुर्मास में ब्यावर सेवा में भेजा गया। शायद उसी समय की बात है। वहां श्री जौहरीमल जी म.सा. पढ़ाने वाले थे एवं श्री प्यारचंद जी म.सा. एवं श्री बोथमल जी म.सा. आदि संत विराजमान थे। उनकी सेवा का कार्य भी था। श्री मोहनलाल जी मूथा, जो श्री बोथमल जी म.सा. के भक्त रहे थे और उनके सान्निध्य में बहुत सारा ज्ञान उन्होंने सीखा था। मुनि श्री नानालाल जी म.सा. ने उनकी इतनी तन्मयता से सेवा की थी, इतने विनम्र भावों से सेवा की थी कि उन दीर्घ पर्याय वाले मुनियों के मन पर वे छा गए। उन मुनियों के मुंह से ये शब्द निकले कि अभी तो तीन साल का दीक्षित है और गुण 30 साल के मुनि जैसे हैं। इतनी गंभीरता, इतनी सहजता और मुनि मर्यादाओं के प्रति इतनी सजगता। जैसा पुस्तकों में लिखा गया है कि उनके हृदय से निकला कि ये शासन का सितारा बनेगा। आचार्य बने या

न बने शासन को चमकाने वाला बनेगा। शासन की जाहोजलाली करने वाला बनेगा। ऐसे हीरे, ऐसे रत्न विरले होते हैं। उन मुनियों के हृदय की बात कागज में आज भी लिखी हुई है। कोई कह सकता है, कि कागज में जो लिखा गया, क्या सारा सही होता है? एक बार मुंह देखकर भी तिलक निकाल दिया जाता है। कागज में सारा सही है कि मुंह देखकर तिलक निकाला हुआ है? कागज में लिखी हुई बातें मिट जाती हैं। वे कभी दीमक की चपेट में आ सकती हैं। उन्हें दीमक खा जाएगी। किंतु मुनियों के दिल में, भाइयों के दिल में पैदा हुई श्रद्धा अखंड रहने वाली है।

हम भी वैसा कार्य करें। वैसा कार्य यदि करते हैं तो मान के लिए भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। हमें मान-सम्मान के लिए बार-बार घूमना नहीं पड़ेगा। हमें मान-सम्मान के लिए दर-दर की ठोकरें नहीं खानी पड़ेंगी। तब हमारे चित्त में समाधि रहेगी, शांति रहेगी। यह बात आप अनुभव कर सकते हैं कि निष्काम सेवा करने से व्यक्ति ऊंचाइयों को प्राप्त कर सकता है किंतु सम्मान की चाह वाला उसी मंच पर खड़ा रहेगा, अटका रहेगा। उसके आगे उसका विकास होना संभव नहीं है।

जंबू कुमार सोचने वाले प्राणी थे। वे समझदार थे। बुद्धि का सही उपयोग करने वाले थे। आचार्य सुधर्मास्वामी से सुना तो केवल श्रोता बनकर नहीं सुना। वे उपभोक्ता बने। उनमें भावना जगी कि जल्दी से जल्दी दीक्षा लूं। जब तक दीक्षा नहीं हो जाए, खाली नहीं रहूं। उन्होंने 12 व्रतों को स्वीकार कर लिया। हमें भी इस दिशा में विचार करना चाहिए। हम भी साधुओं के पास आते हैं तो कोई-न-कोई त्याग, पच्चक्खाण स्वीकार करके जाना चाहिए। रोज आ रहे हैं तो रोज पच्चक्खाण करना चाहिए। ये जिन शासन की दुकान है। मॉल है। इसमें कोई कमी नहीं है। यहां विभिन्न प्रकार के पच्चक्खाण हैं। जिंदगी भर एक पच्चक्खाण रोज करते रहें तो भी यह भंडार खाली होने वाला नहीं है। हमारी बुद्धि चले या नहीं चले, यह भंडार भरा है। यह हमारी क्षमता पर निर्भर है कि हम उसमें से कितने माणिक-मोती निकाल पाते हैं, रत्न निकालते हैं। हमारा सामर्थ्य हो तो हम इसमें से निकालें। हमारा ही सामर्थ्य नहीं है तो यह भरी हुई मटकी, भरा हुआ भंडार किस काम का?

हमने कभी श्रीमती की कहानी पढ़ी होगी। एक बड़े मटके में काला जहरीला सर्प ससुराल वालों ने डाल दिया। वे सोचते थे कि ये बड़ी धर्मात्मा बनती है। उसको हम उस मटकी में से पानी निकालने के लिए कहेंगे और

जैसे ही वह पानी निकालने के लिए मटकी में हाथ डालेगी, सर्प उसको डस लेगा और हमारा काम हो जाएगा। उसका नियम था कि कोई भी कार्य 'नमो अरिहंताणं' कहकर करना। अभी भी कई बार संत कहते हैं कि मुंह में कोई भी चीज डालने के पहले 'नमो अरिहंताणं' बोलना और क्रिया पूरी हो जाए तो 'नमो सिद्धाणं' बोलो और मुंह बंद कर दो। कितने घंटे का त्याग हो जाएगा। दिन भर में। लेकिन जिसको मुंह में कुछ-न-कुछ चाहिए, वह कुछ-न-कुछ खाता रहेगा, कुछ नहीं तो पान पराग या गुटका खा लेगा। वह भी घंटा भर तक मुंह में बना रहेगा। किंतु जो खाने के पश्चात् वापस कुछ समय तक नहीं खाने वाला है। उसे खाने-पीने में 2-3 घंटे से ज्यादा समय लगता नहीं है पूरे दिन में। उनको सहज ही 21 से 22 घंटे के त्याग का लाभ मिल जाता है। प्रत्याख्यान का लाभ मिलता है।

मैं कभी-कभी बोलता हूं कि मान लो किसी शत्रु ने कोई बुरी या कोई भी चीज दी और उसमें जहर मिला हुआ था। आपका नियम है कि खाने के पहले 'नमो अरिहंताणं' बोलेंगे। वैसा कहकर वह चीज मुंह में डाली और मर भी गए तो मरने से पहले आपके मुंह से क्या निकला? (प्रतिध्वनि– 'नमो अरिहंताणं') हमने दिनभर में कितनी बार अरिहंत भगवन् को याद कर लिया। हमारे दिल में, मन में, हमारी भावनाओं में अरिहंत भगवान कितनी बार आ गए हैं? आपने 2-3 घंटे खाने में बिताए और खाने से पहले और बाद में अरिहंत व सिद्ध भगवान का नाम लिया तो हमें बाकी 21 से 22 घंटों के पच्चक्खाण का लाभ मिल गया। श्रीमती, नवकार मंत्र का स्मरण करके ही कोई कार्य करती थी। एक प्रकार से नियम हो गया, आदत पड़ गई कि कोई भी कार्य करो, सहज ही उसके भीतर में नवकार मंत्र का स्मरण चालू हो जाता।

यहां सुबह या शाम के टाइम कुछ भाई दौड़ लगाते हैं। उनके पॉकेट में मोबाइल बजता है। उसमें ट्यून आती है, 'ओम् णमो अरिहंताणं, ओम् णमो श्री...' किस के घर में चलती है, ऐसी ट्यून? किस-किसके घर में बजती है? यह ट्यून सही नहीं है। गणधर भगवान द्वारा जो नवकार मंत्र लिखा गया है, उसमें ओम् नहीं है, श्री नहीं है। अपने मन से जोड़-तोड़ करते हैं तो हम उन महान आत्माओं की, उन महापुरुषों की आशातना करने वाले होते हैं, जिनका हम पर अनन्य उपकार है। दूसरे शब्दों में कहें तो सूत्र विपरीत प्ररूपणा हो जाती है। शास्त्र में इसे पाप कहा गया है। इसलिए हम

इस बात को ध्यान में लेंगे कि अज्ञान अवस्था, अनजान अवस्था में भी ऐसा भारी पाप नहीं हो।

जंबू कुमार की कहानी भी हमने सुनी होगी। वे जिन शासन में रत्नों को प्राप्त करने के लिए उत्थित हुए तो उनके पिता ऋषभदत्त जी कहते हैं, बेटा! किसी भी कार्य को करने के पूर्व उस पर गहरा विचार कर लेना चाहिए। कोई भी कार्य भावुकता में नहीं करना चाहिए। इतनी संपत्ति छोड़कर तू साधु बनने की बात कर रहा है। कदाचित् मान लो कि साधु बन भी गया तो बाद में पश्चात्ताप के भाव पैदा नहीं हों कि ये मैं कहां आ गया। साधु जीवन जीना आसान नहीं है। साधु जीवन के प्रत्येक मोड़ पर कठिनाइयां आएंगी। उस समय तुम्हारा मन उद्वेलित नहीं हो जाए। मन में कुंठा पैदा नहीं हो जाए। मन में यह विचार न पैदा हो जाए कि इतनी सारी संपत्ति छोड़, कहां आ गया। पश्चात्ताप होना चिंता की बात है। मैं यह मानकर चलता हूं कि अभी साधु जीवन को तुम समझे नहीं हो? एक व्याख्यान तुमने सुना और विचार कर लिया। साधु जीवन आसान काम नहीं है। इसमें कैसी-कैसी परिस्थितियां आती हैं, बताई नहीं जा सकती। लोहे के चने चबाना एक बार आसान हो सकता है किंतु साधु जीवन की पालना करने में बड़ी कठिनाई है। इतना ही नहीं, कोई सधा हुआ बाजीगर तलवार की धार पर चल जाता है, लेकिन दीक्षा लेकर उसे पालना इतना आसान नहीं होता। किसी कलाबाज को लाल सुर्ख अंगारों पर चलाया जाए तो वह फिर भी दौड़ लेता है किंतु हर आदमी उसकी देखा-देखी नहीं कर सकता। कहा गया है– 'देखा देखी साधे जोग, छीजे काया बधे रोग'। हम देखा-देखी में आकर ऐसा काम करने लगे जो हमने पहले नहीं किया है तो उससे शरीर शक्ति क्षीण होती है और रोगों का आवास होता है। इसलिए पहले अपनी शक्ति को तोल लेना चाहिए। एक बार मान लेते हैं कि तुम समर्थ हो, तुम साधु जीवन के व्रतों की पालना करने में भी समर्थ हो, हिम्मतवान् हो और नागौरी बैल की तरह भाव एकदम सधे हुए हैं, वापस असंयम जीवन में तुम आने वाले नहीं हो किंतु थोड़ा-सा इन सब से हट कर भी विचार करो।

तुम सोचो, जिनके साथ तुम्हारी सगाई हुई है, जिनके साथ तुम्हारा विवाह रचाया जाना है, उन कन्याओं की क्या हालत होगी? उनकी क्या दशा होगी? उनके तो जीते जी इतना वज्रपात होगा, रोते-रोते उनका जीवन शून्य में चला जाएगा। तुम अपने जीवन की बात कर रहे हो और दूसरे के

जीवन को संकट में डालने का काम कर रहे हो। क्या इसे धर्म कहेंगे? क्या यह धर्म की बात कही जाएगी? जंबू! सोचो। प्रवाह में मत बहो।

उपदेश सुनना अच्छी बात है। उपदेश सुनना भी चाहिए। आचार्य सुधर्मास्वामी अच्छा ही फरमाते हैं। वे धर्म की आराधना की सच्ची बात फरमाते हैं। यह बात तो ठीक है। किंतु तुम्हें समीक्षा करनी पड़ेगी कि जिन कन्याओं से संबंध स्थापित किया गया है, उनके और उनके परिवार पर क्या आपत्ति आ जाएगी। किसी के साथ ऐसा कुछ व्यवहार करना, जब न्यायोचित ही नहीं है तो धर्म क्षेत्र में तो इसका कहना ही क्या है? एक तरफ घर में मंगल वाद्य बज रहे हैं, मंगल गीत गाए जा रहे हैं। शादी की सारी तैयारियां हो रही हैं। ऐसे क्षण में साधु बनने की बात शोभा नहीं देती है।

होली के गीत, होली के समय ही सुहावने लगते हैं। होली का चंग यदि दीवाली में लोग बजाने लग जाएं तो शोभा नहीं देगा। जन्म के समय के गीत जन्म के समय ही शोभा देते हैं। किसी की मृत्यु के समय में वह गीत गाया जाने लगे तो क्या होगा। किसी घर में मृत्यु हो गई और हम गीत गा रहे हैं जन्म के तो कैसा लगेगा? इसलिये कोई भी कार्य समय पर होना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि साधु जीवन लेना सही नहीं है। साधु बनना अच्छा है, सही है किंतु उसका भी एक समय है। वर्तमान में तुम्हारा कर्तव्य क्या बनता है, तुम्हारा दायित्व क्या बनता है, उस पर तुम्हें सोचना चाहिए। कर्तव्य विमुख होकर धर्म की आराधना नहीं होती। अपने दायित्व से मुकरना कायर व्यक्ति का काम होता है। तुम कुछ वर्षों तक गृहस्थ जीवन का पालन करो। उन ललनाओं को संतोष दो। तुम्हारे पुत्र हो जाएं, उनको अपना भार संभला देना। उसके बाद तुम दीक्षा लो तो हमारी तरफ से कोई रोक नहीं है। तुम असमय में कह रहे हो। ऐसे समय में हम कैसे मना नहीं करें। हम भी समाज में रहने वाले हैं। समाज में क्या बातें होंगी? हमको क्या सुनना पड़ेगा। कितना सुनना पड़ेगा? क्या तुम चाहते हो कि हम इसी प्रकार से सुन-सुनकर अपनी जिंदगी नीची आंखें करके बिताते रहें। तुम्हें हमारी नाक नहीं कटानी चाहिए। समाज के लोग मुझे कहेंगे कि अरे! बाहर तो शादी की बातें चल रही हैं और कंवर-सा को दीक्षा दे रहे हैं। जंबू तुम स्वयं सोचो। तुम पढ़े-लिखे हो, बुद्धिमान् हो। मुझे ज्यादा समझाने की आवश्यकता कहां है?

इस प्रकार से पिता ने ऐसे वचन कहे कि सामने वाले का दिल द्रवित हो जाए। उन्होंने कहा कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना भी एक

धर्म ही है और इस धर्म का तुम उल्लंघन कैसे कर दोगे? इस प्रकार की बातों को सुनकर जंबू कुमार विचलित नहीं हुए। उनके वैराग्य भाव की तेज आंधी में सेठ के विचार उड़ गए। कभी-कभी आंधी चल रही हो, भयंकर तूफान हो, तो कहते हैं लोग कि आदमी के आदमी उड़ जाते हैं। पशु भी उड़ जाते हैं। हवा के झोंके वे सहन नहीं कर पाते। वैसे ही ये मेरे हाथ वाला पुट्ठा है। मान लो यहां तेज आंधी आई तो सारे के सारे कागज उड़ जाएंगे कि नहीं? क्योंकि थैली में नहीं हैं, बंद नहीं हैं, खुले पड़े हैं। उड़ जाएंगे या नहीं उड़ जाएंगे? थोड़ी-सी हवा के झोंके से ही कागज इधर-उधर उड़ जाएंगे। उसका कहीं अस्तित्व ही नहीं रहेगा। वैसे ही बताया गया कि जंबू कुमार के वैराग्य की तेज आंधी में सेठ के वचन उड़ गए।

जंबू कुमार ने कहा कि पिताजी! आपका स्नेह मैं जान रहा हूं। वह सीमा पार है। उसकी कोई सीमा नहीं है। यहां इस मैदान की सीमा है। इस स्कूल की सीमा है। इस जोधपुर शहर की सीमा है। भारत की भी सीमा है किंतु पिता के प्यार की, उसके प्रेम की, स्नेह की कोई सीमा नहीं होती। जंबू कहते हैं– आपका आंतरिक प्रेम मैं नहीं समझ रहा हूं, ऐसी बात नहीं है। मैं उसको भी खूब अच्छी तरह से समझ रहा हूं। आपके उपकार मेरी आंखों से ओझल नहीं हुए हैं। उनको भी मैं अच्छी तरह से समझ रहा हूं। आपने खूब यत्न से मुझे पाला है। खूब अच्छे संस्कार मुझे दिए हैं। यदि मैं आपके उपकार चुकाना चाहूं, यदि मेरे मन में आपके उपकार का बदला चुकाने का विचार भी आए और मैं जिंदगी भर आपकी सेवा करूं, जिंदगी भर आपकी आज्ञा की आराधना करता रहूं तो भी मैं प्रत्युपकार नहीं कर सकूंगा। आप अभी मेरी चिन्ता कर रहे हैं कि मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो, किसी प्रकार की कमी नहीं हो। ये भाव आपके रहे हैं किंतु जब कर्म उदय में आएंगे तो साथी, सगा कोई काम नहीं आएगा।

यदि मैं साधु जीवन नहीं भी स्वीकार करूं और गृहस्थ जीवन में बीमार हो जाऊं तो भी ये संपत्ति, ये वैभव, ये धन क्या काम आएंगे? क्या होगा इस धन से? हो सकता है कि इलाज के लिए धन खर्च हो जाए किंतु क्या धन खर्च करने पर भी मैं ठीक हो जाऊंगा? क्या बीमारी दूर हो जाएगी? कइयों की बीमारी दूर हो जाती है और कइयों की बीमारी धन को पानी की तरह बहा देने पर भी ठीक नहीं होती है। इतना ही नहीं यदि आयु के दलिक खत्म हो गए तो कोई बचा नहीं पाएगा।

'मौत की हवा का झोंका एक आएगा, जिंदगी का वृक्ष तेरा टूट जाएगा'

उस समय कोई रक्षा करने वाला नहीं होगा। मौत से बचाएगा कौन? है कोई? ऋषभदत्त जी क्या जवाब दें? क्या जवाब दे मां? मृत्यु में पड़े हुए को बचाने वाला कौन है? यह धन, तन आदि कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है।

पर धर्म हमें जरूर शांति देने वाला है। आपने साधु जीवन के कष्ट बताए इसे मैं स्वीकार करता हूं। मैं जानता हूं कि इस जीवन में बहुत कठिनाई है किंतु पूर्व जन्म में, नरक में कितनी-कितनी यातनाएं, कितने-कितने कष्ट उठाए! उस समय आत्मा जागृत नहीं थी। अज्ञान में थी, किंतु अब मेरी आत्मा जागृत हो चुकी है तो मैं ऐसा विचार करता हूं कि धैर्य से मैं आने वाली सारी बाधाओं को पार करूंगा। यह परिणाम सुधर्मा स्वामी को की गई पर्युपासना का परिणाम है। ऐसी दृढ़ता हो, ऐसे उत्तम भाव हों तो जिन शासन में श्रावक मुनियों, रत्नों से अपनी झोली भर सकेंगे।

मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने पर हम विचार करेंगे तो हमें रास्ता दिखेगा। नहीं तो रास्ता दिखेगा नहीं। हमारा जीवन कुएं के मेढक की तरह हो जाएगा। हम कूपमंडूक बनकर रह जाएंगे।

हमें अपने आप को, अपनी बुद्धि को, अपने विचारों को थोड़ा प्रांजल बनाना है। अपने विचारों को पवित्र बनाना है और यह सोचना है कि इस मनुष्य जन्म का क्या परिणाम होगा? यदि मनुष्य जन्म को हम सार्थक करना चाहते हैं तो अपने भीतर सद्भावनाओं, कर्तव्यों, दायित्वों का बोध जगाएं और सत्कर्म करने की दिशा में बढ़ें। इस प्रकार के विचार यदि रखेंगे तो पर्युपासना करने में समर्थ बनेंगे एवं मनुष्य जीवन को सफल व सार्थक कर पाएंगे।

02 अगस्त, 2019